श्री राम उवाच-33

श्रद्धा यस्य बलं तस्य

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्रद्धा यस्य बलं तस्य

संस्करण प्रथम, सितम्बर 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य ₹ 125/-

प्रकाशक **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

ISBN 978-93-91137-88-5

मुद्रक साक्षी प्रिंटर्स, जयपुर, मो. 9829799888

बुद्धि से बलवती श्रद्धा

एक उक्ति है 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।' इस उक्ति से भारतीय अपरिचित नहीं हैं। पंचतंत्र की कथाओं को पढ़ने वाले बच्चे भी जानते हैं कि कैसे खरगोश ने अपने बुद्धिबल से शेर को मार गिराया।

जन सामान्य में मान्यता है कि बुद्धि ही बलवान है, पर यह केवल मान्यता है, वास्तविकता नहीं। वास्तविकता यह है कि बुद्धि से अनेक गुना बलवती श्रद्धा होती है। श्रद्धा यदि धर्म श्रद्धा हो तो कहना ही क्या! धर्म श्रद्धा के सामने सोने में सुहागा वाली स्थिति भी कम हो जाएगी।

यह ऐसे ही नहीं कहा जा रहा। इसका कारण है कि श्रद्धा जहाँ पहुँच जाती है, वहाँ कोई नहीं पहुँच सकता। तीक्ष्ण से तीक्ष्ण एवं अति वेगवान तर्क का तीर भी वहाँ नहीं पहुँच पाता, जहाँ श्रद्धा पहुँच जाती है। यही नहीं श्रद्धा का भाव मानस तंत्र एवं देह तंत्र को इतना सबल बना देता है कि व्यक्ति अभीष्ट को पाए बिना नहीं रहता। व्यक्ति को इतनी ऊर्जा से भर देता है कि अभीष्ट को प्राप्त करने तक उसे थकान या आलस्य की अनुभूति ही नहीं होती। बेशक श्रद्धा के साथ आचरण भी जरूरी है किंतु श्रद्धा घनीभूत होने के बाद आचरण को अपने पीछे खींच लाती है।

श्रद्धा से घनीभूत होने का अवसर सहज ही उपलब्ध हो जाता है आचार्य श्री रामलाल जी म. सा के दर्शन से। उनकी वाणी श्रवण करने से। आचार्यश्री सन् 2023 में चातुर्मासार्थ नीमच (मध्य प्रदेश) में विराज रहे हैं। परम श्रद्धेय आचार्य-प्रवर का पावन वर्षावास उन्हीं द्वारा रचित एवं गाई जाने वाली 'धम्मसद्धा चालीसा' से गुंजायमान हो रहा है। धर्म श्रद्धा को व्याख्यायित करने वाली आचार्य-प्रवर की अमूल्य प्रवचनधारा अपने भीतर अनेक धर्म तत्वों एवं सामयिक विषयों को सँजोए हुए है। सभी के लिए यह अवसर है धर्म श्रद्धा पर आगे बढ़ने का। उससे ओत-प्रोत होने का। स्वयं को निर्मल एवं पवित्र बनाने का।

आचार्यश्री द्वारा नीमच में फरमाए गए प्रवचनों को पुस्तक **'श्रद्धा यस्य बलं तस्य'** का रूप देकर लोगों को निर्मल एवं पवित्र बनाने का अवसर उपलब्ध करा रहा है साधुमार्गी पब्लिकेशन। नीमच चातुर्मास की पहली पुस्तक के रूप में मिले इस अवसर का उपयोग कर पाठक धर्म श्रद्धा से स्वयं को ओत-प्रोत कर सकते हैं। निर्मल एवं पवित्र बना सकते हैं।

सबका मन निर्मल एवं पवित्र कर सकने वाली इस पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गई हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**श्रद्धा यस्य बलं तस्य**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

श्रीमती प्रेमलता देवी व्होरा की पावन स्मृति में
प्रेमचन्द धन्नालाल जी व्होरा
बदनावर, मध्य प्रदेश

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	धर्म है जीवन का प्राण	10
2.	धर्म बने मुझ प्राण	18
3.	ज्ञान प्राप्ति का राज	30
4.	श्रद्धा होती सुफलदायी	42
5.	तुम्हारी प्रसन्नता ही समाधान	57
6.	महाव्रती बन मन मुस्काएं	72
7.	अटकन टूटी भटकन छूटी	84
8.	धर्म श्रद्धा रण जय दिलाए	101
9.	ऐसा धर्म सदा सुखदायी	113
10.	धर्म रंग से मन हो रंगा	124
11.	धर्म मर्यादा लक्ष्मण रेखा	138
12.	धर्म भक्ति दुर्गति को टारे	150
13.	सदा धर्म की करना रक्षा	164
14.	धर्म भक्ति मन सदा सुहावे	172
15.	अन्तर का सब कल्मष धो लें	187

धम्मसद्धा चालीसा

धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्माराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

1. गौतम वीर चरण में आये।
   वंदन कर यों अर्ज सुनाये।।
2. धम्म सुसद्धा फल फरमावें।
   प्रभुवर श्रद्धा फल दर्शावे।।
3. साया-सोक्खेसु रज्जमाणा।
   विरज्जइ फल खूब सुहाणा।।
4. गृही-वास ना उसे सुहाता।
   महाव्रती बन मन मुस्काता।।
5. तन-मन के दुःखों का छेदन।
   निराबाध सुख का संवेदन।।
6. उल्टी नौका सीधी होती।
   अन्तर ज्योति विकसित होती।।
7. अटकन टूटी भटकन छूटी।
   धर्म-देव से पी ली घूंटी।।
8. शूरों में जो शूर सयाना।
   मोह भूप किससे अनजाना।।
9. एक धर्म से वह भय खाता।
   दूर भागता पास न आता।।
10. ऐसा धर्म सदा सुखदाई।
    नित्य बजे जय की शहनाई।।
11. धर्मी मात कभी ना खाता।
    जब भी पाता वह जय पाता।।
12. धर्म रंग से मन हो रंगा।
    देख कठौती दिखती गंगा।।

13. धर्म भक्ति है लक्ष्मण रेखा।
करना नहीं कभी अनदेखा।।
14. धर्म भक्ति दुर्गति को टारे।
धर्म-भक्ति भव पार उतारे।।
15. सदा धर्म की करना रक्षा।
उससे होगी निज अभिरक्षा।।
16. धर्म-भक्ति मन सदा सुहावे।
धर्म-भक्ति मन आदर पावे।।
17. सदा धर्म की जय-जय बोलें।
अन्तर का सब कल्मष धो लें।।
18. अन्तर का अघ रूप हटाएं।
धर्म-भक्ति अन्तर प्रकटाएं।।
19. आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं।
अन्तर तम को दूर भगाएं।।
20. श्रद्धा से निज को पहचाना।
सत्य धर्म को तब ही जाना।।
21. ज्ञान गंग निर्मल मन बहती।
बहती मन को चंगा रखती।।
22. श्रद्धा से मन सदा बढ़ेगा।
श्रद्धा से मन शिखर चढ़ेगा।।
23. धर्म पताका फहरे फर-फर।
धर्म नगाड़ा बजता दर-दर।।
24. रोग-शोक सब भग-भग जाता।
एक धर्म ही जग जस पाता।।
25. राम-भरत की गौरव गाथा।
गाता मानव नहीं अघाता।।
26. राजमती मन धर्म सुहाया।
रथनेमि मन दृढ़ हो पाया।।
27. जय-जय भद्दा जय-जय नंदा।
सदा अखंड रहे मन श्रद्धा।।
28. श्रद्धा उसकी दिन-दिन विकसे।
धर्म करे जो अन्तर्मन से।।

29. करे धर्म रक्षा जो मानव।
धर्म जीतता हारे दानव।।
30. कामदेव ना डिगता बंदा।
कलुषदेव का छूटा फंदा।।
31. अग्नि शीतल शूल सिंहासन।
सीता सेठ सुदर्शन पावन।।
32. जय जय जय होती है रण में।
मिले सफलता हर क्षण-क्षण में।।
33. महाभयंकर नाग उठाया।
श्रीमती मन भय नहीं आया।।
34. विषधर पुष्पहार बन जाता।
अन्तर मन संगीत गुँजाता।।
35. मदनरया पर संकट आया।
किसने उसको पार लगाया।।
36. सती अंजना धीरज धारे।
रूठे पवन नहीं मन हारे।।
37. आपद में ना शीष झुकाना।
यह हमने अरणक से जाना।।
38. मन चंचल न चपल हो पाए।
श्रद्धा हम मजबूत बनाएं।।
39. वीर प्रभु की जय-जय बोलें।
जय-जय अन्तर भाव संजोलें।।
40. जय हो, जय हो, जय हो, जय हो।
''राम!'' भक्त की सदा विजय हो।।

6 7 0 2

ऋतु-नय-अम्बर-दृग (2076) बरस, आश्विन बद की दूज।

सूर्यनगर शशि शोभता, श्रद्धा हृदय अबूझ।।

श्रद्धा को शुभ भाव से, जो धारे नर-नार।

'राम' सदा प्रसन्न रहे, दुःख जायेगा हार।।

मोह जायेगा हार।।

1

धर्म है जीवन का प्राण

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

अहिंसा, संयम, तप रूप धर्म मंगल है। उत्कृष्ट है। ऐसे धर्म में जिसका मन लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

चार पुरुषार्थ बताए गए हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों की प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है। इन चारों में पहला स्थान धर्म को दिया गया और परिणाम मोक्ष को बताया गया है। गृहस्थ के लिए अर्थ को भी जरूरी बताया गया है, पर उसका उपार्जन धर्मपूर्वक होना चाहिए। नैतिकतापूर्वक होना चाहिए। अनीति, सामान्य-सभ्य व्यक्ति के लिए भी उचित नहीं है, तो जो धर्मस्थान में पहुँच गया हो उसके लिए तो अनैतिकता से सम्बन्ध रहना ही नहीं चाहिए।

श्रावक के व्रतों में कूड़ा (झूठा) लेख लिखना, झूठा तौल करना, चोरी की वस्तु लेना, चोर को सहायता करना अतिचार रूप बताए गए हैं। ये अनैतिक कार्य हैं। ये कार्य श्रावक के लिए वर्जित हैं। जहाँ धर्म प्रकट हो गया वहाँ अनैतिकता नहीं होनी चाहिए। अर्थ दोयम है। धर्म प्रथम है। धर्म हमें सद्गति की ओर प्रेरित करने वाला है। वह सदाचार में स्थापित करने वाला है। सद् विनिमय में टिकाने वाला है, इसलिए धर्म जीवन की प्रथम आवश्यकता है।

हम कितने ही उजले वस्त्र पहन लें, कितनी ही बढ़िया सामग्रियों को इकट्ठा कर लें, बंगला-गाड़ी आदि बहुत सारी चीजें प्राप्त कर लें किंतु यदि धर्म नहीं है, धर्म का पुरुषार्थ नहीं है तो सब शून्य है। शून्य का मोल नहीं होता,

किंतु किसी अंक का सहयोग मिल जाए तो शून्य भी कीमती हो जाता है। तीन-चार शून्य हो तो उसकी कीमत कितनी होगी?

(श्रोतागण बोले-कोई कीमत नहीं होगी)

उसके पीछे एक लग गया, दो लग गया, तीन का अंक लग जाय तो सारे शून्य कीमती हो जाएंगे। इसी तरह धर्म है तो अर्थ कीमती है। धर्म है तो काम कीमती है। धर्म है तो मोक्ष मिलेगा। बिना धर्म के अर्थ कीमती नहीं हो सकता, मूल्यवान नहीं हो सकता। बिना धर्म के हमारी कामनाएं हमें तृप्ति दिलाने वाली नहीं हो सकती। धर्म नहीं होगा तो अतृप्त इच्छाएं दौड़ती रहेंगी। कामनाएं बढ़ती रहेंगी। खारा पानी कितना भी पी लें प्यास बुझेगी नहीं।

लवण समुद्र का पानी खारा होना बताया गया है। जैसे उस पानी से प्यास नहीं बुझती, वैसे ही धर्मरहित, नीतिरहित अर्थ और काम से व्यक्ति की प्यास नहीं बुझ पाती। उसकी तृष्णा बुझ नहीं पाती। धर्म आएगा तो खोटी प्यास समाप्त हो जाएगी। धार्मिक व्यक्ति का मस्तिष्क तृष्णा के चक्रव्यूह से परे हो जाएगा। तृष्णा, खोटी प्यास है। उससे हासिल कुछ भी नहीं होता, केवल पाप मिलता है। नीतिकारों ने कहा है कि 'तृष्णा तेरा पार कहाँ से पाएं' अर्थात् तृष्णा के उस किनारे तक कोई नहीं पहुँच पाया। जैसे समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे को प्राप्त करना बहुत कठिन है, वैसे ही तृष्णा का किनारा, तृष्णा का छोर प्राप्त कर पाना संभव नहीं होता। केवल संतोष ही तृष्णा से पार कराने में समर्थ हो सकता है, इसलिए धर्म महत्त्वपूर्ण बिंदु है। अत: जो भी क्रिया करें उसमें धर्म का पुट लगा रहना चाहिए, बना रहना चाहिए। विचारों में धर्म होगा तो अनैतिक कार्य नहीं हो पाएंगे। विचार धर्मशून्य होंगे, अर्थ प्रधान होंगे तो गलत रास्ते पर चलने वाले को रोका नहीं जा सकता या यूँ कहें कि गलत रास्ता उसके लिए रुक नहीं पाएगा। धर्मशून्य व्यक्ति गलत राह पर आगे बढ़ता चला जाएगा। वह पतन के रास्ते पर चला जाएगा। पतन के रास्ते पर एक बार आगे बढ़ा हुआ व्यक्ति कहाँ पहुँच जाएगा कहना मुश्किल है।

इस प्रसंग से संबंधित एक कहानी याद आ रही है। कहानी एक दीवान की है। एक दीवान सम्राट के सामने से निकल रहा था। वह अपने दुपट्टे में कुछ छिपाकर ले जा रहा था। सम्राट ने उसे देखा तो कहा, दीवान! मुझसे क्या छिपा रहे हो?

दीवान ने कहा, हुजूर शराब की बोतल है।

सम्राट ने कहा, अरे! क्या तुम शराब पीते हो।

उसने कहा, हाँ, कभी मांस खाता हूँ तो साथ में शराब भी पी लेता हूँ।

सम्राट बोले, अरे! तुम मांस भी खाते हो?

उसने कहा, कभी वेश्या के वहाँ जाना होता है तो मांस और शराब दोनों की व्यवस्था हो जाती है।

सम्राट फिर बोले, अरे! तुम वेश्या के यहाँ भी जाते हो?

वह बोला जब जुए में पैसे जीत जाता हूँ।

एक दुर्गुण अनेक दुर्गुणों को बुला लेता है जबकि एक सद्गुण (धर्म/नैतिकता/प्रामाणिकता/ईमानदारी/सत्य) सारे दुर्गुणों को भगाने में समर्थ हो जाता है।

सूर्य निकलता है तो अँधेरा गायब हो जाता है। सूर्य के निकलने के पहले उसकी लालिमा सूचना देती है कि अब अँधेरा टिकने वाला नहीं है। जैसे सूर्य के निकलने से अँधेरा गायब हो जाता है, वैसे ही धर्म का सूर्य जब हमारे जीवन में प्रकट हो जाएगा तो सारा दुर्गुण, सारा अँधेरा, अज्ञान भाग खड़ा होगा। उनको रहने की जगह नहीं मिल पाएगी। एक दुर्गुण जीवन में व्याप्त हो गया तो वह दूसरे दुर्गुण को बुलाएगा। जिसकी जैसी मित्रता होगी, वह वैसे ही मित्रों का संगठन बनाएगा।

अभय कुमार, मगध सम्राट का पुत्र था। साथ ही दीवान भी था। महामंत्री भी था। कालशौकरिक एक कसाई था। उसको समझाने के कितने ही उपक्रम हुए, उसके बावजूद वह कत्लखाना बंद करना नहीं चाहता। वह पाँच सौ पाडों को रोज काटता है, मारता है। अभय कुमार ने उस कत्लखाने को बंद कराने का अभिनव प्रयत्न किया। इसके लिए उसने सुलश (कालशौकरिक के पुत्र) से दोस्ती की और धीरे-धीरे उसको धर्म की ओर अभिमुख किया। उसे धर्म तत्त्व का बोध दिया। उसका परिणाम आया कि सुलश बारह व्रतधारी श्रावक बन गया। एक कसाई का बेटा, कत्लखाना चलाने वाला या भविष्य में जिसको चलाने की चाह रही हो, वह बारह व्रतधारी श्रावक बन जाए यह बहुत कठिन काम है।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. की जन्म शताब्दी 'अनन्य

महोत्सव' के समय एक विकल्प दिया गया था। उसके अनुसार भाई सलीम जी ने कई व्यक्तियों का कत्लखाना छुड़वाया, जीव हिंसा छुड़वाई। उन्होंने उन लोगों को प्रतिज्ञा कराई कि वे न जीवों का कत्ल करेंगे और न जीवों का भक्षण ही करेंगे। वह भले ही मुस्लिम हैं, किंतु पिपलिया कलां में बोहरा परिवार, शाह परिवार के संपर्क में आने से उनके मन में यह भावना जगी कि मैं दस लोगों से कत्लखाने बंद करवाऊँगा। शायद पाँच-सात लोगों से उन्होंने कत्लखाने छुड़वा दिए। उन व्यक्तियों को सही दिशा-निर्देश देने से, सही रास्ते पर लगा देने से बहुत सी हिंसा टल गई। दूसरी ओर दुर्गुणों की ओर धकेल देने से व्यक्ति कितने ही पाप कर्म को बढ़ाने वाले हो जाते हैं।

चातुर्मासिक पर्व हमें प्रेरणा देता है। श्रावक का जीवन केवल धर्म की आराधना करने के लिए ही नहीं होता, धर्म-बोध को वितरित करने के लिए भी होता है।

तीर्थ कितने बताए गए हैं?

(श्रोतागण बोले- चार तीर्थ बताए गए हैं)

साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका, चार तीर्थ हैं। साधु के सान्निध्य से जीव तिरता है, संसार पार करता है। साध्वी के सम्पर्क से, जीव पाप कर्म से मुक्त हो जाता है। संसार सागर से तिर जाता है। वैसे ही श्रावक और श्राविकाएं भी प्राणियों को संसार-सागर से तिराने वाले होते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि श्रावक-श्राविका भी धर्म की प्रभावना करते हैं। लोगों को धर्म से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। जब भी उनके गाँव-नगर में संत-महात्माओं का आगमन होता है, वे मिलने वालों से बोलते हैं कि महात्मा पधारे हैं, चलो हम उनकी देशना सुनें। उनकी वाणी सुनें। उनसे ज्ञान चर्चा करें। कुछ त्याग-प्रत्याख्यान स्वीकार करें। इस प्रकार से प्रयत्न करते हुए वे जन-जन को संतों के सान्निध्य में लाते हैं।

संतों के सान्निध्य में आने पर किसी-किसी भाई का पुण्य प्रबल होता है। जिसका क्षयोपशम नजदीक आया होता है वह श्रद्धावान बन जाता है। उसकी शंकाएं दूर हो जाती हैं। वह धर्म आराधना करने वाला बन जाता है। जैन धर्म में जातिवाद का महत्त्व नहीं है।

जात-पात पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई

गौतम गणधर, ब्राह्मण कुल से थे। जम्बू कुमार वैश्य कुल से थे।

हरीकेशीबल मुनि चाण्डाल थे। अर्जुन माली था। यहाँ हर किसी का समावेश है। कोई भी इस धर्म की आराधना कर सकता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने प्रथम चातुर्मास रतलाम (संवत् 2019) के बाद लगभग साढ़े सत्रह हजार लोगों को व्यसनमुक्त किया। जिनको व्यसनमुक्त किया उनको धर्मपाल की संज्ञा दी गई। आज भी वे लोग धर्माराधना कर रहे हैं। सामायिक-स्वाध्याय कर रहे हैं। धर्म तत्त्व को सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या जा रहा था नाना गुरु का? कुछ जा नहीं रहा था, किंतु लोगों की भावना देखी तो एक संत को लेकर उन मोहल्लों में, गाँवों में चले जाते और लोगों को उद्बोधन देते। चातुर्मास के बाद साढ़े तीन महीने के समय में साढ़े सत्रह हजार लोगों को मांस-मदिरा का त्याग कराया।

हम विचार करें कि हम कितने लोगों को व्यसन मुक्त कराने में समर्थ बने हैं! यह बीमारी कहीं हमारे घर में तो पैदा नहीं हो रही है, हमें यह समीक्षा करने की आवश्यकता है। चातुर्मास धर्माराधना का एक आयाम है। जैसे वर्षभर में श्रावण-भाद्रपद खेती के लिए, फसल प्राप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं, वैसे ही चातुर्मास धर्म की विशेष आराधना के लिए हमें प्राप्त होते हैं। वैसे बारहों महीने धर्म की आराधना होती है। धर्माराधना जितनी करोगे बढ़िया है, किंतु चातुर्मास का चार महीनों का समय विशेष रूप से प्रेरित करने वाला होता है। हमें प्रेरणा लेनी चाहिए। त्याग, नियम, पच्चक्खाण से अपनी आत्मा को भावित करना चाहिए।

हमें पाँच महीनों का यह चातुर्मास मिला है। विचार करें कि प्रतिदिन एक प्रत्याख्यान अवश्य ग्रहण करना है।

मेरी आवाज कहाँ तक पहुँच रही है?

पाँच महीनों तक रोज एक-एक प्रत्याख्यान स्वीकार करना। सभी अपने-अपने हाथ खड़े कर लो। बहनें भी हाथ उठाएं। एक प्रत्याख्यान रोज करना। प्रत्याख्यानों की सूची आपको प्राप्त हो सकती है। साधु-साध्वियों के पास से आपको प्रत्याख्यानों की सूची मिल सकती है। साधुओं के मुख से, महासतियों के मुख से यदि प्रत्याख्यान स्वीकार करेंगे तो विशेष महत्त्व की बात बनेगी। 'आम के आम और गुठलियों के दाम।'

प्रत्याख्यान का तो लाभ मिलेगा ही साथ ही संत-सतियों के दर्शनों

का भी लाभ मिलेगा। आप देखते होंगे कि सौ ग्राम के ग्लूकोज के डिब्बे पर लिखा होता है, इसके साथ 25 ग्राम फ्री। वैसा ही होगा। संत-सतियों से प्रत्याख्यान लेंगे तो दर्शन करने का मौका फ्री में मिलेगा। दर्शन करने का मौका मिलेगा, अवसर मिलेगा, दर्शनों का लाभ लेना ही चाहिए।

अभी आप उपाध्याय श्री जी से सुन गए कि श्रद्धापूर्वक सुनना। श्रद्धापूर्वक सुनने का मूल्य है। हम प्रतिदिन व्याख्यान सुनें, नहीं सुन सके तो प्रार्थना में भाग लें। यह भी नहीं हो सका तो वांचनी का लाभ लें। प्रश्नोत्तरी का लाभ लें। यदि इनमें से कुछ भी नहीं हो सकता तो प्रतिदिन दर्शन करने का लक्ष्य रखें। जहाँ-जहाँ, जिस-जिस गाँव में संत-सतियां जी विराजमान हैं, वहाँ के भाई-बहन कम-से-कम पाँच महीने दर्शन लाभ से वंचित नहीं रहें।

साग-सब्जी का व्यापार भी लाभ देने वाला होता है। अनाज का व्यापार भी लाभ वाला होता है। सोना-चाँदी के व्यापार से भी लाभ होता है और हीरों का व्यापार भी लाभ देने वाला होता है। दर्शन करना साग-सब्जी के व्यापार के समान लाभप्रद होगा। प्रार्थना-वांचनी का लाभ लेना अनाज और सोना-चाँदी के व्यापार के समान लाभदायक होगा। व्याख्यान, प्रार्थना, वांचनी, प्रतिक्रमण सबका लाभ लेना कौन-सा लाभ होगा?

(श्रोतागण बोले- हीरों के व्यापार से होने वाले लाभ के समान होगा)

हीरों के व्यापार के समान लाभ मिलेगा। जिंदगी बहुत बीत गई है और बहुत बाकी होगी। जो बीत गई वो अपने हाथ में नहीं है। जो शेष है वह अपने हाथ में है। विचार करना है कि शेष जिंदगी को कैसे सजाएं, कैसे सँवारे ताकि हमारा भविष्य उज्ज्वल हो जाए। हर व्यक्ति चाहता है कि मेरा भविष्य उज्ज्वल हो। कौन अपने भविष्य को अंधकारमय देखना चाहता है? जो अपना भविष्य अंधकारमय देखना चाहते हैं वे हाथ खड़ा करें। जो अपने भविष्य को उज्ज्वल देखना चाहते हैं वे अपना हाथ खड़ा करें। अपना भविष्य देखें कि वह कैसा है।

उज्ज्वल भविष्य कैसे बनेगा? हमारा भविष्य उज्ज्वल कैसे बनेगा? कोयला हाथ में लेंगे तो हाथ काले होंगे और रत्नों को हाथ में लेंगे तो हाथ काले नहीं होंगे। हीरों की दलाली करने वाले दलाल के हाथ में हीरे आएंगे

और कोयले की दलाली करने वाले के हाथ में कोयले आएंगे।

हमें कौन-सा व्यापार करना है? हीरे का व्यापार करना है या कोयले का?

(श्रोतागण बोले- हीरे का करना है)

हमारे विचार शुद्ध होने चाहिए। पवित्र होने चाहिए। धर्म की बात सुनेंगे, धर्माराधना करेंगे तो जीवन धन्य बनेगा। दस दिनों की प्रेरणा दी जा रही है। दस दिन ही नहीं, पूरा जीवन भी धर्म के लिए लगाना पड़े तो लगाना। धर्म से बढ़कर कोई चीज नहीं है। धर्म की आराधना होगी तो भविष्य उज्ज्वल होगा। यदि हमने धर्म को भुला दिया तो हमारा भविष्य उज्ज्वल होना मुश्किल है। इसलिए धर्म से अपने आपको जोड़ने का लक्ष्य बनाएं। धर्माराधना करें।

आज चातुर्मासिक पर्व है। हमने कोई-न-कोई नियम अवश्य लिया होगा। अपने जीवन में कोई-न-कोई त्याग-तपस्या अवश्य की होगी। तेला करने वाले तेला करके बैठे हुए हैं। कई लोग लम्बी तपस्या भी कर रहे हैं। संत-सतियों में भी कई तपस्याएं चल रही हैं। भाई-बहनों में भी कई तपस्याएं चल रही हैं। उपवास करने वाले कई होंगे तो आयंबिल करने वाले भी कई होंगे। पौषध करने वाले भी कई हैं। आज सामायिक का टारगेट दिया। कितनी सामायिक का टारगेट था?

(श्रोतागण बोले-5100 सामायिक का टारगेट था)

यहाँ बैठने वाले सभी लोगों ने पाँच-पाँच सामायिक की होगी तो 5100 सामायिक का टारगेट तो कभी का पूरा हो गया होगा। यदि दिन में और सामायिक करेंगे तो उसका लाभ अलग होगा। इसका मतलब यह नहीं है कि अभी की सामायिक का लाभ नहीं मिलेगा। इसका भी लाभ मिलेगा और जो आगे करेंगे उनका भी लाभ मिलेगा। यदि उपवास और पौषध नहीं कर पाए तो आयंबिल-एकासना कर सकते हैं। कोई एकासना भी नहीं कर पाए तो बेआसना से वंचित न रहे। दो टाइम से ज्यादा खाना नहीं और रात्रि को चौविहार करना। इस प्रकार का लक्ष्य बनाएंगे तो पर्व की आराधना करने में समर्थ होंगे।

आज रात्रि प्रतिक्रमण होने के बाद साधु-साध्वी के लिए एक स्थान निर्धारित हो जाता है। इसके बाद सात किलोमीटर के आगे, सात किलोमीटर

के बाहर सुखे-समाधे जाने की स्थिति नहीं रहती। संवत्सरी के बाद जो मकान मर्यादा में लिए हुए होते हैं उनसे भिन्न स्थानों की स्थिति नहीं रहती। उपाध्यायश्री जी के आज छह की तपस्या है। इधर महासती सुशीला श्री जी तो आपके यहाँ पहले से ही विराजमान हैं। आपको लम्बे समय से लाभान्वित कर रही हैं। जय श्री जी म.सा., चेतना श्री जी म.सा., कुसुमकांता श्री जी म.सा., विजेता श्री जी म.सा., रश्मि श्री जी म.सा., ज्योतिप्रभा श्री जी म.सा., राजुल श्री जी म.सा. आदि कई महासतियां विराजमान हैं। सारे कितने ठाणे हो गए?

(शौकीन जी बोले- 45 ठाणे हो गए)

45 सतियां जी हैं और संत आए आठ। यहाँ से विहार हो तो कितने साधु-साध्वियों का विहार होना चाहिए?

(मंत्री जी बोले- 21 और होने चाहिए)

21 में कमी रह गई तो आप तैयार रहना।

रतलाम में पचीस दीक्षाएं हुई थीं। पहले दो-तीन दीक्षा खुली थी फिर खुलती गई। रतलाम वालों ने, पी.सी. साहब ने कहा कि 25 दीक्षा करवाएंगे। मैंने कहा, आप बोल तो रहे हो, किंतु नहीं हुई तो आप लोग तैयार रहना। आप बोल रहे हो उससे कम नहीं होनी चाहिए। उनका पुण्य प्रबल नहीं रहा होगा, क्योंकि वहाँ पर 25 दीक्षाएं हो गईं। वे वंचित रह गए। आपका पुण्य प्रबल होगा तो 21 में आपका नम्बर आएगा। पुण्य प्रबल नहीं होगा तो दूसरों के हाथ में माल आ जाएगा और आपके हाथ में बासी खुरचन आएगी। जो भी हो, हम प्रयत्नशील बनें।

कल हर्षित मुनि जी, निर्वाण मुनि जी ने प्रेरणा दी कि बच्चों की उपस्थिति होनी चाहिए और आज बच्चे भी आप देख रहे हैं। उन्होंने कहा कि हमारे पीछे बैठने की जगह है, बहुत सारे बच्चे बैठ सकते हैं। हम अपने आपको आगे बढ़ाने का लक्ष्य बनाएं। धर्म हमारा जीवन है।

'जीवुं छे तो धर्म ना काजे, मरवुं छे तो धर्म ना काजे'

हमारे जीवन का आधार, हमारे जीवन का प्राण धर्म है। इस प्रकार का हमारा लक्ष्य रहेगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

02 जुलाई, 2023

2

धर्म बने मुझ प्राण

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

श्रीमद् स्थानांग सूत्र में धर्म के दस भेद बताए गए हैं। उसके दो विभाग किए गए- लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म। लौकिक धर्म का मतलब है- लोक सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन करना जबकि लोकोत्तर धर्म उसे कहा गया है जिससे आत्मा प्रधानता को प्राप्त कर सके। लोकोत्तर का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि जो परलोक में काम आए, जो परलोक को सुधारने वाला हो। लौकिक धर्म के अन्तर्गत ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि का समावेश है और लोकोत्तर धर्म दो प्रकार का है। पहला, श्रुत धर्म और दूसरा, चारित्र धर्म।

दशवैकालिक सूत्र में अहिंसा, संयम और तप को धर्म बताया गया है। वस्तु के स्वभाव को भी धर्म कहा गया है। कहा गया है- 'वत्थु सहावो धम्मो' किंतु हम विभाव में जी रहे हैं। समता, आत्मा का स्वभाव है। वह आत्मा का धर्म है। विषमता धर्म नहीं है, वह अधर्म है। विषमता अपनी आत्मा का स्वभाव नहीं है। विभाव, दूसरे द्रव्य के मिलने से पैदा होता है जबकि स्वभाव निखालिस होता है। विभाव में मिलावट होती है। समता से शांति-समाधि मिलेगी और विषमता से अशांति पैदा होगी। विभाव से शांति पैदा नहीं हो सकती।

धर्म के लिए एक बात और कही जाती है कि जो धारण करे वह धर्म है। दुर्गति में जाते हुए प्राणी को, जीव को, जो थाम लेता है, जो जीव को वहाँ गिरने नहीं देता, उसको धर्म कहा गया है। धर्म करने से पहले धर्म के स्वरूप को

समझना चाहिए और उसके प्रति श्रद्धा होनी चाहिए।

धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

'धम्म सद्धा हृदय धरूँ' यानी धर्म की श्रद्धा को हृदय में धारण करूँ। हृदय गंभीर होता है, गहन होता है। वहाँ तक गई चीज को वापस निकालना मुश्किल होता है, कठिन होता है। इसलिए धर्म के प्रति श्रद्धा हृदय में धारण करें। ध्यान देना है कि श्रद्धा और विश्वास में फर्क है। श्रद्धा, लोकोत्तर धर्म का अंग है। लौकिक व्यवहार में विश्वास जरूरी है और आध्यात्मिक क्षेत्र में श्रद्धा का होना जरूरी है। एक बात फाइनल है कि विश्वास हर जगह आवश्यक है। विश्वास नहीं रहेगा तो विश्व नहीं रहेगा। विश्व टिका है विश्वास पर। कोई पूछे कि विश्व किस पर टिका हुआ है? लोक व्यवहार किस पर टिका हुआ है? और उसका उत्तर यदि एक वाक्य में देना हो तो यही दिया जा सकता है कि विश्वास पर ही विश्व टिका हुआ है। विश्वास हटा लिया जाए तो न परिवार रहेगा, न समाज। न राष्ट्र रहेगा और न विश्व। जैसे विश्वास पर विश्व टिका हुआ है, वैसे ही आध्यात्मिक जगत में श्रद्धा पर धर्म टिका हुआ है। श्रद्धा नहीं होगी तो सिद्धि नहीं मिलेगी।

हम अभी तक संसार में क्यों बने हुए हैं? हमारा निर्वाण क्यों नहीं हो पाया? क्योंकि हमने धर्म श्रद्धा का स्पर्श नहीं किया। धर्म श्रद्धा को हृदय में नहीं जमाया, इसलिए संसार में रुके हुए हैं। धर्म क्रिया कर लेना एक बात है, और धर्म के प्रति श्रद्धा होना दूसरी बात है।

धर्म श्रद्धा के लिए पहली बात है–

'परमत्थ-संथवो...'

अर्थात् परमार्थ का परिचय होना चाहिए। यहाँ प्रश्न खड़ा होगा कि परमार्थ क्या है?

परम और अर्थ दो शब्द मिलकर परमार्थ शब्द बना है। परम का अर्थ होता है श्रेष्ठ, उत्तम। अर्थ यहाँ पर प्रयोजन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् परम प्रयोजन का परिचय। हमारा परम प्रयोजन, उत्तम प्रयोजन, परम लक्ष्य, परम उद्देश्य क्या है, उसका हमें अता-पता नहीं है। बहुत से लोग इतना ही मानते हैं कि सुबह उठकर, तैयार होकर दुकान, ऑफिस, फैक्ट्री चले जाएं।

वहाँ जाकर शाम तक व्यापार करते रहें। अपना काम करते रहें। शाम को घर आकर खाना खाएं और सो जाएं। यही अधिकांश व्यक्तियों के जीवन की कहानी है। यही लोगों के जीवन का व्यवहार बना हुआ है। यदि धार्मिक परिवार है तो थोड़े संस्कार होंगे। कोई पाँच नवकार, नौ नवकार, ग्यारह नवकार गिन लेता है और सोचता है कि मेरा काम हो गया। मैं यह नहीं कहता कि उससे काम नहीं हुआ क्योंकि कहा गया है–''एगो वि णमोक्कारो।'' अर्थात् भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक के 24 तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर को यदि सच्चे हृदय से एक भी नमस्कार हो जाए, सच्चे दिल से, सच्चे भावों से एक नमस्कार हो जाए तो कल्याण हो जाए। निश्चित ही संसार से मुक्ति है। भावरहित लाखों नवकार मंत्र गिनने से भी कल्याण नहीं हो पाएगा किंतु भावपूर्वक एक नमस्कार से भी कल्याण हो सकता है। एक नमस्कार भी महत्त्वपूर्ण हो सकता है, बशर्ते उस नमस्कार में वैसी भावना भावित हो।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. ने उदयपुर के प्रथम चातुर्मास में एक बार इसकी व्याख्या करते हुए फरमाया कि हमारे शरीर में 72 हजार संधियां हैं। वे सभी 72 हजार संधियां नमनी चाहिए। हमारी तो गरदन भी पूरी नहीं नम पाती। हमारे घुटने भी पूरे नम नहीं पाते। पंचांग (पाँच अंग) नमे तो नमस्कार होता है। अष्टांग (आठ अंग) नमे तो नमस्कार होता है। पाँच अंग कौन–से हैं? हम भूलते जा रहे हैं। पंचांग हैं– दोनों घुटने, दोनों हाथ और मस्तिष्क। इन पाँचों अंगों को नमाने का मतलब है–दोनों घुटने, दोनों हाथ और मस्तिष्क जमीन पर होना। इस तरह होने से पाँचों अंग नमेंगे।

कई लोग पूरी तरह लेटकर साष्टांग वंदना करते हैं। इसमें आठ अंग की बात बताई गई है। इस तरह की वंदना साष्टांग वंदना है।

14 मोटी संधियां हैं और 72 हजार बारीक संधियां हैं। सारी संधियां यदि नम जाएं तो एक नमस्कार भी बड़ा महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। वैसे केवल संधियां नमने से भी काम नहीं चलेगा। संधियों के नमने के साथ में भावनात्मक सम्बन्ध भी होना चाहिए।

बाहुबली जी नमस्कार करने के लिए जैसे ही भावना बनाते हैं, वैसे ही उन्हें केवलज्ञान हो जाता है। उनके केवलज्ञान में कोई रुकावट नहीं हुई, कोई बाधा नहीं आई। जब तक नमस्कार का भाव नहीं हुआ, जब तक वे नमने

के लिए उद्यत नहीं हुए, तब तक उनका केवलज्ञान रुका हुआ था। जैसे ही नमस्कार की भावना बनी, वैसे ही केवलज्ञान प्रकट हो गया। इसलिए हमारा ध्यान इसी पर केंद्रित होना चाहिए कि हमारा परमार्थ क्या है? हमारा प्रयोजन क्या है? हमारा परम प्रयोजन क्या है?

एक व्यक्ति यदि सोचता है कि मुझे करोड़पति बनना है, मुझे अरबपति बनना है, खरबपति बनना है, विश्व के शीर्ष दस लोगों की लिस्ट में अपना नाम लाना है, भारत के टॉप-टेन की सूची में मुझे अपना नाम लाना है और वह उसके लिए प्रयत्न कुछ भी नहीं करे तो क्या सोए-सोए, बैठे-बैठे उसका नाम आ जाएगा? यदि उसके अनुरूप प्रयत्न नहीं होगा तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता मिलेगी पुरुषार्थ से। सफलता मिलेगी प्रयत्न करने से।

जो उद्यम करता है वह लक्ष्मी को प्राप्त करता है। लक्ष्मी उसके चरण चूमती है। यदि व्यक्ति उद्यम ही नहीं करेगा तो सफलता कहाँ से मिलेगी! बिना उद्यम के सफलता मिलने वाली नहीं है। जैसे टॉप टेन में आने के लिए पुरुषार्थ करना होता है, वैसे ही परमार्थ को प्राप्त करने के लिए, परम प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा। परम प्रयोजन में सफल होने से पहले परमार्थ का परिचय होना जरूरी है। परमार्थ क्या है, परम प्रयोजन क्या है?

नौ तत्त्वों को परमार्थ कहा गया है। मोक्ष, परम अर्थ है। मोक्ष परमार्थ है। किसी भाई के मिलने पर उससे परिचय पूछते हैं कि कहाँ के हो, क्या व्यापार है, क्या धंधा है? व्यापार-धंधा का परिचय तो कर लेते हैं, पर मोक्ष का परिचय कैसे करें?

मोक्ष का परिचय करने के लिए हमें आगम को देखना पड़ेगा या आगम के जानकार का सान्निध्य प्राप्त करना पड़ेगा। उसके लिए कहा गया है कि- 'सुदिट्ठ-परमत्थ-सेवणा वा वि' यानी जिन्होंने परमार्थ को अच्छी तरह से जान लिया हो, जिन्होंने परमार्थ का भलीभाँति परिचय कर लिया हो, जिन्होंने महान् गुरु का सान्निध्य प्राप्त कर लिया हो, सम्पर्क प्राप्त कर लिया हो, उनके सान्निध्य से हमें भी मोक्ष का परिचय प्राप्त हो पाएगा। परमार्थ का परिचय होगा, उसका ज्ञान होगा तो हमारी श्रद्धा मजबूत हो पाएगी। हम श्रद्धा को टिकाने में समर्थ होंगे।

'धम्म सद्धा हृदय धरूँ' के माध्यम से बहुत गहरी बात बताई गई है।

गहरी बात है कि धर्म श्रद्धा को हृदय में धारण करूँ। ऐसे धारण करूँ कि श्रद्धा मेरा प्राण बन जाए।

प्राण किसको कहते हैं? प्राण किसको कहा गया है? जिसके द्वारा जीव जीवित रहता है उसको प्राण कहते हैं। हम अभी जीवित हैं या मरे हुए हैं?

(श्रोतागण बोले- अभी जिंदा हैं)

दो प्रकार के प्राण हैं- द्रव्य प्राण और भाव प्राण।

भाव प्राण हर आत्मा में होता है और द्रव्य प्राण जिस-जिस योनि में जीव जाता है उसके अनुसार प्राप्त करता है। एकेंद्रिय में चार प्राण। बेइंद्रिय में छह प्राण। तेइंद्रिय में सात प्राण। चतुरेंद्रिय में आठ प्राण। पंचेंद्रिय नौ व दस प्राणों को स्वीकार करने वाला हो जाता है।

आयुष्य और श्वाशोच्छवास भी प्राण है। श्वाश चल रही है, आयुष्य प्राण मौजूद है तो व्यक्ति जिंदा रहता है। जिसका आयुष्य बल, प्राण खत्म हो जाए उसको हजारों डॉक्टर इकट्ठे होकर भी जीवित नहीं कर सकते। यदि आयुष्य बल-प्राण मौजूद है तो किसी छोटे डॉक्टर द्वारा दी गई छोटी सी दवा, छोटी सी पुड़िया भी कारगर हो सकती है। वह व्यक्ति मर नहीं सकता। जब तक आयुष्य बल-प्राण मौजूद है, तब तक व्यक्ति मर नहीं सकता। जिस दिन आयुष्य बल-प्राण पूरा हो जाएगा, उस दिन किसी के हाथ में कुछ नहीं रहेगा। फिर वह दूसरी गति में जाएगा और वहाँ पर जिन प्राणों को धारण करेगा, उसके अनुसार जीएगा।

'धर्म बने मुझ प्राण'

यानी धर्म मेरे प्राण बन जाएं अर्थात् मेरा जीवन धर्म के आधार पर टिके। धर्म है तो मेरा जीवन है। जीना है तो धर्म के लिए और मरना है तो भी धर्म के लिए।

अर्हन्नक श्रावक का वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में मिलता है। वह जहाज में माल भरकर समुद्र के रास्ते यात्रा कर रहा था। समुद्र में जब उसका जहाज चल रहा था, तब एक देव आया। देव ने जहाज को अपनी दो अंगुलियों पर उठा लिया और अर्हन्नक श्रावक से कहा कि तू धर्म छोड़ दे। देव उससे कह रहा है कि धर्म को छोड़ दे, प्रतिज्ञा तोड़ दे।

उसके साथ यात्रा कर रहे अन्य लोग सुझाव देने लगे कि यह कठिनाई

का समय है, ऐसे समय में एक बार धर्म को छोड़ने में क्या जाता है।

किंतु अर्हन्नक श्रावक ऐसा नहीं करता है। वह कुछ भी जवाब नहीं देता है। देवता ने उससे कहा, सोच लो। तुम प्रतिज्ञा नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा जहाज ऊपर से नीचे गिराऊँगा। तुम्हारे जहाज के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे। माल सागर में स्वाहा हो जाएगा। वह एक बार, दो बार, तीन बार कहता है।

अर्हन्नक श्रावक मन में विचार करता है यदि धर्म से जहाज नहीं तिरेगी तो अधर्म से तो कभी तिरने वाली नहीं है। वह सोचता है-

'तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म न जाए'

सामायिक में बैठने वालो! मेरी बात ध्यान में लेना। कोई भी पंखा झलने का काम नहीं करेगा। जैसी गरमी आपको लग रही है, वैसी ही हमें भी लग रही है। ए.सी. में बैठने वालों को गरमी कुछ ज्यादा लग रही होगी। कई भाई कागज हिला रहे हैं। नहीं हिलाना चाहिए। थोड़ी देर के लिए अभ्यास करना जरूरी है। सामायिक में सावद्य योगों का त्याग है। इस प्रकार से की गई हवा भी वायु काय की हिंसा कराने वाली होती है। यह गरमी तो कुछ नहीं है। हमने नरकों में इससे अनन्त गुना गरमी सहन की है।

गुरु महाराज फरमाया करते थे कि भिलाई की भट्टी में जितनी गरमी है, उससे अनंत गुना अधिक गरमी हमने नरक में सहन की है। यह गरमी तो कुछ भी नहीं है। यह असह्य गरमी नहीं है। ऐसी बात नहीं है कि हम इस गरमी को सहन नहीं कर सकते, इसलिए थोड़ी देर गरमी सहने का अभ्यास करना है।

खैर, मैं बात बता रहा था अर्हन्नक श्रावक की। उसने निर्णय किया कि तन जाए तो भले ही चला जाए, धन जाए तो चला जाए, किंतु मेरा सत्य धर्म नहीं जाना चाहिए। धर्म को छोड़कर तन को स्वीकार करूँ तो मेरा जीना, जीना क्या!

मोती की कीमत उसकी आब से होती है। उसकी आब ही हट गई तो कीमत जीरो हो गई। वैसे ही जिसमें से धर्म निकल गया उसके जीवन को जीवन नहीं कह सकते। वह तो जीती-जागती लाश है। जैसे प्राण निकलने के बाद लाश रहती है, वैसे ही जीती-जागती लाश है।

'धर्म आराधन नित करूँ'

''धर्म है ही, तो उसकी आराधना क्या करनी! जब धर्म मेरा प्राण है तो उसकी आराधना क्यों करनी!'' आँखें कमजोर हो रही हों तो उन्हें संबल देने

के लिए कुछ पदार्थों का सेवन किया जाता है ताकि आँखों की रोशनी बनी रह जाए। शरीर कमजोर हो रहा हो, काय बल क्षीण हो रहा हो तो ऐसी पौष्टिक चीजों का सेवन करते हैं, जिससे काया सशक्त बनी रहे। कोई भी इन्द्रिय क्षीण हो रही हो, उसकी शक्ति कम पड़ रही हो, तो लोग दवा देकर, उसकी शक्ति को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। वैसे ही धर्म को बनाए रखने के लिए धर्माराधना जरूरी है। प्राण मिल गए, किंतु उसकी सुरक्षा करना अपना काम है।

धन मिल गया, अब क्या काम बाकी रहा? उसकी सुरक्षा। उसकी सुरक्षा का दायित्व किस पर रहेगा? जिसने धन कमा लिया उसकी सुरक्षा का दायित्व किस पर रहेगा? जो धन कमाता है, उसकी सुरक्षा का दायित्व भी उसी पर होता है। जैसे धन की सुरक्षा का दायित्व उसे कमाने वाले का होता है, उसी प्रकार जिसने प्राण प्राप्त किए हैं उसकी जिम्मेदारी होगी कि वह प्राणों को बनाए रखे।

आप रोज भोजन करते हैं या कभी-कभी?

(श्रोतागण बोले-हम रोज भोजन करते हैं)

रोज भोजन किसलिए करना? रोज भोजन करने की क्या जरूरत है?

जैसे शरीर को टिकाए रखने के लिए रोज भोजन करते हैं, वैसे ही धर्म श्रद्धा को मजबूत बनाए रखने के लिए प्रतिदिन धर्माराधना होनी चाहिए। बहुत से घरों में एक आला होता है। उसमें देवी-देवताओं की प्रतिमाएं या फोटो रखे रहते हैं। घर के लोग उसके सामने रोज अगरबत्ती करते हैं। नहीं करने वाले नहीं करते होंगे, किंतु करने वाले एक दिन भी चूकते नहीं हैं। दीया-बत्ती करने वाले एक दिन भी चूकते नहीं हैं तो धर्माराधरना करने से हम कैसे चूक सकते हैं!

'धर्म आराधन नित करूँ'

धर्म की आराधना प्रतिदिन होनी चाहिए। हम प्रतिदिन धर्म की आराधना करेंगे तो वैसे ही जीवन धर्म भावों से ओत-प्रोत होगा, जैसे बूँद-बूँद करके घड़ा भर जाता है। एक-एक बूँद महत्त्वपूर्ण है। प्रतिदिन की धर्माराधना बूँद के समान है। रोज धर्माराधना करने से जीवन का घड़ा भरेगा।

हमारी आत्मा अनादिकाल से संसार में परितप्त है। उसको शांति मिलनी चाहिए। उसे समाधि मिलनी चाहिए। शांति और समाधि धर्माराधना से मिलेगी। इसलिए धर्म आराधना नित्य करनी चाहिए। प्रतिदिन धर्माराधना होनी चाहिए। एक बात और है-

'शक्ति सारूं भक्ति'

अर्थात् शक्ति के अनुसार हमें भक्ति करनी चाहिए। किसी के पास एक लाख रूपए नहीं है, वह हजारों की पूँजी में जी रहा है वह यदि करोड़ों का व्यापार करना चाहे तो क्या कर पाएगा? करने को कर भी ले, किंतु कुछ बनेगा नहीं। इसलिए जिसके पास जितनी शक्ति हो उसके अनुसार भक्ति होनी चाहिए।

आचार्य पूज्य नानालाल जी म.सा. बीकानेर विराज रहे थे। उनका इलाज चल रहा था। जयपुर के डॉक्टर रत्नसिंह करणु समय-समय पर बीकानेर आया करते थे। डॉ. रत्नसिंह की ससुराल बीकानेर के पास ही थी। एक बार वे आए तो गुरुदेव ने कहा, डॉक्टर साहब मैं विहार करना चाहता हूँ। डॉक्टर ने कहा, जिसके पाए दस रुपये की पूँजी हो वह सौ रुपये खर्च करना चाहे तो कैसे चलेगा? समझ में आ गई बात? दस प्रतिशत शक्ति है और सौ प्रतिशत रूप विहार करना चाहे तो काम कैसे बनेगा, इसलिए मैंने कहा 'शक्ति सारूं भक्ति।'

आप धर्माराधना के लिए कितना समय निकल सकते हैं?

कोई जरूरी नहीं है कि दो-चार घण्टा समय निकालें। कोई जरूरी नहीं है कि पाँच-दस सामायिक कर लें। जो भी समय निकले वह पूरा धर्म को समर्पित होना चाहिए। जो समय निकालें उसके बीच में कोई आए नहीं। आप लोग कम-से-कम कितना समय निकाल सकते हैं? बहुत से लोग सामायिक करते हैं, पर धर्माराधना करने वाले कितने लोग हैं? सामायिक में धर्माराधना होती है या नहीं? हो ही जाए निश्चित है क्या? यदि भाव सामायिक है तो नियमा (निश्चित रूप से) धर्माराधन है पर द्रव्य सामायिक है तो कोई नियम नहीं है कि धर्माराधना होगी। भाव का मतलब है-सावद्य योगों का त्याग। दो करण, तीन योग से हिंसा करूँ नहीं, करवाऊँ नहीं, मन से, वचन से व काया से तो भाव सामायिक होगी। उस स्थिति में वह सामायिक धर्माराधना की श्रेणी में जाएगी। अत: धर्माराधना के लिए नित्य अनुकूलतानुसार कुछ समय निकालें। उस समय में धर्माराधना के अलावा कुछ भी नहीं होना चाहिए। न परिवार, न समाज, न राष्ट्र। न क्रोध, न मान, न माया, न लोभ। कुछ भी बीच में नहीं आना चाहिए।

स्नानघर में जाने पर जैसे व्यक्ति का माइंड फ्री रहता है। कई लोग मस्ती से स्नानघर में गीत गुनगुनाने लगते हैं।

(गगन मुनि जी बोले- आजकल लोग स्नानघर में मोबाइल ले जाते हैं)

हमारे म.सा. बोल रहे हैं कि आजकल लोग स्नानघर में मोबाइल ले जाते हैं। आप स्नानघर में गए उस समय किसी ने दरवाजा खींच लिया और दरवाजा खुल गया तो कैसा लगेगा? मन में हड़कंप हो जाएगा। चाहे आप वस्त्रसहित भी क्यों न हों, हड़कंप हो जाएगा कि मैंने तो दरवाजा बंद किया था खुल कैसे गया। दरवाजा बंद है तो आप निश्चिंत हैं, बेफिक्र हैं। वैसी ही धर्माराधना करनी है। दरवाजा बंद करके बैठ जाओ। कमरे में बंद करके धर्माराधना करना कोई जरूरी नहीं है। पर मन का दरवाजा बंद करना पड़ेगा।

'बीजो मन-मंदिर आणुं नाही।' अर्थात् अब मेरे मन-मंदिर में दूसरा कोई नहीं आएगा। संवर हमारे यहाँ की कुण्डी है। जैसे आप प्रतिज्ञा लेते हो 'सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि' इससे मन का दरवाजा बंद हो गया। दरवाजा बंद होने के बाद मन में दूसरी विचारधारा नहीं आनी चाहिए। यदि ऐसी हमारी साधना सधती है, तो वह भले ही पाँच, दस, पंद्रह मिनट की ही क्यों न हो, जीवनभर शांति देने वाली बनेगी। समाधि देने वाली बनेगी।

जैसे किसी शराबी को शराब पीने पर नशा होता है, किसी को भाँग पीने पर उसकी लहरें आती हैं, वैसे ही धर्म की खुमारी, धर्म की प्रभावना हमारे जीवन में आनी चाहिए। नित्य धर्म की आराधना करेंगे तो क्रोध और मान शांत होंगे। माया हटेगी। लोभ हटेगा। यदि निरंतर धर्माराधना करेंगे, आत्मा और परमात्मा के बीच दूसरा कोई नहीं रहेगा तो निश्चित ही माया-लोभ आदि हटेंगे। ऐसी आराधना पाँच-दस मिनट की भी होगी तो वह फल देने वाली होगी।

'धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

'धर्म सदा सुख त्राण' का अर्थ क्या है?

इस प्रकार से की गई धर्माराधना से हमारे सुख की सदा रक्षा होगी।

भारत के प्रधानमंत्री हैं नरेंद्र मोदी। अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष हैं जो बाइडेन। यदि वे कहीं भी भाषण दे रहे हैं, कहीं भी प्रोग्राम में जा रहे हैं तो उनको चिंता रहती है क्या कि कहीं से कोई गोली-बारूद न आ जाए? उनको कोई चिंता रहती है क्या?

(श्रोतागण बोले- उनको चिंता नहीं रहती)

वे निश्चिंत होकर भाषण देते हैं। कहीं भी चले जाएं वे भयभीत नहीं

होते। भयभीत क्यों नहीं होते? क्योंकि उनके लिए बहुत से सुरक्षा गार्ड हैं। कई कमाण्डो हैं। जेड प्लस सुरक्षा है। लाखों लोग उनकी सभा में रहते हैं पर सुरक्षा व्यवस्था के कारण वे निर्भय होकर भाषण देते हैं, वैसे ही धर्म जब हमारी रक्षा करने वाला बन जाएगा तो हमें कोई तनाव नहीं होगा, कोई टेंशन नहीं होगा।

अभी आप अर्हन्नक श्रावक की बात सुन गए; उसे कोई तनाव नहीं हुआ। उसके मन में ऐसा विचार ही नहीं आया कि मेरा जहाज गिर जाएगा, सारा माल गिर जाएगा तो मेरा क्या होगा!

देव उसकी धर्म परीक्षा ले रहा था पर वह अपनी धर्म श्रद्धा में मजबूत था कि कोई अधर्म मेरे जहाज को नहीं तिरा सकता। देव ने एक, दो, तीन बार कहा, पर वह धर्म से डिगा नहीं तो देवता उसके सम्मुख प्रस्तुत होता है। देवता प्रस्तुत होकर हाथ जोड़ता है। उसे नमस्कार करता है और कहता है, हे भव्य आत्मन्! देवलोक में तुम्हारी श्रद्धा की चर्चा चली कि अर्हन्नक श्रावक ऐसा जीव है जिसको धर्म-श्रद्धा से कोई डोलायमान नहीं कर सकता। मुझे विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि मैं सामान्य मनुष्य की स्थिति को जानता हूँ। धन के पीछे सामान्य मनुष्य की दुम डोलने लगती है। धन के पीछे उसे सत्य-असत्य का कोई ध्यान नहीं रहता। वह सत्य-असत्य, नीति-अनीति, सारी बातें भूल जाता है। एतदर्थ मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था कि कोई मनुष्य अपने तन, मन, धन को बाजी पर लगा देगा और धर्म पर डटा रह जाएगा, इसलिए मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए उपस्थित हुआ। मैंने जैसा सुना उससे भी ज्यादा तुम्हें सुदृढ़ पाया। उससे भी ज्यादा मजबूत पाया। ऐसा करने में मुझसे जो अपराध हो गया, उसके लिए मुझे क्षमा करना।

देव, जहाज को समुद्र के तल पर रखकर उससे क्षमायाचना करता है और उसे कानों के कुण्डल भेंट करके वापस चला जाता है।

बात समझे आप? समझ गए ना?

(श्रोतागण बोले- समझ गए)

'धर्म सदा सुख त्राण'

इसमें कोई दो राय नहीं है कि धर्म ही हमारी व हमारे सुख की सदा रक्षा करने वाला बनेगा किंतु हमारे भीतर धर्म के वे संस्कार होने चाहिए।

संस्कारों की जीती जागती प्रतिमा सुनन्दा की कथा से बात और स्पष्ट

हो सकती है। उस सुनें।

''परमेष्ठी पद नित नमूं, गुरु सुमिरन उपकार।
सम्बल ले रचना करुँ, लो सुन्दर संस्कार।।

परमेष्ठि कौन है? परमेष्ठि किसे कहेंगे? परमेष्ठि शब्द का अर्थ क्या है?

परमेष्ठि का अर्थ होता है परम-इष्ट। इष्ट का अर्थ होता है मेरी पसंद। मेरी चाह। जो मेरी सबसे उत्तम पसंद है। किसी को गाड़ी पसंद है, किसी को आभूषण पसंद है। किसी को कुछ, तो किसी को कुछ पसंद है। किसी को नवकार मंत्र पसंद हो सकता है तो किसी को कुछ और। सबसे ऊँची पसंद को कह सकते हैं परम इष्ट। पाँच पद इष्ट हैं- नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं। ये पाँच पद इष्ट हैं। परम-इष्ट है। इसमें दुनिया के समग्र उत्तम पुरुषों का समावेश है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि इन पदों में सारी उत्तम अवस्थाओं का समावेश है।

हमारे यहाँ व्यक्तिवाद नहीं है, जातिवाद नहीं है। हमारे यहाँ गुणानुवाद है। जिसने अर्हता-सिद्धिगमन की योग्यता प्राप्त की वे अरिहंत। जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली वे सिद्ध। जो छत्तीस गुणों से युक्त हैं वे आचार्य हैं। जो 25 गुण से युक्त हैं वे उपाध्याय हैं और जो 27 गुण से युक्त हैं वे साधु हैं। ऐसे गुण जिनमें प्रकट हो गए उनको परमेष्ठि कहते हैं। वे मेरे परम इष्ट हैं, मित्र हैं, सहायक हैं। वे ही मेरे उपास्य हैं।

सिंह क्या खाता है?

(श्रोतागण बोले- सिंह मांस खाता है)

सिंह खाएगा तो मांस ही, वह घास नहीं खाएगा। वैसे ही हम धर्माराधना करेंगे तो पंच परमेष्ठि की ही करेंगे, दूसरों की नहीं करेंगे। हमारा ऐसा लक्ष्य बनता है तभी सार्थकता बनती है। नहीं तो 'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।'

जब टी.वी. पर रामायण धारावाहिक आ रहा था, उस समय हादसे भी हुए। एक जगह 'जय श्रीराम' बोलकर एक बच्चे ने मकान के ऊपर से छलाँग लगा दी। उस बच्चे ने सोचा कि जैसे हनुमान जी का कुछ नहीं बिगड़ा, वैसे मुझे भी कुछ नहीं होगा।

'गुरु सुमरण उपकार'

इसका क्या अर्थ हुआ?

इसका अर्थ हुआ कि गुरु भगवंतों के उपकार का स्मरण करना। गुरु के शरीर का स्मरण करने का कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व है उनके उपकार का स्मरण करने का। उनका उपकार हमारे जीवन पर रहा है। गुरु ने पत्थर को प्रतिमा का रूप दे दिया। जड़ को जीवन दे दिया। गुरु के कारण हम संसार-सागर से तिर रहे हैं।

पंच परमेष्ठी नित नमूं, गुरु सुमिरन उपकार।
सम्बल पा रचना करुँ, लो सुन्दर संस्कार।।

पंच परमेष्ठि को नमस्कार कर, गुरु के उपकार का सुमिरन करते हुए उन्हीं से प्राप्त सम्बल से, संस्कारों से युक्त सुनन्दा की कथा कह रहा हूँ। इस कथा को सुन हम सुन्दर संस्कारों में स्वयं को सुसज्जित करें।

संस्कारों की बात आगे किस प्रकार होती है यह तो समय पर ही पता चलेगा। समय के साथ ही जानकारी प्राप्त करेंगे, क्योंकि ज्यादा समय लगाना ठीक नहीं है। ज्यादा समय नहीं लेना चाहिए। लोगों को गरमी सता रही है किन्तु धर्माराधन की बात पर कुछ कहना चाहूँगा।

मेरे पास पाँच-दस मिनट है तो भी धर्माराधना करूँ और 50 मिनट का समय है तो भी धर्माराधना करूँ। जैसे हम रोज भोजन करते हैं ठीक उसी प्रकार रोज धर्माराधना होनी चाहिए। कौन आ रहा है, कौन जा रहा है उससे कोई मतलब नहीं हो। केवल परमात्मा से संबंध जोड़ना है। परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ गया तो फिर कल्याण ही कल्याण है। कल्याण होने के लिए हम सबका लक्ष्य केवल धर्माराधना का रहना चाहिए।

'धर्माराधन नित करूँ'

धर्म हमारे सुख का त्राण करने वाला बनेगा। हमारी रक्षा करने वाला बनेगा। हम धर्म को छोड़ें नहीं। हमारा लक्ष्य अपने आपको धर्माराधना में जोड़े रखने का बने। हमारा लक्ष्य धर्माराधना से स्वयं को भावित करने का बने। ऐसा होने पर हम अपने आपको सुंदर-संस्कारों से भावित कर पाएंगे।

आज गगन मुनि जी म.सा. की 18 की तपस्या है। वे अपने सारे कार्य, गोचरी-पानी का भी लाभ लेते हुए आगे बढ़ रहे हैं। इतना ही कहते हुए विराम।

04 जुलाई, 2023

3

ज्ञान प्राप्ति का राज

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

धर्म की बात कही जा रही है। जिस बात को हम बहुत बार सुन लेते हैं, उससे अनिच्छा होने लगती है। सोचने लगते हैं कि रोज-रोज धर्म, धर्म, धर्म... रोज-रोज क्या धर्म की बात करना, इससे होना क्या है। हम धर्म रोज कर रहे हैं पर ध्यान रखना, धर्म से भी बढ़कर धर्म के प्रति श्रद्धा जरूरी है। आदमी धर्म करे और उस पर विश्वास ही न हो, धर्म पर श्रद्धा नहीं हो तो उसे कोई लाभ नहीं मिलेगा।

गौतम वीर चरण में आए,
वंदन कर यों अर्ज सुनाए।

भगवान महावीर के युग की बात है। गणधर इंद्रभूति गौतम ज्ञान, तत्त्व, चिंतन, स्वाध्याय, साधना में लीन रहते थे। अनुप्रेक्षा के क्षणों में जब उनके मन में प्रश्न पैदा होता तो वे भगवान महावीर के चरणों में पहुँचते और उनसे अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करते। अनुप्रेक्षा का अर्थ होता है चिंतन। अनुप्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ देखें तो अनु का मतलब होता है पीछे, प्र यानी प्रकर्ष और इक्षा का अर्थ है देखना। यानी किसी चीज के पीछे गहराई से देखना।

हमारे सामने यह खम्भा है। स्तम्भ है। इसे हम सामान्य रूप से देख रहे हैं, किंतु उसके पीछे, उसके भीतर क्या है, उसमें क्या भरा हुआ है, उस पर विचार करने को, उस पर गहराई से उतरने को अनुप्रेक्षा कहा गया है। स्वाध्याय के पाँच भेद बताए गए हैं- वाचना, प्रच्छना, परियट्टणा, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा।

अनुप्रेक्षा से बहुत लाभ होता है। जितना लाभ अनुप्रेक्षा से होता है उससे अधिक लाभ किभी भी स्वाध्याय से नहीं होता। आयु को छोड़कर सात कर्मों के बंध यदि गाढ़ बँधे होते हैं तो उनको शिथिल करने का काम अनुप्रेक्षा करता है। अनुप्रेक्षा का मतलब है कि आदमी उसमें डूब जाए। उसी में रम जाए।

गौतम स्वामी वैसे ही अनुप्रेक्षा करते हुए भगवान महावीर के समक्ष उपस्थित होते हैं। उनको विश्वास था, यह श्रद्धा थी कि भगवान से मुझे यथोचित समाधान प्राप्त होगा। व्यक्ति की जिसके प्रति श्रद्धा होती है उसके वचन उसके लिए अमृत रूप होते हैं। उन वचनों पर वह पूरा-पूरा विश्वास करता है।

'तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहिं पवेइयं'

वही सत्य है, वह निश्शंक जो जिनेश्वर देवों ने कहा है, जो भगवान ने कह दिया उसमें कोई किंतु और परंतु नहीं। ऐसा विश्वास, ऐसा भरोसा गौतम स्वामी का था। एक बार गौतम स्वामी आए और भगवान के चरणों में वंदन-नमस्कार कर भगवान से निवेदन किया।

''धम्म सुसद्धा फल फरमावें,
प्रभुवर श्रद्धा फल दर्शावे''

निवेदन किया कि भगवन्! जिसको धर्म की श्रद्धा होती है उसको क्या फल प्राप्त होता है? उसे क्या परिणाम मिलता है? क्या रिजल्ट प्राप्त होता है? इस पर हम थोड़ी चर्चा करेंगे। गौतम स्वामी को भगवान के द्वारा तीन पद दिए गए- उप्पेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा। इन तीन पदों से उन्हें पूरी द्वादशांगी का ज्ञान प्रकट हो गया।

कभी हम विचार कर सकते हैं कि तीन पद से इतना ज्ञान कैसे प्रकट हो गया? हम रटते रहते हैं। एक प्रतिक्रमण भी हमें याद नहीं होता। कोई 'इच्छाकारेणं' का पाठ याद करता है तो उसको 'लोगस्स' का पाठ याद नहीं होता। किसी को 'लोगस्स' का पाठ याद होता है तो वह 'नमोत्थु णं' में अटक जाता है। 'प्रतिक्रमण' के कई पाठ याद कर लेने पर 'संलेखना' में आकर अटक जाता है। जब संलेखना के पाठ में अटक जाएंगे तो जीवन में संलेखना आएगी कैसे! याद नहीं होने का कारण यह भी है कि हम पहले ही सोच लेते हैं कि यह तो बहुत कठिन पाठ है। हमने जिसको कठिन मान लिया उसको जब भी खोलकर बैठेंगे तो कठिन ही लगेगा।

ताला कितना बड़ा होता है?

ताला छोटा भी होता है और बड़ा भी। जैसा गेट होता है वैसा ताला लगता है। यह निश्चित है कि ताले से चाबी छोटी होती है। ताला बड़ा होता है और चाबी छोटी होती है, किंतु छोटी चाबी बड़े ताले को खोल देती है। गौतम स्वामी को दिए गए तीनों पद चाबी के समान थे। 11 अंग जो वर्तमान में मौजूद हैं और बारहवें अंग में चौदव पूर्वों का ज्ञान था वह सारा ज्ञान गौतम स्वामी तीन पदों की चाबी से खोलने वाले बन गए। ऐसी प्रखर प्रज्ञा थी उनकी।

ज्ञान दो प्रकार का बताया गया है- क्षायिक और क्षायोपशमिक।

क्षायिक ज्ञान का अर्थ क्या है?

ज्ञानावरणीय कर्मों के सम्पूर्ण क्षय होने पर जो ज्ञान प्रकट होता है वह क्षायिक ज्ञान होता है। क्षायोपशमिक ज्ञान उसको कहते हैं जिसमें कुछ कर्म क्षय हुए और कुछ उपसम हो गए। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान हैं।

एक बार हम किसी कृषि फार्म में रुके हुए थे। रात को नींद खुल गई। खुल ही जाती है कभी। वहाँ पर जिस रूम में रुके हुए थे उसमें अलग-अलग स्थानों पर चार इंडिकेटर लगे हुए थे। मैं उठकर बाहर गया। एक साइड में 200 वाट का बल्ब लगा हुआ था। उसका प्रकाश सारे फार्म में फैल रहा था। मेरे मन में स्फुरणा हुई कि इंडिकेटर के समान चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान और मन:पर्यवज्ञान) है। बाहर के बल्ब के समान केवलज्ञान है जो सम्पूर्ण चराचर को प्रकट करने वाला है।

केवलज्ञान से कोई भी तथ्य छिपा हुआ नहीं रहता किंतु चार ज्ञान कितने भी विशाल हो जाएं, उनसे सम्पूर्ण तत्त्वों का ज्ञान नहीं हो सकता। क्षायोपशमिक ज्ञान में कभी-कभी संशय पैदा हो सकता है। क्षायिक ज्ञान में कोई संशय नहीं होता, उसमें सारा क्लीयर है।

गौतम स्वामी भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित होकर सीधे यह नहीं कहते कि मेरा एक प्रश्न है, मुझे उत्तर चाहिए। गौतम स्वामी जाकर वंदना-नमस्कार करते हैं। वंदना-नमस्कार ज्ञान प्राप्ति की विधि है। यदि विनय नहीं होगा तो ज्ञान चढ़ेगा नहीं, ज्ञान बढ़ेगा नहीं। ज्ञान प्राप्ति के लिए विनय बहुत जरूरी है। व्यक्ति अपने आप में समझ ले कि मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया

तो आगे से उसका ज्ञान रुक जाएगा। आगे विकास होना संभव नहीं है। शाब्दिक ज्ञान कितना ही हो जाय पर उसका विशेष बोध उसे नहीं हो पाएगा, क्योंकि उसका अहंकार ढक्कन के रूप में बाधक बनकर खड़ा हो जाएगा जिससे वह ज्ञान उसमें प्रवेश नहीं कर पाएगा।

इस पांडाल में आने के लिए बीच में प्रवेश द्वार बना हुआ है। वह नहीं होता और सारे पांडाल में कनात लगा दी गई होती तो अंदर प्रवेश नहीं हो पाता। कनात के समान ही हमारा अहंकार दीवार बनकर खड़ा हो जाता है तो हमारे ज्ञान को विकसित नहीं होने देता। हम कूपमंडूक की तरह रह जाते हैं। कूपमंडूक का मतलब होता हैं कुएं का मेढक।

एक कुएं का मेढक यह सोचता था कि जितना बड़ा कुआँ है उतना ही बड़ा संसार है। एक बार उसे दूसरा मेढक मिला तो कुएं के मेढक से कहा कि भाई! यह मत समझ कि इतना ही संसार है, इससे बाहर बहुत बड़ा संसार है। कुएं का मेढक कहता है कि क्यों गफा लड़ा रहे हो? कुएं के मेढक को दूसरे मेढक की बात पर विश्वास नहीं हुआ। कुएं का मेढक एक बार बाहर आया तो उसे लगा कि इतना बड़ा संसार है, जिसे मैंने कभी नहीं देखा। जैसे कुएं का मेढक मान रहा था वैसे ही बहुत से लोग मानते हैं कि बस हमने सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया। कभी-कभी लोग परिचय देते हैं, म.सा.! इसको सब आता है। जब सब आता है तो बाकी कुछ रहा ही नहीं। बाकी क्या रहा?

(एक व्यक्ति ने कहा- साधु बनना बाकी रहा)

सब आ गया तो साधु क्यों बनना। फिर तो साधु बनने की जरूरत ही नहीं है। हमें सोचना चाहिए कि अभी हमारा ज्ञान कुछ भी नहीं है। गणधर गौतम की ज्ञान प्रज्ञा के सामने हमारा ज्ञान तुच्छ है। एक सरसों जितना भी नहीं है।

उपाध्याय यशोविजय जी की बात मैं कई बार बोलता हूँ। उपाध्याय यशोविजय जी बड़े ज्ञानी थे। वे बड़े तार्किक थे। जाने-माने विद्वान थे। उनके सामने तर्क में कोई टिक नहीं पाता था। तत्त्वनिर्णय में उनके सदृश किसी की क्षमता नहीं थी।

वे जब भी व्याख्यान करते तो स्थापनाचार्य की व्यवस्था करके चारों दिशा में चार झण्डियां लगाते थे। उसके बाद व्याख्यान फरमाते थे। एक बार एक वृद्ध महिला के मन में जिज्ञासा पैदा हुई और उसने उपाध्याय यशोविजय

जी से प्रश्न किया कि गुरुदेव आप जितने विद्वान हैं, क्या गौतम स्वामी भी इतने ही विद्वान थे? उपाध्याय यशोविजय जी बोले, माँ जी! आप क्या बोल रही हो उनके सामने मेरा ज्ञान तिल- सर्षप के बराबर भी नहीं है। सरसों जितना भी नहीं है। उन्होंने कहा कि उनके ज्ञान के सामने मेरा ज्ञान सागर की एक बूँद के समान भी नहीं है। वृद्धा ने दूसरा प्रश्न किया, गुरुदेव! आप चार झण्डियाँ लगाते हो, गौतम स्वामी व्याख्यान देते समय कितनी झण्डियाँ लगाते थे?

उपाध्याय यशोविजय जी को ज्ञान का गर्व हो गया था। वे चार झण्डियाँ लगाते थे कि चारों दिशा में मुझसे मुकाबला करने वाला कोई नहीं है। चारों दिशा में झण्डी लगाने का उनका आशय था कि मैंने चारों दिशाओं को जीत लिया है।

दुनिया को जीत लेना आसान है, किंतु अपने मन की वृत्तियों को जीतना बहुत कठिन है।

'मनोविजेता, जगतो विजेता'

इसलिए कहा जाता है कि जो अपने मन को जीत लेता है वह जगत को जीतने वाला होता है। जो मन को नहीं जीत पाया वह चाहे कितना भी विजेता हो जाए, उसे आत्मशांति नहीं मिलेगी। उसे आत्मसमाधि नहीं मिल पाएगी। शांति और समाधि अपनी चित्त-वृत्तियों को जीतने पर ही मिल पाएगी।

वृद्धा के सवाल के बाद उपाध्याय यशोविजय जी ने झण्डियाँ लगाना बंद कर दिया। वे ज्ञानी थे इसलिए उन्होंने स्वीकार किया कि मुझे गर्व हो गया था। मुझे अभिमान हो गया था कि मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हूँ, किंतु महापुरुषों के ज्ञान के सामने मेरा ज्ञान कोई मायने नहीं रखता।

गौतम स्वामी ज्ञानी थे पर उन के मन में भी कभी शंका पैदा होती तो वे भगवान महावीर के पास जाते। जाने के बाद वंदना-नमस्कार करते। वंदना से अपने मन को नमाने वाले बन जाते हैं। वंदना से अहंकार नमता है। अहंकार नमे बिना वंदना नहीं होती। हमारे मन में दूसरों के प्रति आदर का भाव, सम्मान का भाव, अहोभाव नहीं होगा तो वंदना नहीं हो सकेगी।

'तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं...

मेरे खयाल से यहाँ पर शुद्ध पाठ पढ़ने वाले बहुत कम लोग मिलेंगे। हमें विश्वास होगा कि हम शुद्ध बोलते हैं, किंतु व्याकरण की दृष्टि से जब

विचार करेंगे तो ठोकर खा जाएंगे।

'तिक्खुत्तो आयाहिणं'

हम क्या बोलते हैं? आयाहिणं।

मंत्री जी! कागज पर लिखो आयाहिणं।

(मंत्री जी ने कागज पर आयाहिणं लिखा)

क्या लिखा आपने? इ की मात्रा छोटी है या बड़ी?

(मंत्री जी बोले- छोटी है)

मात्रा छोटी लगाई और बोलते क्या हैं?

उच्चारण बड़ी ई की मात्रा का करते हैं। एक-दो की बात नहीं है। अमूमन लोग ऐसा ही करते हैं। कई बार सुधार भी हो गए, किंतु आदत पड़ी हुई है। इसलिए पुन: उच्चारण वैसा ही हो जाता है। 'पयाहिणं' के तीन प्रकार के उच्चारण होते हैं। पायाहिणं, पयाहिणं और पय्याहिणं। पयाहिणं में मात्रा छोटी आएगी या बड़ी?

(श्रोतागण बोले- छोटी आएगी)

लिखते छोटी इ की मात्रा हैं, किंतु उच्चारण बड़ी ई का करते हैं। लिखने और बोलने में फर्क पड़ जाता है। हम बोलते पयाहीणं है पर कई लोग बोलते हैं 'पय्याहीणं' और लिखते पयाहिणं हैं।

'कल्लाणं'

कल्लाणं को हम क्या बोलते हैं?

हम बोलते हैं कल्याणं। बहुत से लोग कल्याणं बोलते हैं।

'मंगलं'

मंगलं बोलते हैं या मांगलं?

सही उच्चारण मंगलं है, किंतु मांगलं बोलते हैं।

'देवयं' तीन अक्षर का है, बोलते तीन ही अक्षर हैं पर देवयं के स्थान पर देइयं बोलते हैं।

'चेइयं' भी तीन अक्षर का है, किंतु चेवियं बोलते हैं। 'इ' के स्थान पर वि बोलते है- चेवियं।

पज्जुवासामि को क्या बोलते हैं? पज्जुवास्वामि।

इसी तरह मत्थएण वंदामि को बोलते हैं मत्थेण वंदामि। इसमें 'ए'

कहाँ से आ गया? किस सूत्र से 'ए' की मात्रा का आगम हो गया? अपने मन के सूत्र से आ गया लगता है। हमने जिसको चाहा उसको जोड़ दिया। हम विधवा को सधवा (सुहागन) बना देते हैं और सधवा को विधवा बना देते हैं। एक 'बिंदी' हट जाने से सुहागन से विधवा बन जाती है और एक 'बिंदी' लगा लेने से विधवा से सुहागन बन जाती है। एक छोटी सी गलती हमारे लिए रुकावट पैदा करने वाली बन सकती है, इसलिए पाठ का उच्चारण बहुत शुद्ध करना चाहिए। उच्चारण के साथ ध्वनि का बहुत बड़ा गहरा संबंध है। ध्वनि सही नहीं होती है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। 'आयाहिणं' के हि को दीर्घ बोलेंगे तो उसका मतलब होगा आत्मा से हीन।

'आयाहिणं, पयाहिणं' का क्या अर्थ होता है?

दक्षिण दिशा से प्रारंभ करके प्रदक्षिणा करना। किसकी दक्षिण दिशा से प्रारंभ करना?

जिसकी वंदना की जाएगी उसकी दक्षिण दिशा से चालू करके सामने आना। जैसे मंदिर में फेरी लगाते हैं, वैसे ही करना। पहले कभी परिक्रमा के समान वंदना विधि रही होगी, पर वैसी विधि वर्तमान में नहीं है। दक्षिण से प्रारंभ करना, फिर सामने आना। यह एक आवर्तन हुआ। दूसरी बार आना, तीसरी बार आना दूसरा एवं तीसरा आवर्तन होता है तत्पश्चात् सामने बैठकर आगे का पाठ पूरा करना।

सूर्य कैसे घूमता है?

सूर्य पूर्व दिशा से दक्षिण दिशा में होता हुआ पश्चिम में जाता है। उत्तर से पश्चिम में नहीं घूमता। बहनों ने घट्टी पीसनी बंद कर दी होगी। पहले घट्टी कैसे पिसी जाती थी? दाहिनी ओर से घुमाना होता था। आपने शादी की तब अग्नि की परिक्रमा देते हुए फेरे कैसे खाए थे? उसी प्रकार वंदना में आवर्तन देना चाहिए।

एक कुँवर सा शादी करने के लिए बारात लेकर गए। आधी रात में फेरा होना था। उस समय पंडित जैसा मुहूर्त निकालते वैसा होता था। कभी सूर्यास्त के समय का मुहूर्त निकलता, तो कभी नौ बजे का। कभी-कभी आधी रात का मुहूर्त निकलता। कुँवर साहब को नींद आ गई। जब फेरे का समय आया तो उसके पिता ने उसे जगाते हुए कहा, बेटा फेरे का टाइम हो गया, फेरा खा ले। बेटे ने कहा, आप ही खा लो। उसने नींद में सुना कि पेड़ा खा ले।

नींद में सारी बात समझ में आना बहुत मुश्किल काम है।

वह बेटा अपने पिताजी से कहता है 'थे ही खा लो।' जिस समय आदमी ने फेरा खाया (लगाया) उसको मालूम नहीं चला होगा कि वह किधर से खा (लगा) रहा है। उसे फेरों से कोई मतलब नहीं था। उसे तो पत्नी को घर लाना था। पत्नी घर आ जानी चाहिए। जिस समय आदमी फेरा खा (लगा) रहा होता है उसको फेरे से क्या लेना-देना। उसे उस समय यह मस्ती रहती है कि पत्नी घर आ जाए।

वैसे ही लोग सोचते हैं कि कैसे ही वंदना करें हमें तो सिद्धि प्राप्त करनी है, किंतु सिद्धि प्राप्त करने के लिए सावधान रहना होगा। बिना सावधानी के सिद्धि नहीं मिलने वाली। वंदना का मतलब होता है अपने आपको विनय भाव से परिपूर्ण करना। बड़ों के प्रति आदर भाव रखना। बड़ों का सम्मान करना। बड़ों के प्रति अहोभाव होना। अहंकार भाव होगा तो वंदना सही नहीं होगी।

बहुत से लोग इसलिए वंदना कर लेते हैं कि करनी है। रीति-रिवाज है इसलिए वंदना कर लेते हैं। मन से वंदना नहीं करते। यदि केवल इसलिए वंदना कर रहे हैं कि करनी है तो उसका क्या परिणाम निकलेगा? एक व्यक्ति बिना मन के काम करता है और एक व्यक्ति मन से काम करता है तो दोनों में फर्क होगा या नहीं होगा? हमारी वंदना यदि बिना मन की होगी तो उसमें वह ताकत नहीं आएगी कि हम आगे बढ़ पाएं।

(हाथ जोड़कर दिखाते हुए) वंदना के लिए हाथ ऐसे जोड़े जाते हैं। पीछे का भाग मोटा और आगे का भाग पतला। पतली चीजें ऊपर जल्दी जाती हैं। हमारे हाथ ऐसे रहने का मतलब है कि हमारा मनोभाव ऊपर जाए। और ऊपर से गुरु महाराज के उठे हुए हाथ से आपको आशीर्वाद मिल रहा है। संत-भगवान आपकी वंदना झेल रहे हैं। आपको दया पालो बोल रहे हैं। आपकी वंदना के भावों की रेंज ऊपर तक जाएगी और गुरु महाराज के उठे हुए हाथ से रिवर्स होकर वापस आएगी। हाथ से टकराकर रिवर्स होगी तो उसका लाभ किसको मिलेगा?

(श्रोतागण बोले- हमको लाभ मिलेगा)

इसे एक घटना से समझ सकते हैं। एक सम्राट के मन में विचार पैदा

हुआ कि मुझे एक भव्य भवन बनाना है। बहुत अच्छा महल बनाना है। उसने दीवान के सामने बात रखी, तो दीवान ने कहा कि हो जाएगा, यह कौन सी बड़ी बात है। बजट बनाया गया और राजकोष से रुपयों की व्यवस्था हो गई। दीवान ने सोचा कि अच्छा मौका है, बहुत बड़ा प्रकल्प (प्रोजेक्ट) है, इस प्रकल्प में मुझे लाभ उठा लेना चाहिए।

दीवान ने भवन बनवाना शुरू किया। दीवान ने असली चीजों की जगह नकली चीजें लगानी शुरू कर दीं। असली सीमेंट की जगह नकली लगवाई। मजबूत सरियों की जगह कमजोर सरिये लगवाए। उसने प्रत्येक आइटम, हर सामान नकली लगवाया। मकान बन गया। मकान ऊपर से तो बहुत सुंदर दिख रहा है, किंतु भीतर से मजबूत नहीं था।

उस महल की सुंदरता बाहर की है क्योंकि दीवान ने तो सारी चीजें नकली लगा रखी थीं। सीमेंट और सरिये मजबूत होंगे तो मकान मजबूत होगा, किंतु उस मकान में तो ये सब नकली लगे थे। दीवान जी ने पचास प्रतिशत राशि ही भवन में लगाई। पचास प्रतिशत इनकम खिस्से में खसक गई। महल पूरा होने के बाद दीवान ने सम्राट से कहा, महल तैयार हो गया है, आप पधारो, उद्घाटन हो जाए।

सम्राट ने भव्य भवन का उद्घाटन कर उसमें प्रवेश किया। प्रवेश करने के बाद सम्राट ने कहा, मैं बहुत दिनों से विचार कर रहा था कि एक भव्य भवन बनवाया जाए और दीवान जी ने वह कार्य कुशलता से सम्पन्न कर दिया, मैंने यह भवन दीवान जी के लिए ही बनवाया है अत: उनको भेंट कर रहा हूँ।

यह सुनते ही दीवान जी के तोते उड़ गए। वे सोचने लगे कि मैं तो धोखा खा गया। मुझे पहले मालूम होता तो बढ़िया सीमेंट लगवाता, मजबूत सरिये लगवाता। मैंने तो सारी चीजें नकली लगा रखी हैं। किसी भी दिन भूकंप आ गया, तूफान आ गया और मैं अंदर रह गया तो क्या होगा। मंत्री जी मन में दुखी होते हैं किंतु अब दुखी होने से क्या होगा।

अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत

जब चिड़िया खेत चुग गई तो पछताने से क्या होगा।

जैसे वे दीवान जी पश्चाताप कर रहे हैं, वैसे ही हमें भी तो नहीं पछताना पड़ेगा? उन्होंने जैसा किया वैसा पाया। वैसे ही हम जैसी वंदना करेंगे

वैसा ही फल पाएंगे। वैसा ही परिणाम मिलेगा। हमारी वंदना का परिणाम किसको मिलेगा?

(श्रोतागण बोले- हमें ही मिलेगा)

हमारी वंदना का लाभ हमें ही मिलेगा, दूसरों को नहीं।

नमने वाला कुछ नहीं जानता हो, किंतु नमता जाए तो विनय को प्राप्त करने वाला हो जाता है। आज जिनका मतिज्ञान भी सिंपल है, श्रुतज्ञान भी मंद है, अवधिज्ञान व मन:पर्यवज्ञान की तो चर्चा ही क्या की जाए, वह विनय की आराधना करके सीधा केवलज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

किसके कारण से केवलज्ञान प्रकट हो जाता है?

विनय की आराधना से केवलज्ञान हो जाता है। विनय भाव रखकर धर्माराधना करेंगे तो प्रतिक्रमण याद होगा। विनय भाव रहेगा तो प्रतिक्रमण याद करना कठिन काम नहीं है। विनय भाव प्रबल होगा तो प्रतिक्रमण भी याद होगा व उससे आगे भी ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। सबसे पहले हमें अपनी रुचि जगानी होगी कि मुझे प्रतिक्रमण याद करना है, किंतु हम करते किस भाव से हैं? म.सा. ने याद करने के लिए कहा है। कहने की लाज-शर्म से याद करते हैं। म.सा. ने पाठ बोल दिया और हमने सुन लिया। हम औपचारिकतावश पाठ बोलने की क्लास में बैठ गए, पाठ सुन लिया, किंतु उसके आगे पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो कंठस्थ कैसे होगा।

जिनको याद करने में तकलीफ होती है, पाठ याद नहीं होता, उनको 'नमो नाणस्स' 21 बार बोलना है। 21 बार 'नमो नाणस्स' बोलकर, हाथ जोड़ना, मन को हाथ के अग्र भाग पर केंद्रित करना। हाथ जोड़ा हुआ है, अंगुलियाँ-अंगूठे मिले हुए हैं और फिर तीन बार आवर्तन देते हुए गुरु का स्मरण करो। गुरु की तसवीर (स्वरूप) अपनी आँखों में लेकर तीन बार उठ-बैठकर वंदना-नमस्कार करना। भावपूर्वक तीन बार वंदना-नमस्कार करना, पाठ याद करने में तन्मय हो जाओ। पाठ याद होने की पूरी संभावना है।

दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं है। हमने कभी सोचा नहीं होगा कि प्लेन आकाश में उड़ जाएगी, किंतु वैज्ञानिकों ने प्रयत्न किया तो प्लेन आकाश में उड़ने लगी। अभी तो सुनने में आ रहा है कि आदमी को मंगल ग्रह पर भेजेंगे। पहले प्लेन से ऊपर जाते थे, अब मंगल की तरफ आदमी को ऊपर भेजा

जाएगा। अब भारत भी अपने यात्री को मंगल ग्रह पर भेजने की सोच रहा है।

सबकुछ हो सकता है। बस पुरुषार्थ होना जरूरी है। पुरुषार्थ करना पड़ेगा। सामायिक-प्रतिक्रमण याद करने के लिए पुरुषार्थ करेंगे तो क्यों नहीं होगा।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान...

मंद गति से चलने वाला भी दिल्ली पहुँच सकता है जबकि तेज गति से चलने वाला भी अटक सकता है। आपने कहानी सुनी होगी कि मंद गति से चलने वाला कछुआ कहाँ चला गया और तेज गति से चलने वाला खरगोश कहाँ रह गया। मेहनत करेंगे तो प्रतिक्रमण-सामायिक याद होंगे। यदि प्रतिक्रमण की किताब हाथ में लेते ही दिमाग में यह बात आए कि मुझसे याद नहीं होगा, तो याद होगा कैसे? जब पहले से ही सोच लेंगे कि मुझे याद नहीं होगा, तो याद होगा कैसे? इसलिए पहले से मत सोचो कि मुझ से तो याद नहीं होगा। सोचो कि याद होगा। होगा क्यों नहीं। सबकुछ होता है। मनुष्य याद करता है और मैं भी मनुष्य हूँ। मैं भी याद करूंगा। ऐसा सोचकर प्रबल प्रयत्न करेंगे तो सफलता मिलेगी। याद करिए गौतम स्वामी और भगवान के प्रसंग को।

गौतम वीर चरण में आए,
वंदन कर यों अर्ज सुनाए।

गौतम स्वामी, भगवान से पूछते हैं भगवन्! धर्म श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया। अब भगवान इस प्रश्न का क्या जवाब देते हैं, यह समय के साथ ही मालूम पड़ेगा।

कल एक बात चालू की थी संस्कार की, उस पर थोड़ा विचार करते हैं।

परमेष्ठी पद नित नमूँ, गुरु सुमिरन उपकार।
सम्बल पा रचना करुँ, लो सुन्दर संस्कार।।
संस्कारी जन शोभता, शुभतर होते काज।
दृढ़प्रतिज्ञ हो वह चले, उपकृत सकल समाज।।

बहुत गहरी बात बताई। सभा में बहुत से लोग बैठे होते हैं। बहुत से लोगों के बीच जो संस्कारी पुरुष होगा वह शोभायमान होगा।

एक राजा के दो राजकुमार थे। एक संस्कारी था और एक मंदबुद्धि। जिसमें संस्कार होगा उसके आने का तरीका, उठने-बैठने का तरीका,

अभिवादन करने का तरीका अलग ही होगा। उसके और मंदबुद्धि के उठने-बैठने के तरीके में फर्क होगा। संस्कारी पुरुष को ज्यादा समझाने की आवश्यकता नहीं होती। जिसके जीवन में संस्कार रोम-रोम में रमा रहेगा, वह धम्म से सोफे पर नहीं बैठेगा।

थोड़ी देर के लिए मान लें कि आप राष्ट्रप्रमुख बन गए। राष्ट्रप्रमुख का क्या मतलब होता है?

जैसे अमेरिका में अध्यक्ष प्रमुख है, भारत में प्रधानमंत्री प्रमुख है। ऐसे दस-ग्यारह देशों के राष्ट्रप्रमुख जब एक साथ मिलने वाले हों तब जब तक सारे राष्ट्रप्रमुख नहीं आ जाते तब तक कोई भी सीट पर नहीं बैठता। सभी का एक समय निश्चित होता है। कुछ सेकेंड का फर्क हो जाए तो बात अलग है। वे सभी का इंतजार करते हैं। यह सभ्यता, यह संस्कार नहीं होगा तो क्या होगा? जिसमें यह संस्कार नहीं होगा वह सीधा जाकर कुर्सी पर बैठ जाएगा।

इसी प्रकार संस्कारी पुरुष जहाँ जाएगा वहाँ पहले से जो बुजुर्ग विराजमान होंगे उनको प्रणाम करेगा, उनकी तरफ झुकेगा, उसके बाद उचित जगह पर बैठेगा। एक होता है बड़ों के बराबर बैठना और एक होता है बड़ों के सामने बैठना। दोनों में फर्क है। बड़ों के बराबर बैठने का मतलब है कि मैं उनसे कम नहीं, मैं भी उनके बराबर हूँ और अभिमुख बैठने का अर्थ होता है कि मैं इनसे कुछ लेना चाहता हूँ। यह संस्कारों की बात है। संस्कार यदि सही दिए जाते हैं तो संस्कारित व्यक्ति अपने आपमें शोभायमान होता है।

सुनंदा एक संस्कारित कन्या थी। उसका व्यवहार कैसा था, यह तो हम समय के साथ विचार करेंगे। अभी इतना ध्यान में लें कि हमारी आराधना का मूल बिंदु विनय होना चाहिए। श्रद्धा को विनय से परिपक्व बनाना चाहिए। दूसरी बात, हमारे भीतर सही संस्कार होंगे तो हम सुख का अनुभव करने में समर्थ होंगे। हमारा लक्ष्य विनय का रहे। अपने आपको सुसंस्कारित बनाएं। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

05 जुलाई, 2023

4

श्रद्धा होती सुफलदायी

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
गौतम वीर चरण में आए, वंदन कर यूं अर्ज सुनावे।
धम्म सुसद्धा फल फरमावें, प्रभुवर श्रद्धा फल दर्शावे।।

गौतम स्वामी विनम्र भाव से पृच्छा करते हैं कि भगवन् धर्म श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

जब लाभ की बात होती है तो उस ओर जीव की प्रवृत्ति होती है। भगवान के चरणों में गौतम स्वामी ने वंदना-नमस्कार किया और प्रश्न प्रस्तुत किया कि भगवन्! धर्म श्रद्धा का फल फरमाने की कृपा करें।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में आचार्य, मुनि और गीतार्थ के लिए बताया गया है कि उनसे यदि कोई शिष्य पृच्छा करे तो जैसा अपने पूर्वाचार्यों से सुना है वैसा कथन शिष्य के सम्मुख करें। उसको धारणा करवाएं कि यह तत्त्व है, तत्त्व की यह बात है।

भगवान भी धर्म श्रद्धा का फल बताने के लिए तत्पर हुए। भगवान ने कहा कि गौतम! ''**सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ**'' अर्थात् साता और सुख में अब तक जो निमग्न था, उससे विरक्त हो जाता है। यहाँ पर शास्त्रकारों ने साता और सुख को, इंद्रिय विषय की प्राप्ति को भी सुख माना है, क्योंकि व्यवहार में इनको सुख कहा गया है। यथा 'पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख है घर में माया' इस प्रकार इनको सुख की संज्ञा दी गई है, किंतु आत्मिक सुख उससे भिन्न है। यह पदार्थजन्य सुख है। पदार्थजन्य सुख एक समय तक टिकता है, उसके बाद हट जाता है।

सूर्य का प्रकाश हमें प्राप्त होता है, किंतु यदि बादल आ जाए तो

प्रकाश नहीं मिलता। रात्रि हो जाने पर सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता। वैसे ही जब तक पुण्य का प्रबल उदय है, तब तक सुविधाएं मिल पाएंगी। सुख और साता प्राप्त होगा। पुण्य के क्षीण होने पर सुख और साता प्राप्त नहीं हो पाएंगे।

साता और सुख में निमग्न व्यक्ति में जब धर्म श्रद्धा जगती है, तब वह उस अवस्था से विरक्त हो जाता है।

इलायची कुमार की जीवन कथा से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। इलायची कुमार धनी-मानी परिवार से था। उसके घर में धन-वैभव की कमी नहीं थी। एक बार नट-नटी का नृत्य देखकर इलायची कुमार नटी (नृत्य करने वाली लड़की) पर अनुरक्त हो गया। उसने विचार कर लिया कि मुझे शादी करनी है तो उसी से करनी है, किसी और से नहीं। उसने विचार तो कर लिया, किंतु अपने मन की बात किसी से बोल नहीं पा रहा था। वह द्वंद्व में उलझ गया। दुविधा में पड़ गया। उसका खाना-पीना छूट गया। वह दिनभर गुमशुम रहने लगा। एकांत में रहने लगा।

उसकी दशा देखकर आखिर में घरवालों ने उससे पूछा कि बात क्या है, तब उसने बताया कि ऐसी बात है। उसकी बात सुनकर उसके पिता को झटका लगा। गुस्सा भी आया पर उसने धैर्य से काम लेने का सोचा। तदनुसार उसने उसे समझाने की कोशिश की। कहा, बेटा! अपना खानदान देख। एक नट कन्या से शादी करना क्या उचित होगा? हम खानदानी कन्या से तुम्हारी शादी करना चाहते हैं। इलायची कुमार ने कहा, पिता जी! मैं सब जानता हूँ, किंतु मुझे उसके बिना चैन नहीं पड़ रहा है। उसके बिना मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा है। न खाना अच्छा लगता है न पीना। मैं उसके बिना जिंदा नहीं रह सकता।

पिता ने उसे बहुत समझाया, किंतु वह समझ नहीं पाया। अंततोगत्वा उसके पिता ने नट से बात की तो उसने कहा कि मैं अपनी बेटी की शादी बिरादरीवाले से करूंगा, दूसरे से नहीं। उसने यह भी कहा कि यदि इलायची कुमार को शादी करनी है तो पहले वह नृत्य कला को सीखें और सीखकर किसी राजा को प्रभावित करें, उससे बहुत सारा द्रव्य इनाम लेवें। उसके बाद मैं उनसे अपनी बेटी की शादी कर सकता हूँ।

इलायची कुमार ने नट कला सीखी। उसने राजा को प्रभावित करने का प्रयत्न भी किया। राजा को प्रभावित करने के लिए उसने जमीन में एक बाँस

गाड़कर उसके शीर्ष पर एक कील लगाई। उस कील पर एक सुपारी रखकर उस पर नाभि टिकाकर नृत्य किया।

ऐसा करना आसान है या कठिन?

(श्रोतागण बोले- कठिन है)

दुनिया में कुछ भी कठिन नहीं है। हमें कठिन लग रहा है, पर इलायची कुमार ने वैसा नृत्य किया या नहीं? इलायची कुमार ने ऐसा नृत्य सीखा व किया भी।

कहानी में ऐसा बताया जाता है कि एक प्रहर तक उसने नृत्य किया, किंतु राजा ने कहा कि मैं तो देख ही नहीं पाया। राज का मन भी नट की कन्या पर लग गया। नट कन्या बड़ी सुंदर रही होगी। राजा चाहता था कि किसी तरह इलायची कुमार खत्म हो जाए, बाँस से गिरकर मर जाए तो नटी मेरे हाथ आ जाएगी।

एक प्रहर हुआ तो राजा ने कहा कि मैं नहीं देख पाया। दूसरा प्रहर हुआ, तीसरा प्रहर हुआ। आखिर सूर्योदय हो गया। तब इलायची कुमार ने ऊपर से ही किसी मुनि को गोचरी लेते हुए देखा और उसका बोध जागृत हो गया कि मैं क्या कर रहा हूँ! इलायची कुमार नीचे उतरा और वहाँ से यह कहते हुए चला गया कि अब मुझे संसार में नहीं रहना है। मैंने संसार के राग-रंग को देख लिया है। संसार के मोह-ममत्व को देख लिया। इलायची कुमार को बोध प्राप्त हो गया। जिस कन्या के पीछे पड़े हुए थे उसे छोड़ने में देर नहीं लगी।

''सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ''

धर्मश्रद्धा प्रबल होते ही सुख-साता में निमग्न व्यक्ति उन्हें छोड़ने में देर नहीं लगाता। वे विचार करते हैं कि साता-सुख, मोह-माया मैंने अनंत बार प्राप्त की है। दो-चार बार नहीं, अनंत बार प्राप्त की है।

साधु हो या श्रावक, सबके लिए एक बात बताई गई है कि रात्रि के अंतिम प्रहर में जब नींद खुले तो उसे विचार करना चाहिए कि अब तक मैंने क्या किया?

नेमीचंद जी! क्या किया अब तक? पारणा कर लिया क्या?

(नेमीचंद जी बोले- पारणा कर लिया)

हमने अब तक क्या किया?

यह किसी एक व्यक्ति से पूछने की बात नहीं है। सबको विचार करना चाहिए कि मैंने अब तक क्या किया? हो सकता है कि आपने बहुत कुछ किया हो। आपने बिजनेस किया हो। लाखों-करोड़ों रुपये दान दिए होंगे। कॉलेज, हॉस्पिटल बनाए होंगे। इस प्रकार दूसरों के लिए बहुत किया होगा, किंतु अपने लिए क्या किया? परिवार वालों के लिए किया, दुनिया के लिए किया, समाज के लिए किया, राष्ट्र के लिए किया। सबके लिए जो बना, वह किया, किंतु अपने लिए क्या किया?

'नहीं प्रभु से प्यार फिर क्या पाएगा,
रोना है बेकार छूट सब जाएगा'

क्या किया बताओ? अपने लिए क्या किया बताओ?

जवाब क्या मिलेगा कि हमने अपने लिए क्या किया? परिवार वालों के लिए सुख-सुविधा जुटाई। शरीर के पोषण के लिए कार्य हुए। मोह के पोषण के लिए कार्य हुए। जो कार्य हुए वे मोह के पोषण के लिए किया या उसे घटाने के लिए?

(श्रोतागण बोले- मोह के पोषण के लिए)

कभी इसकी समीक्षा की हमने कि मोह को घटाने के लिए मैंने कितना काम किया और मोह को बढ़ाने के लिए मेरे द्वारा कितना काम हुआ! साधु हो या श्रावक, सबको यह समीक्षा करनी चाहिए कि मैंने मोह को घटाने के लिए क्या उपाय किए? सोचें कि मोह को घटाने के लिए कितने कदम आगे बढ़ाएं?

ऋषभदेव भगवान ने यह विचार किया। उनके मन में आया कि इतनी सारी रिद्धि-सिद्धि प्राप्त की। इतना बड़ा परिवार मिला क्या काम आया? क्या काम आएगा?

ऋषभदेव भगवान का परिवार कितना बड़ा था?

मैंने सुना है कि 65 हजार पीढ़ियां मरुदेवी माता ने देखीं।

मुझे पक्का मालूम नहीं है, किंतु हमारी सतियां जी बोल रही हैं कि 65 हजार पीढ़ियां देखीं। आज तो चौथी पीढ़ी देख लेंगे तो सोने की निसरणी चढ़ जाएंगे। मरुदेवी ने कौन-सी निसरणी चढ़ी? 65 हजार पीढ़ी किसको बोलते हैं। ऋषभदेव भगवान ने थोड़ी कम पीढ़ियां देखी होंगी। एक-दो पीढ़ी

कम देखी होगी। ऋषभदेव भगवान ने इतनी पीढ़ियां देखीं। उन्होंने समझ लिया कि कोई भी साथ देने वाला नहीं है। भले ही परिवार बड़ा है, किंतु मरते समय साथ कौन देगा? कौन साथ चलेगा? ऋषभदेव भगवान ने विचार किया कि कोई भी साथ देने वाला नहीं है। ऐसा विचार करने पर कभी-कभी हमारा भी जागरण होना संभव है। सुनने से भी जागरण हो सकता है, किंतु विचार करने पर जागृति आती है कि मैंने पिछले अनंतानंत जन्म गँवा दिए, इस जन्म में भी इतने वर्षों में मैंने क्या किया?

सोचने के लिए विषय बहुत है यथा- मुझे पाँच इंद्रियां प्राप्त हुईं, सोचने के लिए मन मिला। वैभव प्राप्त हुआ, खाने-पीने की सारी सुविधाएं प्राप्त हुईं। मैंने व्यापार किया, दान दिया। पर धर्माराधना कब की? कार्य मैंने पिछले जन्मों में भी बहुत बार किए। अब भी यदि धर्माराधना नहीं की तो फिर यह जीवन किस काम आएगा। दूसरे कार्य तो दुनिया भी कर लेती है। मिथ्यादृष्टि जीव भी कर लेता है। ऐसे में मिथ्यादृष्टि और मुझमें क्या फर्क रहा? मैंने क्या विशेष किया? यदि मेरे भीतर धर्म के प्रति श्रद्धा पैदा हुई, मैंने धर्म को जाना तो केवल जानकर ही रह जाना चाहिए या उसको स्वीकार करना चाहिए?

(श्रोतागण बोले- उसको स्वीकार करना चाहिए)

खाली जानकर रहने से वह आनंद देने वाला नहीं होगा। उसे स्वीकार करने से वह आनंद देने वाला बनेगा। ऐसा विचार पैदा होने पर जीव भौतिक सुख-साता से विरक्त हो सकता है।

वैसे यह सुख कब तक रहेगा?

जब तक पुण्य रूपी सूर्य की रोशनी मिलेगी, तब तक रहेगा। जब तक पापकर्म का उदय नहीं होता है, तब तक सुख बना रहेगा। उसके बाद क्या है?

पुण्य हीन जब होत है, उदय होत है पाप।
जैसे वन की लाकड़ी, धधकत आपो आप।।

जब पुण्य क्षीण होगा और पापकर्म का उदय होगा तो क्या घटित हो जाएगा पता नहीं पड़ेगा।

सनत्कुमार चक्रवर्ती छह खण्ड के सम्राट थे। उन्हें कोई कमी नहीं थी। कोई अभाव नहीं था। एक चीज माँगने पर चार चीजें सामने आती थीं। एक कर्मचारी को आवाज देने पर चार सामने आ खड़े होते थे। जो चीज सम्राट

चाहते, उनके बोलने से पहले हाजिर हो जाती थी।

उनके शरीर में जब सोलह महारोग पैदा हुए तो दीवान ने, मंत्रियों ने कहा, राजन! इलाज करवा लीजिए, चिकित्सा करवा लीजिए। उन्होंने कहा, मैंने शरीर को बहुत नहलाया-सहलाया, खिलाया-पिलाया, बहुत उपाय किये। कोई कमी नहीं रखी।

हम क्या कमी रखते हैं? हमारे पास जितनी सुविधा है, उसके अनुसार हम शरीर का ध्यान करते हैं या नहीं? हम शरीर के पोषण में कोई कमी नहीं रख रहे हैं फिर भी शरीर किधर जा रहा है।

हमारा शरीर जवान हो रहा है या बूढ़ा?

(श्रोतागण बोले- बूढ़ा हो रहा है)

जवानी जा रही है। हम बुढ़ापे की ओर बढ़ रहे हैं।

हम चौथे आरे की ओर जा रहे हैं या छठे?

(श्रोतागण बोले- छठे आरे की तरफ जा रहे हैं)

हम कभी छठे आरे में थे या नहीं? हमारी आत्मा छठे आरे में थी या नहीं?

हमने मनुष्य जन्म बहुत बार पाया होगा। तीर्थंकरों का सान्निध्य भी मिला होगा, किंतु वह किस काम आया?

भगवान महावीर जिस समय धरा पर विचरण कर रहे थे, उस समय भगवान के दर्शन करने बहुत-से लोग आते थे। बहुत बड़ा समवसरण लगता था। कितने ही लोग व्याख्यान सुनते थे? मगध सम्राट श्रेणिक चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर दर्शन करने के लिए गए। श्रेणिक ही नहीं, और भी सम्राट उसी प्रकार दर्शन के लिए गए। कितने लोग साथ में होंगे? हजारों-लाखों लोग साथ में होंगे, किंतु धर्म तत्त्व को अमल में लाने वाले कितने लोग निकले? मगध सम्राट श्रेणिक श्रद्धालु होते हुए भी एक नवकारसी का त्याग नहीं कर पाया।

श्रीकृष्ण वासुदेव, अरिष्टनेमि भगवान के अनन्य भक्त थे। उनके मन में ऐसा विचार पैदा हुआ कि जिसको भी दीक्षा लेनी है वह अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा ले सकता है। उसकी दीक्षा में कोई रुकावट आ रही हो तो मैं उसे दूर करूंगा। दीक्षा लेने वाले के माता-पिता, पुत्र-पुत्री को जो भी सुविधा चाहिए वह मैं उपलब्ध करवाऊंगा।

कृष्ण वासुदेव ने बहुतों को दीक्षा दिलवाई, किंतु स्वयं नहीं ले पाए। हम भी कृष्ण वासुदेव की तरह हैं क्या? हमारे पैर भी कृष्ण वासुदेव की तरह बँधे हुए हैं क्या? हम भी मगध सम्राट श्रेणिक की तरह बंधन में बँधे हुए हैं क्या? वे तो बंधन में बँधे हुए थे, इसलिए दीक्षा नहीं ले सके।

आप सोचोगे कि जब कृष्ण वासुदेव, मगध सम्राट श्रेणिक भी दीक्षा नहीं ले सके तो हम क्या ले पाएंगे। कृष्ण वासुदेव स्वयं दीक्षा नहीं ले सके, किंतु दूसरों को दिलवाई। हम भी किसी के दीक्षा लेने पर हर्ष-हर्ष, जय-जय कर लेते हैं। दीक्षा लेने वाले की अनुमोदना में हर्ष-हर्ष करते हैं। कोई दीक्षा लेता है तो हम भी बोलते हैं अरे भाई साहब! बहुत बढ़िया काम कर रहे हो।

वह बहुत बढ़िया काम कर रहा है तो आप घटिया काम क्यों कर रहे हो? आप भी बढ़िया काम क्यों नहीं करते?

शायद हमारे कर्म गाढ़े बँधे हुए होंगे, भयंकर गाढ़े बँधे हुए होंगे, जिसके कारण हमारा मन साधु बनने के लिए तैयार नहीं होता। जिसके कारण हम त्याग, व्रत, नियम लेने को तैयार नहीं होते। जिसके कारण श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करने के भाव पैदा नहीं होते। हम विचार करेंगे तो रास्ता खुलेगा। विचार नहीं करेंगे तो रास्ता कैसे खुलेगा! हमारे भीतर जिज्ञासा पैदा नहीं होगी तो तत्त्व ग्रहण कैसे होगा! इसलिए रात्रि के अंतिम प्रहर में धर्म जागरणा करते हुए यह विचार करना चाहिए कि मैंने अब तक क्या किया और क्या करना शेष है?

कई लोग सोचते हैं कि मैंने दुनिया में बहुत काम किए हैं। मैं उनसे कहना चाहूंगा कि उन्होंने एक काम नहीं किया है। कौन-सा काम नहीं किया? साधु जीवन स्वीकार नहीं किया। साधु जीवन स्वीकार करना शेष रह गया। अब क्या करना चाहिए? साधु जीवन स्वीकार करना चाहिए।

और साधु क्या विचार करते हैं? साधु के विचार बताए गए-

तीन मनोरथ धारो रे साधु,
तीन मनोरथ धारो रे...
पहला मनोरथ सूत्र ज्ञान है
सुख-सागर दातारो रे,
जिस दिन सीख समझ हिये धारूँ
वो दिन धन्य हमारो रे।। तीन...

साधु का पहला मनोरथ कौन-सा है?

साधु का पहला मनोरथ श्रुतज्ञान है। उसे श्रुतज्ञान को प्राप्त करना है। एक दशवैकालिक सूत्र पढ़ लेने से, उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ लेने से श्रुतज्ञान पूरा हो गया क्या? सारा श्रुतज्ञान हो गया क्या?

इतना ज्ञान कुछ भी नहीं है। सारा श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान की तुलना में बिंदु के समान है।

श्रुतज्ञान कितना है? हाथी खड़ा है, उस पर अंबाबाड़ी लगी हुई है वो जितने में डूब जाए उतनी स्याही पानी में घोली जाए उससे जितना लिखा जाए, वह एक पूर्व का ज्ञान होगा। अभी ग्यारह अंगों का ज्ञान हम समझकर, रटकर, पढ़कर प्राप्त कर लेते हैं, किंतु चौदह पूर्वों के ज्ञान को पढ़ने का समय भी है क्या? पढ़ने के लिए उतनी उम्र भी है क्या? अभी तो हमारे पास जितने साहित्य हैं उतने शायद हमने नहीं पढ़े होंगे।

साहित्य संबंधित एक बात याद आ रही है। मेरे खयाल से शायद सन् 1996 की बात होगी। मेरा निम्बाहेड़ा चातुर्मास था। उस समय डॉ. सागरमल जी जैन ने बताया कि जैन धर्म की दो हजार तरह की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कितनी, दो हजार प्रकार की पुस्तकें।

हमने कितनी पुस्तकें पढ़ीं? सौ, दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ, सात सौ! एक पुस्तक पढ़ने में भी थकान आ जाती है, तो दो हजार पुस्तकें पढ़ें ही कैसे। एक शास्त्र पढ़ते हैं तो सोचते हैं कि बहुत पढ़ लिया।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. की नानेशवाणी शृंखला की पुस्तकें कितनी हैं?

(श्रोतागण बोले- 52 पुस्तकें निकलीं)

जवाहर किरणावली कितनी है?

(एक व्यक्ति ने कहा कि 52 तो किसी अन्य ने कहा कि 32)

हमने कितनी पढ़ीं?

खैर, 1996 तक लगभग दो हजार तरह की पुस्तकें छपी थीं, उसके बाद पुस्तकों का प्रकाशन बढ़ा या घटा?

(श्रोतागण बोले- उसके बाद बढ़ा)

यहाँ पर ऐसे कितने लोग हैं, जिन्होंने एक हजार पुस्तकें पढ़ी होंगी?

हाथ उठाओ।

(सभा में उपस्थित किसी भी व्यक्ति ने हाथ नहीं उठाया)

एक भी व्यक्ति नहीं है। अच्छा पाँच सौ पुस्तक पढ़ने वाले कितने हैं? सौ पुस्तक पढ़ने वाले कितने हैं?

(एक व्यक्ति ने हाथ ऊपर किया)

सिर्फ एक हाथ ही खड़ा हुआ है।

सौ किताबें तो बहुतों ने पढ़ ली होंगी, किंतु पढ़कर सार क्या निकाला?

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

ढाई अक्षर के प्रेम को जान लेने पर पंडिताई आ जाएगी। हम पढ़ तो लेते हैं लेकिन जो पढ़ा जाना चाहिए, वह नहीं पढ़ पाते। पढ़ना जरूरी है। बिना पढ़े ज्ञान नहीं बढ़ेगा। पर ज्ञान स्टॉक में नहीं रहना चाहिए। गोडाउन में माल का स्टॉक रहता है, किंतु ज्ञान स्टॉक में नहीं रहना चाहिए। तिजोरी में रखा हुआ रुपया धन बढ़ाएगा या ब्याज में लगाने पर या व्यापार में लगाने पर धन बढ़ाएगा।

(श्रोतागण बोले- ब्याज में या व्यापार में लगाएंगे तो धन बढ़ेगा)

अरबों-खरबों रुपये तिजोरी में रखे होने से लाभ नहीं होगा, ब्याज पर या व्यापार में पैसे लगाएंगे तो लाभ होगा। वैसे ही जो ज्ञान हमने प्राप्त कर लिया वह आता-जाता रहना चाहिए अर्थात् जो ज्ञान व्यवहार में चलेगा, वह फायदा देने वाला होगा। जो ज्ञान व्यवहार में नहीं चलेगा, वह फायदा देने वाला नहीं होगा। वह केवल स्टॉक बनकर रह जाएगा। उसके लिए सोचेंगे कि अभी मंदी है, तेजी आएगी तब लगाएंगे और कभी तेजी आई ही नहीं तो पड़ा ही रह जाएगा।

भारत सरकार का बहुत सारा अन्न गोदामों में सड़कर नष्ट हो जाता है। वह न लेखे लगता है और न उपयोग में आता है। वैसे ही पड़ा-पड़ा ज्ञान भी अनुपयोगी हो जाता है। वह भूलने में आ जाता है। जिसने बचपन में 25 बोल का थोकड़ा याद किया उससे पूछें कि अब याद है क्या? वह कहेगा कि पहले तो याद था, किंतु अब याद नहीं है। पुराने लोग कहते थे ''ज्ञान कंठे नाणा अंटे'' यानी जो ज्ञान तुम्हारे कंठ में है, जो ज्ञान कंठस्थ है, वही तुम्हारा है,

बाकी तो बाकी ही है।

कोई कहता है कि मैंने 15 शास्त्र पढ़े, तो कोई कहता है 32 शास्त्र पढ़े। पढ़े होंगे आपने, किंतु अभी याद कितने हैं? जो पूँजी इकट्ठी की उसे रखने में समर्थ नहीं हुए, फिर याद करना किस काम आया? पढ़ा हुआ, याद किया हुआ भूल जाता है, किंतु जीवन व्यवहार में उतरा ज्ञान कभी नहीं भुलाता।

इंदौर के 'तीर्थंकर' पत्रिका के संपादक डॉ. नेमीचंद जी जैन ने नाना गुरु पर एक पुस्तक लिखी। उस पुस्तक का क्या नाम है?

(श्रोतागण- उस किताब का नाम है आगम पुरुष)

आचार्य नानालाल जी 'आगम पुरुष' कैसे हो गए?

उन्होंने किताबें केवल पढ़ी नहीं थीं, आगम केवल रटे नहीं थे, बल्कि उनके जीवन में आगम रम गए थे। उनके रोम-रोम में आगम रम गए। जब आगम रोम-रोम में रम जाए तो उसको याद करने की आवश्यकता नहीं रहती। जो जीवन में उतर जाता है, जीवन में ढल जाता है वही ज्ञान सच्चा है, बाकी तो तिजोरी का धन है।

डॉ. नेमीचंद जैन ने नाना गुरु के साथ 24 घंटे बिताए थे। लगातार चौबीस घंटे नहीं। कई बार में। कभी आधा घंटा, पौन घंटा, कभी एक घंटा, कभी दो घंटे। इस तरह 24 घंटे साथ में बिताए। नेमीचंद जी ने कहा कि मैंने उस साधु को जिधर से भी टटोला मुझे आगम की ही आवाज सुनाई दी। उन्होंने कहा कि मैंने उनसे कैसे भी प्रश्न किए, उनकी समता नहीं टूटी। उनकी समाधि कभी भंग नहीं हुई।

32 आगमों का सार क्या है?

बत्तीसी का सार यही है, जैनागम दरम्यान।
यतना और विवेक का, रखो प्रतिपल ध्यान।।

दो बातें यदि हमारे जीवन में आ गईं तो 32 आगमों का निष्कर्ष हमारे हाथ में आ जाएगा।

वे दो बातें कौन-सी हैं?

(श्रोतागण- वे बातें हैं यतना और विवेक)

यतना और विवेक हमारे जीवन में आनी चाहिए। यतना का मतलब होता है आत्मा की रक्षा। छह काय जीवों की रक्षा। मैं यदि आत्मरक्षा करने में

समर्थ हूँ तो छह काय की रक्षा अपने आप हो जाएगी। मैं यदि छहकाय जीवों की घात कर रहा हूँ तो इसका मतलब है कि मैं अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हूँ। अपनी रक्षा करने वाला जीव छहकाय जीवों की रक्षा करने वाला होगा।

विवेक का क्या मतलब है?

विवेक का मतलब है त्याग। अपने मन में पड़ी ग्रंथियों का त्याग करना। किसी भी बात की पकड़ नहीं रहे। पकड़ रखने पर तनाव आता है। पकड़ नहीं रहेगी तो तनाव नहीं रहेगा। पकड़ नहीं रहेगी तो सरलता आ जाएगी। पकड़ में सरलता नहीं रहेगी। पकड़ हटते ही सरलता आ जाती है। जो ऋजुभूत होता है उसकी शुद्धि होती है और जहाँ शुद्धि होती है, वहीं धर्म टिकता है। जीवन में सरलता आ जाए तो समझें कि मेरा बेड़ा पार है। सरलता की जगह कुटिलता, कठोरता, जड़ता आ गई तो भीतर पकड़ बैठ जाएगी। हम इन बातों की समीक्षा करें।

आज एक कागज पर लिखने का प्रयत्न करना कि मैंने कितनी बातें पकड़ रखी हैं, चाहे झूठी हो या सच्ची। यदि किसी बात की पकड़ है तो कितनी भी धर्माराधना कर ली जाए, वह काम नहीं आएगी।

इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से और स्पष्ट समझ सकते हैं। किसी के पेट में कीड़ा हो जाए तो क्या होगा? जिसके पेट में कीड़ा होगा वह कितना ही पौष्टिक आहार खा ले, उसका शरीर पुष्ट नहीं हो पाता। क्योंकि भोजन का सारा रस कीड़ा खा जाता है। सारे खाए हुए का रस कीड़े के पेट में जाने से वह कीड़ा मोटा होता जाता है और व्यक्ति सूखता रहता है। वैसे ही जब तक हमारे भीतर पकड़ रहेगी, तब तक हमारा ज्ञान प्रकट होने वाला नहीं है। तब तक कितनी भी धर्माराधना कर लेंगे, मास-मासखमण की तपस्या भी कर लेंगे, पारणे में सूई के अग्र भाग पर आने जितना अन्न लेकर वापस मासखमण की तपस्या में लग जाएंगे तो वह तप धर्म की सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं होगा।

श्यामपुरा (सवाई माधोपुर) की एक बात है। गुरुदेव का विचरण हुआ। गुरुदेव का रूटीन था कि जिस किसी गाँव में ज्यादा दिन रुकते, वहाँ से विहार करते समय फरमाते कि किसी की कोई बातों की बातें हों तो मेरी झोली में बहरा देना। हम साधु हैं बाहर जाएंगे, उन्हें वोसिरा देंगे। वहाँ एक भाई ने किसी का नाम लेकर बताया कि उन भाइयों में मतभेद है। जिनके मतभेद की

बात सामने आई थी, गुरुदेव ने उनसे बातचीत की तो ज्ञात हुआ कि उनमें ऐसी कोई बात नहीं है, पर देवरानी-जेठानी में गड़बड़ है। देवरानी से पूछने पर उसने कहा, गुरुदेव! आप जो कहेंगे मैं मान लूँगी। जेठानी से बात करने पर वह बोली, म.सा.! आप कहोगे तो में बेला कर लूँगी, तेला कर लूँगी, अठाई कर लूँगी, किंतु देवरानी के मोड़े नहीं चढ़ूँगी।

मोड़ा क्या होता है? किसको कहते हैं मोड़ा?

अब तो मोड़े कम नजर आते हैं, क्योंकि फ्लैट सिस्टम ज्यादा हो गया। पहले घरों के आगे भाखल होती थी, घर-आँगन में जाने के लिए मोड़ा होता था। जेठानी ने गुरुदेव से कहा, म.सा.! आप बोलोगे उतनी तपस्या कर लूँगी, किंतु देवरानी के मोड़े नहीं चढ़ूँगी।

गुरुदेव ने कहा, जब तक हमारे भीतर द्वंद्व भाव रहेगा, द्वेष रहेगा, तब तक धर्म नहीं उतरेगा। अंततोगत्वा जेठानी को बात समझ में आई और दोनों में खमत-खामणा हुई। जब तक पकड़ नहीं टूटेगी, तब तक धर्माराधना नहीं हो पाएगी। हमने अभी तक धर्म को नहीं जाना, धर्म की श्रद्धा को नहीं जाना। केवल धर्म-धर्म की रट लगा रहे हैं।

एक बहुत बड़ी सभा थी। नेता की सभा थी। ज्यादातर नेताओं की ही सभाएं होती हैं। हजारों-लाखों की संख्या में लोग उपस्थित थे। नेता भाषण दे रहे थे और लोग तालियां बजा रहे थे। एक आदमी ने ताली बजाई। उसके पास बैठे व्यक्ति ने पूछा, भाई! तुमने ताली क्यों बजाई? वह कहता है, दूसरे लोग बजा रहे थे तो मैंने भी बजा दी। दूसरों ने बजाई तो मैंने भी बजा दी।

हमारा हाल भी यही है। किसी दूसरे ने सामायिक की तो हमने भी कर ली। दूसरा व्याख्यान में आया तो हम भी आ गए। दूसरे ने मुँहपत्ती लगाई तो हमने भी लगा ली। दूसरे ने धर्म किया तो हमने भी कर लिया। दूसरे ने जैसा किया वैसा हमने कर लिया, किंतु पता नहीं है कि धर्म की श्रद्धा क्या होती है। जब तक धर्म की श्रद्धा को नहीं समझेंगे, तब तक पकड़ शिथिल नहीं होगी।

संस्कारी सुनंदा की, तुम्हें बताऊँ बात।
अच्छी हो मन धारणा, बीते काली रात।।
सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
संस्कारों की महिमा होती, संस्कारों से जगती ज्योति।।

फैले कीर्ति अपार, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...
संस्कारी नर शोभित होता, सुख में हर्ष न दुःख में रोता
सम रहे व्यवहार भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

सुंदर संस्कार किसे कहा गया?

सारे लोगों के मौन हैं क्या?

सम्पत जी रांका! (मुंबई) कितने बजे तक मौन है?

(सम्पत जी बोले- मौन नहीं है भगवन्)

मौन नहीं है तो फिर बोल क्यों नहीं रहे हो।

संस्कार किसे कहते हैं?

जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, जनेऊ संस्कार, विवाह संस्कार, राम नाम सत है संस्कार, मरण संस्कार। इस तरह बहुत सारे संस्कार भारतीय संस्कृति में हैं।

'सुंदर हो संस्कार भविकजन...'

ये संस्कार तो लगभग सभी लोगों के लिए रहते हैं। जन्म हुआ तो नामकरण संस्कार कर दिया। बड़े होने पर दूसरे संस्कार हो जाते हैं। कई संस्कार होते हैं, किंतु सुंदर संस्कार का अर्थ क्या है?

जो जीवन के प्रिंसिपल (सिद्धांत) हैं, उन्हें जीएं। भारतीय संस्कृति का ध्येय क्या है?

सत्यं शिवं सुन्दरम्

सत्य यानी शिव अर्थात् कल्याणकारी। सत्यं शिवं कल्याणकारी होता है, इसलिए वह सुंदर है। इसका तात्पर्य क्या हुआ? जो कल्याणकारी नहीं होता है उसमें सुंदरता नहीं मिलती।

सुंदरता किसमें मिलेगी?

चाहे रूप बेडौल भी हो, किंतु सत्य समन्वित है तो वह सुंदर है। जिससे कल्याण संभव है, उसमें सौंदर्य है, उसमें सुंदरता रहेगी।

'सुंदर हो संस्कार' अर्थात् सत्य समन्वित संस्कार होने चाहिए। जीवन में सत्यनिष्ठा रहेगी तो वहाँ दुर्गुण प्रवेश नहीं कर पाएंगे। यदि जीवन में एक झूठ रहा तो हजारों दुर्गुण वहाँ आकर खड़े हो जाएंगे। एक झूठ से कितने झूठ पनपते हैं? एक झूठ से हजारों झूठ पनपते हैं। सत्य को बनने की आवश्यकता नहीं

पड़ती है। झूठ को रोज बनना पड़ता है, क्योंकि बनेगा नहीं तो वह टिक नहीं पाएगा।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार।
संस्कारों की महिमा होती, संस्कारों से जगती ज्योति।।
फैले कीर्ति अपार, भविकजन...

संस्कारों की महिमा अलग ही होती है। हम राम, कृष्ण, महावीर आदि जिनके भी नाम लेते हैं, वे सभी संस्कारी थे। संस्कारी होने के कारण आज हजारों वर्षों के बाद भी उनकी महिमा गा रहे हैं।

नवल जी (मैसुरू) कोठारी जी! आपके दादा जी का क्या नाम था?

(कोठारी जी बोले- भैरूलाल जी)

और उनके दादा जी का क्या नाम था?

(कोठारी जी बोले- पता नहीं)

(सभा में उपस्थित श्रोतागण हँसने लगे)

अरे! इन्होंने दादा जी का नाम तो बताया, नहीं तो आज कई लोग पापा के आगे की पीढ़ी का नाम नहीं बता पाते। हम आज दादा, पड़दादा, लड़दादा, खड़दादा का नाम नहीं जान रहे हैं। उनकी महिमा नहीं जान रहे हैं, उनका क्या इतिहास रहा होगा हम नहीं जान रहे हैं।

कृष्ण को हजारों वर्ष हो गए, राम को असंख्येय वर्ष हो गए, महावीर को 2500 वर्ष हो गए, हम आज भी उनका नाम ले रहे हैं। क्यों ले रहे हैं? सत्यनिष्ठा के संस्कार के कारण से नाम ले रहे हैं। ऐसे संस्कार जहाँ होते हैं वहाँ पर जीवन की ज्योति जागृत हो जाती है। जिसमें ऐसे संस्कार होते हैं, उसका जीवन ज्योतिर्मय हो जाता है। वह जीवन सामान्य न होकर ज्योतिर्मय हो जाता है। उसको अपनी कीर्ति फैलाने की आवश्यकता नहीं होती।

आज विज्ञापन का युग है। झूठा विज्ञापन भी दिया जाता है। लोगों के मन में बात बैठ जाती है कि रोज विज्ञापन आ रहा है, कुछ-न-कुछ विशेषता होगी। कुछ बात है इसलिए रोज विज्ञापन आ रहा है, नहीं तो कौन पैसे खर्च करके विज्ञापन देता। अखबार के एक पूरे पेज पर विज्ञापन देने के लिए हजारों-लाखों रुपए लगते हैं। लोग सोचते हैं कि रोज अखबार में विज्ञापन आते हैं, कुछ-न-कुछ बात होगी।

विज्ञापन में लगे हुए रुपये कंपनी किससे वसूलेगी?

(श्रोतागण बोले– हमसे वसूलेगी)

राम, कृष्ण, महावीर को विज्ञापन की आवश्यकता नहीं पड़ी। अपने आप ही हजारों वर्षों के बाद भी उनके नाम जय–जयकार के साथ लिए जा रहे हैं। हम भी सत्यनिष्ठा के संस्कार से अपने आपको भावित करेंगे तो हमारी कीर्ति फैलती जाएगी। दरअसल वह कीर्ति हमारी नहीं होगी, वह सत्यनिष्ठा की होगी। ऐसे संस्कार हमारे भीतर भी पनपें। हम भी सुंदर संस्कारवान बनें। इसके लिए पहले एक खूँटा गाड़ना पड़ेगा।

कौन–सा खूँटा?

सत्यनिष्ठा का खूँटा यदि हमने खूँटा गाड़ दिया तो फिर चिंता की बात नहीं रहेगी। सुंदर संस्कार अपने आप हमारी ओर आकर्षित होकर आ जाएंगे। यदि हमने सत्यनिष्ठा का खूँटा नहीं गाड़ा, असत्य का खूँटा गाड़ दिया तो यह मत समझना की मेरे भीतर दुर्गुण नहीं आएंगे। हम सुंदर सत्य संस्कार को अपने हृदय में उतारने का प्रयत्न करेंगे तो सुखी बनेंगे। ऐसा हमारा प्रयत्न होगा तो हम धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

06 जुलाई, 2023

5

तुम्हारी प्रसन्नता ही समाधान

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
गौतम वीर चरण में आए, वंदन कर यूं अर्ज सुनावे,
धम्म सुसद्धा फल फरमावें, प्रभुवर श्रद्धा फल दर्शावे।।

धर्म की श्रद्धा से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है? धर्म की श्रद्धा से कौन-सा फल प्राप्त होता है, क्या लाभ मिलता है?

सामान्य रूप से लोग बाहर की क्रियाओं से पहचान करते हैं कि कौन कितना धर्मात्मा है। कोई बेले-बेले की तपस्या कर रहा है, कोई तेले-तेले की तपस्या कर रहा है। कोई मास-मासखमण की तपस्या कर रहा है। हमारी दृष्टि में वह बड़ा तपस्वी है जो दिन में आठ-दस सामायिक किए बिना मुँह में पानी नहीं डालता। वह बड़ा तपस्वी है जो एक टाइम खा रहा है, बाकी समय स्वाध्याय, सामायिक, संवर में लगा रहता है। ऐसी धार्मिक क्रियाएं तो कर रहा है, पर धर्म पर श्रद्धा नहीं है उनको क्या लाभ मिलेगा? उनको क्या फल मिलेगा?

ऐसी धार्मिक क्रिया का लाभ शून्य है, जिसमें श्रद्धा नहीं है। बिना श्रद्धा के धार्मिक क्रिया का फल शून्य है। अक्षर बड़े सुंदर हैं। सुदर अक्षर को पढ़ना बहुत आसान हो जाता है, किंतु पढ़ने के लिए आँख नहीं हो तो सुंदर अक्षर किस काम का! इसी तरह आँख का शेप बहुत सुंदर हो, किंतु उसमें ज्योति नहीं हो तो उसके सौंदर्य से क्या लेना-देना। वैसे ही जिसमें धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं हो उसकी धर्म क्रियाएं कोई महत्त्व नहीं रखती। वह शून्य है। इसलिए भगवान ने धर्म की श्रद्धा की बात कही या गौतम स्वामी ने धर्म श्रद्धा के विषय में पूछा कि जिसमें धर्म के प्रति श्रद्धा है, धर्म पर विश्वास है, धर्म पर भरोसा है उसको क्या फल मिलेगा? उसे क्या लाभ होगा?

भगवान ने पहला फल निर्देशित किया कि

''सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ''

अब तक जो इंद्रियों के विषयों में मग्न था, वे ही उसको प्रिय थे उसमें उसको बड़ा रस था।

जैसे शालिभद्र के जीवन में पुण्य का प्रकर्ष उदय था। वह पुण्य का भोग कर रहा था। खाना-पीना, मौज, आनंद में उसका समय व्यतीत हो रहा था। दुनिया में क्या हो रहा है, कौन राजा है, कौन प्रजा है, कौन दीवान है, कौन मंत्री है, इससे उसको कोई सरोकार नहीं था। रिश्ते-नाते से भी उसे सरोकार नहीं था। उसके चारित्र से ऐसा लगता है कि वह पुण्य का भोग भोग रहा था, किंतु जब धर्म श्रद्धा पैदा हो गई, तब वह इंद्रियों के विषय-भोगों से एकदम विरक्त हो गया। उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। वह सोचता है कि इन सबसे कोई सरोकार नहीं है।

बालक को खिलौना बड़ा प्रिय होता है। वह खिलौनों से खेलता है उनमें खुश रहता है। जब वही बड़ा हो जाए तब वे ही खिलौने कोई उसके हाथ में पकड़ा दे, तो वह खुश होगा क्या?

(श्रोतागण बोले- वह खुश नहीं होगा)

वह कहेगा- मैं अब बच्चा थोड़ी हूँ, मैं बड़ा हो गया हूँ। अब मुझे खिलौने नहीं चाहिए। वह उन खिलौनों से प्रसन्न नहीं होगा, खुश नहीं होगा। जैसे बचपन का खेल खिलौना है, वैसे ही धन-वैभव खिलौने हैं। जब दृष्टि बदल जाएगी, धर्म श्रद्धा पैदा होगी तो धन से प्रेम नहीं रहेगा। धन से प्रीत नहीं रहेगी। जब समझ नहीं थी, जब बच्चे थे तो खिलौने से खूब खेले। समझ आ जाने के बाद खिलौने से नहीं खेलते। उसी तरह समझ आ जाने के बाद साता और सुख में निमग्न व्यक्ति को विरक्ति हो जाती है। विरक्ति का मतलब है- उससे अलग हो जाना, हट जाना। उससे दूर हो जाना। समझ में आ जाने के बाद व्यक्ति सोचता है कि इन खिलौनों से मैं बहुत खेला, जन्मों-जन्मों में खेल खेले हैं।

पिछले कई जन्मों में हम जब भी मनुष्य बने होंगे, तब बहुत खेल खेले होंगे। चाहे चक्रवर्ती सम्राट का जन्म पाया, कितु गरज नहीं सरी। राजा-महाराजा भी बन गए होंगे, किंतु केवल खिलौने खेल कर रह गए। जीवन का

जो परिवर्तन होना चाहिए था, जो सच्चा आनंद मिलना चाहिए था, वह नहीं मिल पाया।

खैर, भगवान ने आगे बताया कि केवल वह साता-सुख से विरक्त ही नहीं होता बल्कि उसे 'गृहवास नहीं सुहाता...' अर्थात् उसको गृहस्थी में आनंद नहीं आता।

पिंजरे में कोई पक्षी सुख नहीं मानता। किसी पक्षी को, तोता को पिंजरे में बंद कर दिया जाए तो वह उसमें खुश रहेगा या बाहर उड़ना चाहेगा?

(श्रोतागण बोले- वह पिंजरे से बाहर उड़ना चाहेगा)

वह बाहर उड़ना चाहता है, किंतु जब धीरे-धीरे उसमें रहने का अभ्यास हो जाता है तो हालत बदल जाती है। वह सोचता है कि यही मेरा आवास है, यही निवास है। ऐसे में उसे पिंजरे से बाहर छोड़ने पर वह घूम-फिरकर वापस उसी में जाएगा।

ऐसी ही कुछ दशा हमारी है। हम भी घूम-फिरकर पिंजरे में घुसने की कोशिश करते हैं। खुले आकाश में उड़ने का हमारा स्वभाव गौण हो चुका है। यह नहीं समझ रहे हैं कि हम आकाश में उड़ सकते हैं। हमें अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं है। हम भूले हुए हैं कि हम मोह-माया से मुक्त होकर खुले आकाश में विचरण करने वाले हैं पर हमारी आदत ऐसी बन गई है कि हम घूम-फिकर मोह के पिंजरे में चले जाते हैं। उससे बाहर निकलने की सोच ही पैदा नहीं होती, किंतु हकीकत में जो मजा खुले आकाश में उड़ने में है वह पिंजरे में नहीं है। वह आनंद पिंजरे में नहीं है। हम जब पिंजरे से बाहर उड़ने लगेंगे तो आनंद आने लगेगा।

हमने अभी तक साधु जीवन को समझा ही नहीं है। समझा है क्या?

कैसे समझ पाएंगे साधु जीवन को? एक होती है थ्योरी और दूसरा होता है प्रैक्टिकल। प्रैक्टिकल के बिना समझना मुश्किल है। थ्योरी से आइडिया बन जाएगा, किंतु हकीकत का ज्ञान नहीं होगा। वैराग्य अवस्था में कितने ही रह जाएं, वह अनुभूति नहीं होगी जो अनुभूति प्रैक्टिकल से होगी।

हम लोगों ने साधु जीवन को बहुत कठिन समझा है। सोचते हैं कि इतना कठिन जीवन जीना हमारे वश की बात नहीं है। सोच सकारात्मक नहीं हो पा रही है, हिम्मत नहीं हो पा रही है अन्यथा सच्चाई यह है कि साधु जीवन

कितना ही कठिन हो, किंतु मनुष्य ही साधु बनता है। पशु कभी साधु नहीं बनता।

पशु साधु बनता है क्या?

(श्रोतागण बोले– पशु साधु नहीं बनता)

पशु कभी साधु नहीं बनता, मनुष्य ही साधु बनता है। विचार करने की बात है कि मनुष्य ही साधु बनता है और मैं भी मनुष्य हूँ तो मैं क्यों नहीं साधु बन सकता!

जब तक धर्म श्रद्धा पुष्ट नहीं होगी, दृष्टि परिवर्तित नहीं होगी, तब तक ऐसी ललक, ऐसी भावना पैदा होना बहुत मुश्किल है। बहुत ही मुश्किल है।

शालिभद्र के बारे में आपने बहुत बार सुना होगा। वह भी पहले नहीं समझ रहा था। उसने भगवान की वाणी सुनी और उसे समझ में आ गया कि नाथ कौन है और अनाथ कौन है। अनाथता क्या है? इंद्रियों के विषयों में मशगूल रहना अनाथता है और उन पर विजय प्राप्त कर लेने की जो शक्ति है वह सनाथता है और वह सनाथता अनाथ के पास नहीं है।

गृहीवास ना उसे सुहाता
महाव्रती बन मन मुस्काता

धर्म श्रद्धा का दूसरा सोपान है कि उस व्यक्ति को गृहवास में मन नहीं लगता। वह विषय–वासना से उद्विग्न हो जाता है।

तीन मनोरथ का चिंतन आप लोग करते हैं। क्या करते हैं? कैसे करते हैं?

खाली एक दोहा बोल लेते हैं।

'आरंभ परिग्रह तज करी पंच महाव्रत धार।
अंत समय आलोयणा करूं संथारो सार।।

एक दोहा बोलकर सोच लेते हैं कि तीन मनोरथ का चिंतन हो गया। तीन मनोरथ के चिंतन का मतलब कल भी बताया था कि साधु या श्रावक को तीन मनोरथ का चिंतन करना चाहिए। साधु के तीन मनोरथ में से एक मनोरथ की बात कल कह दी थी कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं श्रुत में पारंगत होऊँगा।

पहला मनोरथ सूत्रज्ञान है सुख सागर दातारो रे...

पहला मनोरथ सुख का सागर देने वाला है। श्रुतज्ञान सुख का सागर प्रदान करने वाला है। वह इतना सुख देने वाला है कि आदमी बटोर नहीं पाएगा।

हम कहते जरूर हैं कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं श्रुत में पारंगत बनूँगा किंतु पढ़ना एक बात है और उसमें जीना दूसरी बात है।

साधु का दूसरा मनोरथ है–

दूजो मनोरथ एकलविहारी, करूं पडिमा अंगीकारो रे,
किस दिन विचरूं हूं महीमण्डल, वो दिन भाग्य हमारो रे।
तीन मनोरथ धारो रे साधु, तीन मनोरथ धारो रे...

वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं एकल विहार प्रतिमा–प्रतिज्ञा को स्वीकार करूँगा।

यह सुनकर विचार करने की बात है कि वर्तमान में भी कई संत अकेले विहार कर रहे हैं, विचरण कर रहे हैं तो क्या वे सभी धन्य हैं?

एकल विहार करने के लिए आठ गुणों की आवश्यकता होती है। धर्म श्रद्धा में इतना प्रवीण होना चाहिए कि किसी देव–दानव द्वारा दिए उपसर्ग से वह विचलित नहीं हो। कोई कितना भी उसको क्रोधित करना चाहे, क्रोध नहीं आए।

श्रीमद् स्थानांग सूत्र में आठ गुण बताए गए हैं। आठ स्थलों से संपन्न अणगार एकल विहार प्रतिमा को स्वीकार कर विहार करने के योग्य होता है जैसे–

श्रद्धानवत पुरुष, सत्यवादी पुरुष, मेधावी पुरुष, बहुश्रुत पुरुष, शक्तिमान पुरुष, अल्पाधिकरण पुरुष, धृतिमान पुरुष और वीर्य संपन्न पुरुष। श्रीमद् आचारांग सूत्र में भी एकल विहार पडिमा के दो रूप बताए गए हैं। एक प्रशस्त रूप और दूसरा अप्रशस्त रूप। अप्रशत एकल विहार को अच्छा नहीं माना है। अप्रशस्त एकल विहार वह स्वीकार करता है जिसका स्वभाव चण्ड है, रौद्र है। जो अत्यंत क्रोधी, अत्यंत मानी होता है। अल्प शब्दों में कहें तो वह दूसरों के साथ निभाने वाला नहीं होता। अपनी भाषा में बोलें तो वह एकलखोरी होता है। प्रशस्त एकल विहार प्रतिमा स्वीकार करने वाले के सामने कितना भी उपसर्ग आ जाए विचलित नहीं होता, देव, गुरु, धर्म, आगमों पर आस्था अटूट होती है। ऐसी पडिमा जो स्वीकार करता है वह गुरु महाराज से अनुमति लेकर विहार करता है, उसका एकल विहार प्रशस्त माना गया है। ऐसा नहीं कि गुरु महाराज को धक्का देकर चला जाए कि मैं तो अलग विहार करूँगा। ऐसा प्रशस्त एकल विहारी नहीं करता। एकल विहार भी

सौभाग्यशाली पुरुषों को प्राप्त होता है। वह दिन धन्य होगा जिस दिन मेरे भीतर इतनी निर्भयता आ जाएगी। इतनी दृढ़ता आ जाएगी कि किसी के द्वारा चलाए जाने पर मैं चलायमान नहीं होऊँगा। ऐसा प्रशस्त एकल विहार स्वीकार करूँगा।

तीजो मनोरथ अन्न-जल त्यागूं, करूं शुद्ध मन संथारो रे।
पंडित-मरण-शरण किम लेसूं, खलक लगे मोए खारो रे ।। तीन...

तीसरा मनोरथ है- वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन आलोचना-प्रतिक्रमण करके पंडित मरण को स्वीकार करूँगा। संलेखना स्वीकार कर पंडित मरण को स्वीकार करूँगा। पंडित मरण मरना, होश-ओ-हवास में मरना हर किसी के वश की बात नहीं है। हर कोई होश-ओ-हवास में नहीं मरता। पंडित मरण करने वाले को कोई चिंता नहीं होती, कोई भय नहीं होता। वह प्रसन्नता से शरीर को छोड़ता है। मरने का ऐसा अवसर विरले व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। जो ऐसा मरण प्राप्त कर लेता है, वह उसी भव में मोक्ष जाने वाला बन सकता है अथवा तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता। यदि उत्कर्ष आराधना नहीं बनी तो 15 भव से ज्यादा तो संसार है ही नहीं।

ये साधु के मनोरथ हैं।

श्रावक के मनोरथ क्या हैं?

श्रावक का पहला मनोरथ है कि वह दिन धन्य होगा, जिस दिन आरंभ-परिग्रह का त्याग करूँगा।

क्या है आरंभ-परिग्रह? परिग्रह को आप समझ रहे होंगे, किंतु आरंभ को भी समझना है। किसको कहते हैं आरंभ?

जिससे छहकाय जीवों की विराधना होती है उसे आरंभ कहते हैं। एक भी जीव की विराधना होने को आरंभ कहते हैं।

यहाँ एक प्रश्न खड़ा होता है कि श्रावक आरंभ परिग्रह का त्याग कर ही देगा तो वह साधु क्यों नहीं बन जाएगा?

नहीं। जरूरी नहीं है कि आरंभ परिग्रह का त्याग करने वाला साधु बन ही जाए।

आनंद श्रावक ने आरंभ परिग्रह का त्याग कर दिया, किंतु साधु का जीवन स्वीकार नहीं कर पाए। उनके जीवन में सच्चाई थी। वे जानते थे कि यदि मैं साधुता की परिपालना करने में समर्थ नहीं हूँ तो साधु जीवन स्वीकार करके

बेईमानी करना सही नहीं है।

यह ध्यान रखें कि 'साधु इसलिए नहीं बनना चाहिए कि मुझे कुछ करना नहीं पड़ेगा। काम-धंधा नहीं करना पड़ेगा। आराम से गोचरी-पानी मिल जाएगा। आराम से खाना मिल जाएगा। मौज करेंगे।' हमने गुरुदेव से सुना है कि ऐसी साधुता पर आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. फरमाया करते थे-

''गृहस्थी केरा टूकड़ा, लंबा-लंबा दांत।
भजन करे तो उगरे, नहीं तो काढे आंत।।

बाणियां की रोटी पचाना आसान नहीं है। भजन करोगे तो पच जाएगी। यदि भजन नहीं कर पाए और खाने-पीने में रहे गए तो अँतड़ियों को खींच कर निकाल लेगा।

ब्याज पर किसी को उधार पैसा देने वाला पैसा लेने वाले से ब्याज का ब्याज लेता है। जब तक उस आदमी का झोंपड़ी न बिक जाए तब तक उसका पीछा छोड़ता नहीं है। तब तक उसे संतोष नहीं होता। जैसे वहाँ पर आदमी खींचकर पैसे लेता है वैसे ही बाणियां के घर की रोटी आपकी अँतडियां खींच लेगी। पचाने की क्षमता है तो साधना में है। यदि साधना करोगे तो उस रोटी को हजम करने में समर्थ होओगे, नहीं तो समर्थ नहीं हो पाओगे।

इसलिए यह सोचकर साधु नहीं बनें कि अब काम-धंधा नहीं करना पड़ेगा। आराम से गोचरी लाएंगे और खा लेंगे। ऐसी भावना व्यक्ति को कामचोर बनाती है।

आनंद श्रावक साधु नहीं बना, किंतु उसने आरंभ-परिग्रह का त्याग किया। आनंद श्रावक ने देखा कि मेरा लड़का जिम्मेदारी निभाने में समर्थ हो गया है तो उसने पूरे परिवार को इकट्ठा किया। सबको भोजन करवाया और कहा-

हे देवानुप्रियो! अब तक आपके कार्यों में मैं सहयोगी होता रहा हूँ। आप जो भी पूछते मैं समाधान देता था। व्यापार संबंधी, परिवार संबंधी कोई भी समस्या होती तो आप मेरे से पूछते थे और मैं यथोचित समाधान बताता था। किन्तु अब मैं उससे निवृत्त होना चाहता हूँ, इस प्रकार वह परिजनों से कहता है। इस संदर्भ में मैं एक बात और बता देना चाहता हूँ कि वह आनंद सबके लिए आधारभूत था। मेढ़ीभूत, चक्षु रूप था। कभी भी किसी के मन में विचार आता तो वह आनंद श्रावक के पास इस भावना से आता कि उनसे हमें

सही दिशा-निर्देश मिल जाएगा।

श्रावकों का जीवन जब पढ़ते हैं, सुनते हैं, समझते हैं तो लगता है कि उनका जीवन कितना ऊँचा था। कोई गुड़ लिपटी राय नहीं। जो सच्ची बात है, सही बात है, वही सलाह देना।

मुझे सेठ छगन जी मूथा की बात याद आ रही है। वे राजस्थान के बलूंदा गाँव के मूल निवासी थे और बेंगलुरु में रहते थे। जब राजस्थान से कोई व्यापार के लिए बेंगलुरु जाता तो वे उसको धन देते। उसके व्यापार में धन का सहयोग करते। उनकी प्रतिज्ञा थी किसी पर मुकदमा नहीं करने की। लेने वाला वापस लौटा दे तो भला, नहीं लौटाया तो भला। उन्होंने कभी किसी पर मुकदमा नहीं किया। कोई व्यापारी व्यापार शुरू करने के साल-छह महीने बाद सोचता कि मैं अपने परिवार को, पत्नी को भी ले आऊँ तो वे सलाह देते कि अभी लाओगे तो खर्चा बढ़ जाएगा। जितना कमाओगे नहीं उससे ज्यादा खर्च होने लगेगा। इसलिए मेस में भोजन करते रहो। जब तुम्हारे पैर अच्छी तरह से जम जाएं तभी लाना परिवार को। एक दूसरी बात मैंने सुनी कि वे कभी अकेले भोजन नहीं करते थे।

यदि कभी कोई भोजन करने वाला नहीं होता तो बाजार में किसी को फोन लगाते और कहते कि तू क्या कर रहा है? सामने वाला कहता अभी तो मैं काम कर रहा हूँ तो वे कहते तुझसे थोड़ी गपशप करनी है, बात करनी है, घर पर आ जा।

लोग जानते थे कि सेठ जी की डाइनिंग टेबल पर बैठने वाला कोई नहीं है, इसलिए बुलाते हैं। वे आते उनके साथ भोजन करते।

एक पंडित/ब्राह्मण ने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मैं सेठों की नौकरी नहीं करूंगा। पंडित में काबिलियत थी, अच्छा पंडित था। सेठ ने उससे कहा कि तुमको मेरे पास रहना है। पंडित ने कहा- सेठ सा! मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं सेठों की नौकरी नहीं करूंगा। सेठ ने कहा, मैं कब कह रहा हूँ कि नौकरी करना। मेरे घर में सदस्य बनकर तो रह सकते हो। इस तरह उसे अपने साथ रखा।

ऐसी उदारता, ऐसा दिल किसका होता है? श्रावक का दिल उदार होना चाहिए, कंजूस दिल नहीं होना चाहिए। श्रावक के मन में कभी दीनता नहीं आनी चाहिए। श्रावक दीन नहीं अदीन होता है।

खैर, आनंद श्रावक की बात चल रही थी। लौटते हैं उसकी बात पर। उसने देख लिया कि मेरा बड़ा बेटा सक्षम हो गया है तब उसने परिवारवालों को बुलाकर कहा कि मैं अब तक जो कार्य कर रहा था, उससे अब निवृत्त होना चाहता हूँ। अब आपको जो भी राय लेनी हो मेरे बड़े पुत्र से लें। मैं उसे पूरे परिवार का अधिपति घोषित करता हूँ। आपको जो भी परामर्श लेना हो, उससे लेना, मुझसे नहीं।

आनंद श्रावक अपनी सारी बात प्रस्तुत कर ज्ञातकुल की पौषधशाला में आया और भगवान की धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके श्रावक के व्रतों की आराधना करते हुए, श्रावक की ग्यारह प्रतिमा को स्वीकार करते हुए जीवन-यापन करने लगा। आनंद साधु नहीं बन पाया। साधु बहुत ऊँची अवस्था है। आज हमने साधु जीवन को खिलौना समझ लिया है।

पूज्य आचार्य गुरुदेव हर किसी को साधु नहीं बनाते थे। उनके कानों में एक संत की बात पड़ गई थी। वृहद् साधु सम्मेलन के समय की बात है। वे किसी संत को ढूँढने रूम में गए तो एक संत को बोलते हुए सुना कि जैन धर्म तो गाजर की पूंगी है। जब तक बजेगी बजा लेंगे, नहीं तो तोड़ खाएंगे। इसलिए पूज्य आचार्य गुरुदेव हर किसी को साधु बनाने में तत्पर नहीं रहते थे। उन्होंने बहुत से वैरागी-वैरागिनों को कह दिया कि अभी तुम घर में रहकर श्रावक व्रत की आराधना करो, उसके आगे की बात बाद में सोचेंगे।

श्रावक का पहला मनोरथ है आरंभ और परिग्रह त्याग करना। श्रावक सोचता है कि वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन मैं आरंभ और परिग्रह से निवृत्त हो जाऊँगा। दूसरे मनोरथ में वह सोचता है कि मुझमें क्षमता है, हिम्मत है अत: संसार के विषय-वासना का त्याग करके शुद्ध मन से साधु जीवन को स्वीकार करूँ। साधु जीवन स्वीकार करने के बाद साधुता में रमने का लक्ष्य होना चाहिए। साधु बन जाने के बाद यदि साधु जीवन में समस्या खड़ी होती है तो किस जन्म में समस्याओं से मुक्त होंगे, यह सोचने की बात है। यदि साधु के जीवन में समस्या खड़ी होती है तो दूसरे जीवन में क्या होगा? फिर क्यों छोड़ा परिवार? क्यों छोड़ा घर? घर छूट गया, किंतु दिमाग में घर बसा हुआ है, दिमाग से वह छूटा नहीं है तो साधुता की ओर नहीं बढ़ पाएंगे। जब तक वह छूटेगा नहीं, तब तक सच्चे मायने में साधु नहीं बन पाएंगे। गृहस्थ अवस्था की

बातें दिमाग में बनी रहेंगी तो समाधान नहीं होगा। फिर छोटी-छोटी बातें सताती रहेंगी। रुलाती रहेंगी। इससे शांति और समाधि को प्राप्त नहीं कर पाएंगे।

गुरु महाराज हमें शिक्षा देते हुए फरमाया करते थे कि साधु जीवन राजा जीवन है। सबसे ऊँची सभ्यता साधु की है। लोकसभा, विधानसभा, नगर-पालिका, क्या-क्या सभाएं होती हैं आपकी? इन सबसे ऊँची सभा साधु जीवन की है। अत: हमारा जीवन इतना उच्च होना चाहिए कि दूसरे लोग भी उसका आचरण करें, अनुगमन करें। हकीकत में जब भीतर साधुता उतर जाएगी तो सारी समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। फिर कोई शिकायत नहीं रहेगी।

मैं कई बार बोलता हूँ कि साधु को शिकायत नहीं होनी चाहिए कि गृहस्थ ने मुझसे ऐसा व्यवहार कर दिया, ऐसा व्यवहार कर दिया।

शिकायत किसलिए होती है?

अहंकार रहेगा तो भीतर शिकायत पैदा होगी। अहंकार नहीं रहेगा तो लोग कितनी ही बुराइयाँ करें उससे मेरा कुछ बुरा नहीं होगा। लोग मेरी कितनी ही बुराइयाँ करें, मुझे कितना ही बुरा कहें उससे मेरे को कोई लेना-देना नहीं है। किसी के कहने से मैं बुरा नहीं हो जाऊँगा।

हाथी चलता है तो गलियों के कुत्ते भौंकने लगते हैं, किंतु हाथी अपनी मस्त चाल में चलता है। हाथी, कुत्तों को खदेड़ने के लिए उनके पीछे नहीं दौड़ता। वह अपनी मस्त चाल में चलता रहता है।

एक बार एक सिंह से सियार ने कहा, राजन! बहुत बुरी खबर है। सिंह ने कहा, क्या खबर है बता। सियार ने कहा, लोगों में ऐसी चर्चा चल रही है कि एक गधे ने आपसे कुश्ती की और आपको हरा दिया, पछाड़ दिया। मैं चाहता हूँ कि इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए। सिंह ने कहा, रहने दे, चर्चा मत कर।

परिणाम सुनने वाले मेरे (सिंह) को भी जानते हैं और गधे को भी जानते हैं। कौन विश्वास करेगा कि गधे ने सिंह को हरा दिया? कौन विश्वास करेगा कि गधे ने सिंह से कुश्ती की और सिंह को हरा दिया?

दुनिया में आज वॉट्सएप पर चर्चाएं चलती हैं। हमारे भीतर कुतूहल हो जाता है, क्योंकि हमें आत्मविश्वास नहीं है। कुतूहल होने पर हम उस बात को फॉरवर्ड करते हैं कि तुमने सुना क्या कि गधे ने सिंह को कुश्ती में हरा दिया। कौन विश्वास करेगा कि गधा, सिंह को हरा देगा! विश्वास करेगा कोई,

बताओ कोई विश्वास करेगा क्या?

(श्रोतागण बोले- कोई विश्वास नहीं करेगा)

जब कोई विश्वास नहीं करेगा तो क्यों फॉरवर्ड करना। आपको कुतूहल है कि सामने वाले को खबर मालूम है या नहीं। जिस बात पर आपको विश्वास नहीं होता उसको भेजने से क्या मतलब, किंतु ऐसी चर्चाएं दुनिया में होती रहती हैं। हमें किसी को कोई समाधान देने की आवश्यकता नहीं है। हमारे विषय में कोई कुछ भी सोचे, उसके सोचने की बात है। जो मुझ पर विश्वास करेगा वह उसको सही नहीं समझेगा और जो मुझ पर विश्वास करने वाला नहीं है उसको विश्वास कराने की मुझे आवश्यकता नहीं है। किसलिए विश्वास कराना? क्यों विश्वास कराना? आत्मविश्वास होगा तो दुनिया कुछ भी कहे, कुछ भी सोचे मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यह साधुता का लक्ष्य होना चाहिए। ऐसा यदि साधु का लक्ष्य होता है तो उसको कोई टेंशन नहीं, कोई तनाव नहीं।

गृहीवास ना उसे सुहाता
महाव्रती बन मन मुस्काता।

महाव्रती बनने के बाद एकदम प्रसन्न हो जाएं। एकदम मस्त हो जाएं। टेंशन से मुक्त हो जाएं। कभी-कभी हम साधु-साध्वियों को देखते हैं तो उनका चेहरा बताता है कि वे बहुत टेंशन में हैं। क्यों भाई, किसलिए टेंशन में रहना? जब अहंकार साथ नहीं है तो टेंशन नहीं होनी चाहिए। अहंकार, बड़प्पन साथ है तो वह आपको समाधान नहीं लेने देगा। या तो समाधान में हो जाओ या बड़प्पन में हो जाओ। बड़प्पन में हो जाने पर सोचना मत कि समाधान मिलेगा, तनाव खत्म हो जाएगा। जब तक बड़प्पन, मान-सम्मान आपके सिर पर चढ़ा हुआ है, तब तक वह आपको शांति से नहीं बैठने देगा। हमें शांति और समाधि चाहिए?

चाहिए ना? अब आवाज नहीं आएगी। मैं जानता हूँ क्यों नहीं आएगी, क्योंकि हम मान-सम्मान में जी रहे हैं।

सभी किसमें जी रहे हैं?

मान-सम्मान में जी रहे हैं। मन में बैठा है कि फलां ने मेरे विषय में ऐसा कैसे बोल दिया। अरे, बोल दिया तो बोल दिया। बोलने वाला कुछ भी बोलेगा। बोलने वाले तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लिए भी बोले। रामायण में आपने पढ़ा-सुना होगा। टी.वी. पर देखा होगा कि एक धोबी ने राम के बारे में

क्या बोला। जब राम के विषय में प्रतिक्रिया हो सकती है, तो आप कौन-से लाट साहब बन गए कि कोई नहीं बोलेगा।

बोलने वाले का अपना मुँह है। तुमको यदि नहीं सुनना है तो अपने कान बंद कर लो। तुम्हारे अधिगत क्या है? सामने वाले का मुँह बंद कराना तुम्हारे अधिगत है या अपने कान बंद करना अधिगत है?

(श्रोतागण बोले- अपने कान बंद करना हमारे अधिगत है)

कोई मेरे बारे में कितना ही कुछ कहे, किंतु सुनने की आवश्यकता नहीं है। यदि एक हाथ से ताली बजानी है तो ऐसे ही बजेगी और दोनों हाथों से ताली बजानी है तो संसार है ही। एक हाथ से ताली बजाने का मतलब है अपने हाल में मस्त रहना। यह तब होगा जब अपने कान बंद रखेंगे।

नेता ऐसा चाहिए, कान खुले मुँह बंद।
अवसर हो तब ही खुले, कभी न होवे द्वंद्व।।

नेतृत्व कैसा होना चाहिए?

अवसर हो तभी मुँह खोलना, बाकी मुँह खोलने की जरूरत नहीं है। मुँह नहीं खोलेंगे तो कोई द्वंद्व नहीं होगा। सुनने वाला हारता नहीं है, बोलने वाला हारता है। बोलने वाला कितना ही हथौड़ियाँ चला रहा है, किंतु हारेगा-टूटेगा वही। सुनने की क्षमता है तो सुनते जाओ, सुनते जाओ, सुनते जाओ...

सुनना-सुनना, सुनना-सुनना...
कब तक सुनना, कब तक सुनना...
जब तक जीवन, तब तक सुनना,

हो गया ना समाधान?

श्रेणिक जी कोई आपके लिए बोले कि ब्यावर में किसी को आगे नहीं आने देते।

(श्रेणिक जी नाहर बोले- नहीं-नहीं भगवन्)

ये लो अभी क्या सुना आपने? आपने प्रतिक्रिया कर दी। हम जल्दी से प्रतिक्रिया करते हैं, जबकि सुनना चाहिए। कब तक सुनना? जब तक जीवन तब तक सुनना।

जब गुरुदेव विराज रहे थे तब कुछ लोगों ने मेरे विषय में कहा कि राम मुनि ने गुरुदेव को अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया है। मैंने कहा उन लोगों से कि

जो ऐसा सोचता है वह मुझे गुरुदेव से भी पॉवरफुल समझता है। अब इससे बढ़कर क्या होगा कि वह मुझे सुपर मानता है। हम समाधान बहुत जल्दी देते हैं कि नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं है। अरे! है जो है। दुनिया है। कोई कैसा ही मान रहा है, कोई कैसा ही मान रहा है। सब एक जैसा नहीं मानेंगे।

सुनना-सुनना, सुनना-सुनना
कब तक सुनना, कब तक सुनना
जब तक जीवन, तब तक सुनना,
सुनना। कहना नहीं।

कहने वाला बोलता है-

कहना-कहना, कहना-कहना एक कहे तो चार सुनाना।
कब तक कहना, कब तक कहना, जब तक जीवन तब तक कहना।।

आप चाहे खुश हो रहे हों, पर अपनी बात तो सुनना है। उसे पी जाना होता है। सुनने का मतलब है कि आपके बारे में कोई बात कर रहा है तो उसको पचाते रहें, हजम करते रहें। अपच नहीं हो। इतनी क्षमता तब होगी जब अपने आपको साधेंगे। ऐसा तब होगा जब अपने अहंकार पर ध्यान नहीं देंगे। अहंकार पर ध्यान नहीं देंगे तो बातें सुनने में आसानी होगी। लक्ष्य रहे कि अहंकार पर ध्यान नहीं देना है। ऐसा लक्ष्य होगा तो आगे बढ़ेंगे। फिर कितना ही बड़ा पहाड़ आ जाएगा रुकेंगे नहीं।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार
कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहता, ऊँची-नीची सब ही सहना।
सुनना है श्रेयकार भविकजन, सुन्दर हो...

हमारा संस्कार ऐसा होना चाहिए कि कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहें। कोई कुछ कहे, उसे सुनते रहें। सहते रहें। जो जितना सहेगा, उतना ही आगे बढ़ेगा।

घन पर हथौड़ी की चोट पड़ती रहती है। घन कभी टूटता नहीं है पर हथौड़ियाँ टूटती जाती हैं। हथौड़ी का काम है चोट करना और घन का काम है सहना। घन सहता रहता है। एक घन बदलने में वर्षों लगते हैं, किंतु हथौड़ी बदलती रहती है। हमें हथौड़ी नहीं बनना है, घन बनना है। घन बनेंगे तो सारी टेंशन समाप्त हो जाएगी। समस्याएं खत्म हो जाएंगी। न कोई समस्या, न कोई समाधान। हम अपने आपमें समाधान हैं। हम कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते रहें।

ऊँच-नीच सहते रहें।

तुम बदलोगे युग बदलेगा,
संस्कारों का विगुल बजेगा
होगा युग निर्माण भविकजन...

दुनिया को बदलने की ख्वाहिश नहीं रहे। लक्ष्य रहे कि पहले अपने आपको बदलूँ। दूसरों को बदलना मेरा अधिकार नहीं है। जो अपना अधिकार है उसी को करना चाहिए किंतु हम दूसरों को सुधारने की कोशिश ज्यादा करते हैं। दूसरों को सुधारने के लिए उनके पीछे पड़ जाते हैं। वह सुधरेगा या नहीं, हम जरूर बिगड़ जाएंगे। दूसरा सुधरेगा या नहीं, स्वयं जरूर बिगड़ जाएंगे। दूसरों के चक्कर में अपने आपको बिगाड़ लेंगे। इसमें नुकसान किसका है?

(श्रोतागण बोले- इसमें नुकसान हमारा ही है)

अपने आपको सुधारना अपने अधिकार में है। हमें अपने अधिकार की बात पर ध्यान देने की जरूरत है। पहले स्वयं का सुधार करना है। अपने भीतर की गाँठों को सुलझाना है। दूसरों की बात सुननी है। मेरी आँख दूसरों की गलतियों पर नहीं जानी चाहिए। अपनी आँख बंद करके बैठ जाएं। आँख बंद करने का मतलब यह नहीं है कि किताब पढ़ना बंद कर दूँ। आँख बंद करने का मतलब है कि किसी की गलती की ओर नहीं देखना है।

तुम बदलोगे युग बदलेगा...

अच्छाई पहले अपने से शुरू करनी चाहिए। हम चाहें कि दूसरे अच्छे हों, किंतु खुद बुरा बने रहें तो कैसे होगा। सुधार की प्रक्रिया खुद से शुरू होगी तो सुधार होगा किंतु हम दूसरों को सुधारने की कोशिश करते हैं।

सुभाषचंद्र बोस हिम्मत वाले निकले तो उनके पीछे कतार लग गई। महात्मा गांधी ने आंदोलन चलाया तो उनके साथ बहुत लोग जुड़ गए। एक आदमी दृढ़ता से चलेगा तो उसके पीछे कतार लग जाएगी।

भगवान महावीर अकेले निकले थे। उनको ज्ञान हुआ। उन्होंने उपदेश दिया और हजारों-लाखों की संख्या पीछे हो गई। यह मत देखो कि मेरे पीछे कौन आ रहा है। इंतजार मत करो कि कोई पीछे आए। तुम आगे बढ़ते जाओ, रास्ता अपने आप बनता जाएगा। आगे बढ़ते जाओ, पीछे देखने की आवश्यकता नहीं है। बस आगे बढ़ते रहो। कदम लड़खड़ाने नहीं चाहिए।

कदम लड़खड़ाएंगे नहीं तो लोग अपने आप तुम्हारे पीछे चलेंगे। खुद के कदम ही लड़खड़ाते रहेंगे तो पीछे कौन आएगा। लोग सोचेंगे कि इसके खुद के कदम लड़खड़ा रहे हैं, यह हमारा क्या कल्याण करेगा।

धम्म सद्धा हृदय धरूँ...

इसके लिए जरूरी है कि धर्म श्रद्धा हृदय में धारण करें, उसको प्राण बना लें तो वह हमारे सुख का त्राण करने वाला होगा। कोई तनाव नहीं होगा। कोई चिंता नहीं होगी। कोई टेंशन नहीं होगा। कोई समस्या नहीं आएगी। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे।

07 जुलाई, 2023

6

महाव्रती बन मन मुस्काएं

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म की महिमा को शब्दों में समेटा नहीं जा सकता। धर्मी पुरुष उस महिमा का अनुभव करते हैं। धर्म शुद्ध योगों से प्राप्त होता है।

गौतम स्वामी द्वारा भगवान महावीर से यह पूछने का प्रसंग पिछले दिनों से चल रहा है कि धर्म श्रद्धा का क्या लाभ होता है? धर्म के प्रति श्रद्धा से प्राणी क्या प्राप्त करता है?

भगवान ने उत्तर दिया–

''सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ''

उसके आगे बताया कि गृहवास में उसका मन नहीं लगता, उसको गृहस्थी ठीक नहीं लगती, उसको गृहस्थ बने रहना सुहावना नहीं लगता। वह चाहता है कि गृहस्थी की बेड़ियों को, जंजीरों को तोड़कर मैं बाहर हो जाऊँ। खुले गगन में, नभ में उड़ान भरूँ।

'महाव्रती बन–मन मुस्काता'

महाव्रत कितने हैं?

(श्रोतागण बोले– पाँच महाव्रत हैं)

आरंभ और परिग्रह का त्याग कर मन प्रसन्न हो जाता है।

''सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं''

अर्थात् सम्पूर्ण रूप से प्राणातिपात का त्याग कर देना, विरक्त हो जाना।

एक बंधन बाहर से होता है और एक भीतर से। बाहर से किसी को बंदी बनाते हैं जैसे कालशौकरिक कसाई को अंधकूंप में डाला गया कि तुम आज पाँच सौ पाडों को नहीं मारोगे। उसने कहा कि यह सम्भव नहीं है, मुझे मेरा कार्य करना है। मैं अपना कार्य करूँगा। उसने भाव से पाँच सौ पाडे मारे। वह बंधन में था, फिर भी भाव से पाँच सौ पाडों का कत्ल कर दिया। बंधन प्रतिज्ञा है। उसमें भीतर की ऐसी भावना होती है कि मुझे किसी जीव की विराधना नहीं करनी है। ऐसी भावना तब होगी जब भीतर ''सव्वभूयऽप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ'' की भावना जगेगी। सारे प्राणियों को अपने समान समझेंगे तो ऐसी भावना होगी। ऐसी भावना तब होगी जब यह समझेंगे कि जैसी आत्मा मेरे भीतर है, वैसी ही समस्त प्राणियों में है। यदि दूसरे प्राणियों के आत्मा की अपलाप करते हैं तो अपना अपलाप करते हैं। ऐसा श्रीमद् आचारांग सूत्र में कहा गया है।

यह भगवान का उपदेश है- ''मेत्तिं भूएसु कप्पए'' अर्थात् प्राणिमात्र के साथ मैत्री भाव होना चाहिए। मित्रता में न राग होता है, न द्वेष। मित्रता में कर्तव्य भाव प्रधान होता है। मित्रता में मानवीय भावों की प्रधानता होती है। उसमें ऊँच-नीच का भेद समाप्त हो जाता है।

हम कृष्ण और सुदामा की मैत्री के बारे में सुने हैं। अभय और सुलश की मित्रता के बारे में सुने हैं। अभय और सुलश में एक कसाई का पुत्र था और एक राजकुमार। मित्रता में भेद नहीं होता। जहाँ पारस्परिक अभेद भाव विकसित होता है, वहाँ मित्रता का भाव होता है। हमारे भीतर यह भाव विकसित होगा तो हम किसी भी प्राणी का, व्यक्ति का भेद कर ही नहीं पाएंगे। भेद करना तो दूर की बात है, विराधना तो दूर की बात है, किसी को दुख-दर्द भी देने के लिए मन तैयार नहीं होगा। मन यह नहीं चाहेगा कि मैं किसी को पीड़ित करूँ। यदि अपने व्यवहार से कोई पीड़ित होता है तो वहाँ वह समीक्षा करता है कि मेरा व्यवहार असंगत तो नहीं है। मेरे मन में उसके प्रति द्वेष के भाव तो नहीं हैं। मैंने दूसरे के साथ जो व्यवहार किया उसमें द्वेष का रेशा तो नहीं रहा है। इससे हमारा व्यवहार स्वत: ऐसा होगा कि किसी प्राणी को कोई कष्ट नहीं पहुँचे।

मन में द्वेष होगा, नफरत होगी, ईर्ष्या और डाह की भावना होगी तो व्यवहार में अंतर आ जाएगा। मुँह से भले ही शब्द मधुर निकले, किंतु मधुर

शब्द के साथ यदि जहर घुला हुआ है उसका असर होगा।

दूध को मृत्यु लोक का अमृत माना गया है। दूध में जहर घुला होगा तो उसका असर होगा या नहीं होगा?

(श्रोतागण बोले- उसका असर होगा)

जैसे दूध में रहे हुए जहर का असर होता है वैसे ही व्यक्ति के भीतरी कलुषिता का असर हुए बिना नहीं रहेगा, भले ही वह कितना ही मधुर शब्द बोले।

अहिंसा का अर्थ है- हमारा हृदय अमृत बन जाए। हमारे हृदय में जहर नहीं रहे। अहिंसा और जहर दोनों एक स्थान पर टिक ही नहीं पाएंगे। अहिंसा के साथ क्षमा का मेल है। अहिंसा के साथ क्रोध का मेल नहीं है। अहिंसा के साथ मान का मेल नहीं है। अहिंसा के साथ माया और लोभ का मेल नहीं है। अहिंसा हमको नम्र बनाएगी जैसे पत्थर से प्रतिमा बन जाती है।

जैसे कारीगर किसी पत्थर को प्रतिमा बना देता है, वैसे ही अहिंसा हमारे मन को मंदिर बना देती है। अहिंसा हमारे भीतर माधुर्य भरेगी। क्षमा भरेगी। उसमें कालुष्य भाव दूर-दूर तक नहीं रहेगा। यदि हमारे भीतर कालुष्य भाव का दिग्दर्शन हो रहा है, कुछ भी कलुषिता है तो यह समझना चाहिए कि अभी हमारे भीतर पूर्ण अहिंसा नहीं है। जितनी अहिंसा पनपनी चाहिए, विकसित होनी चाहिए। वह विकसित नहीं हो पाई है। लक्ष्य यह होना चाहिए कि अहिंसा विकसित हो जाए। अहिंसा परिपूर्ण हो जाए। परिपूर्ण अहिंसा वीतरागता के नजदीक ले जाएगी। वीतरागता सर्वज्ञ बना देगी। इसलिए महाव्रती बनने के बाद मन पवित्र हो जाता है। मन पावन हो जाता है। राग-द्वेष नहीं होता।

यहाँ हमें समझना पड़ेगा कि क्या छठे-सातवें गुणस्थान में कोई भी राग-द्वेष रहित हो सकता है? राग-द्वेष तो होगा, किंतु उसका प्रचण्ड रूप नहीं होगा। तीर्थंकर भी दीक्षित होने के बाद जब तक सर्वज्ञ, केवली नहीं बनते तब तक मुख्य रूप से छठे-सातवें गुणस्थान में चलते रहते हैं। ये गुणस्थान एकदम से रागरहित, द्वेषरहित नहीं है फिर भी उन पर राग हावी नहीं होता। द्वेष हावी नहीं होता। उनके सामने कोई कितनी भी गालियाँ बक दे, गालियाँ बकने वाले के प्रति उनके मन में नफरत के भाव पैदा नहीं होते। यह छद्मस्थ अवस्था की

बात कह रहा हूँ। उनके भीतर राग-द्वेष निष्क्रिय हो जाते हैं। वे सक्रिय रूप से उनके भीतर अपना खेल नहीं खेल पाते।

छठे-सातवें गुणस्थान में राग-द्वेष होगा, किंतु उनको अपने पर हावी नहीं होने देना। जब वे हावी होंगे तो आत्मा को कष्ट देंगे और प्रसन्नता को छीन लेंगे। प्रसन्नता बनी नहीं रह पाएगी। इसलिए अहिंसा के भावों को हमें प्रतिदिन प्रमोट करना चाहिए। निरंतर चिंतन-मनन होना चाहिए। अनुप्रेक्षा होनी चाहिए कि जो मुझे प्राप्त है उसका संरक्षण कैसे करूँ? उसको कैसे बढ़ाऊँ?

अहिंसा का संरक्षण करना है। उसको विकसित करना है। उसकी लौ मंद नहीं पड़नी चाहिए। जैसे अहिंसा की बात है वैसे ही ''सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं'' का प्रसंग है।

सभी प्रकार से मिथ्या भावों का त्याग करना। असत्य वचन भूल से भी नहीं निकलना। जान-बूझकर मिथ्या बोलना तो अलग बात हो गई। मन इतना सध जाए कि भूल से भी कभी मुँह से असत्य शब्द न निकले।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. फरमाया करते थे कि जिसका मन सरल हो, निर्मल हो और जिसने अपनी भाषा पर कंट्रोल रखा हो उसका वचन बारह साल में सिद्ध हो जाएगा। वह जो बोलेगा वह होगा। ऐसा होगा ही नहीं कि वह बोले और नहीं हो। नहीं होने जैसी बात वह बोलेगा ही नहीं। मैंने यह प्रत्यक्ष देखा है।

जलगाँव चातुर्मास प्रवेश की पूर्व संध्या पर गुरुदेव ईश्वरचंद जी ललवाणी की फैक्ट्री में विराजे हुए थे। उनके पिता जी गुरुदेव के पास आए और कहने लगे- गुरुदेव! मुझे तो पूना जाना पड़ेगा।

उन्होंने बताया कि उनकी बेटी अचला जी तालेड़ा को हॉस्पिटल में भरती कराया गया है। डॉक्टर ने हार्ट की तकलीफ बताई है। गुरुदेव के मुँह से सहसा निकला, हार्ट की तकलीफ तो नहीं होनी चाहिए। जब वे वापस आए तो बताया कि हार्ट की तकलीफ नहीं थी, गैस की तकलीफ थी। वचनसिद्धि बहुत आसान है, बस यह ध्यान रखना चाहिए कि बारह वर्षों तक राग-द्वेषपूर्वक किसी को कोई शब्द नहीं कहता है, भाषा समिति के जो नियम बताए गए हैं, उनकी पालना करना है, जान-बूझकर झूठ नहीं बोलना, अनजाने में भी झूठ नहीं निकलना। मिला-जुला झूठ भी नहीं बोलना, ''नरो वा कुज्जरो वा'' जैसे

मिश्र शब्द, दुविधा में डालने वाले शब्द भी जान-बूझकर नहीं बोलने चाहिए। ऐसे शब्द भी नहीं बोलने चाहिए जिसके दो अर्थ हो जाएं। साधक अपने मन को ऐसा बना लेगा तो बताओ उसका मन रोएगा या प्रसन्न होगा?

(श्रोतागण बोले- उसका मन प्रसन्न होगा)

उसके मन में सबकी भलाई की भावना रहेगी। वह किसी का बुरा सोच ही नहीं सकता। मुँह से कोई शब्द ऐसा नहीं निकलेगा, जिससे किसी का बुरा हो जाए। उसकी वचन सिद्धि को कौन रोक पाएगा?

तीसरा महाव्रत है-

'अचौर्य'

मनुष्य के मन को साधने के लिए यह बड़ी महत्त्वपूर्ण औषधि है। मनुष्य कोई भी चीज देखकर उसे लेने का प्रयत्न करता है। साधु के लिए भगवान कहते हैं ''सव्वं से जाइयं होई'' अर्थात् हर किसी चीज को उठाना तुम्हारे अधिकार में नहीं है। जिसकी वस्तु है उसकी अनुमति लेना जरूरी है। अनुमति मिलने के बाद ही उसको उठा सकते हो। 'दत्त' अर्थात् दी हुई वस्तु ही ग्रहण करना तुम्हारे अधिकार में है। जो किसी ने नहीं दी, वह चाहे कितनी ही प्रिय चीज क्यों न हो तुम्हारे लिए ग्राह्य नहीं हो सकती। तुम उसे ग्रहण नहीं कर सकते। अचौर्य महाव्रत मन को साधने वाला है। मन की तरंगों को कंट्रोल करने वाला है। हमारा मन, हमारी आँखें, हमारे कान प्रिय वस्तुओं के प्रति आकर्षित होते रहते हैं। संसार में हमने अब तक यही तो किया है। आँखों को जो चीज प्रिय लगती है, उसे ग्रहण करना चाहते हैं। कानों को जो बढ़िया लगा उसको भी ग्रहण करना चाहते हैं। मन जिसको चाह रहा है उसको खरीद लेंगे। चाहे जितने भी पैसे लगे खरीद लेंगे। साधु बनने के बाद मन को नियंत्रित करना होगा। कोई भी चीज यदि सामने वाला नहीं दे रहा है तो उसे उठा नहीं सकते, छू नहीं सकते। कलम-कॉपी, किताब, डायरी या कुछ भी हो। भगवान कहते हैं कि एक तिनका भी क्यों न हो, जिसका है उसकी अनुज्ञा लेनी पड़ेगी। बिना अनुज्ञा के कोई भी चीज ग्रहण नहीं करनी है।

चौथा महाव्रत है-

''सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं''

यानी मैथुन क्रिया से सर्वथा प्रकार से निवृत्त हो जाओ। जिससे संसार

का उद्भव होता है। जिसके माध्यम से संसार में जीव का आगमन होता है, ऐसे मैथुन का त्याग करना। ऐसी किसी भाषा का भी प्रयोग नहीं करना, किसी को उस प्रकार का मार्ग भी नहीं दिखाना।

पाँचवाँ महाव्रत है–

''सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं''

अर्थात् सर्वथा प्रकार से परिग्रह से मुक्त हो जाना। परिग्रह की कामना मन में भी नहीं करना। वैसे बहुत कठिन काम है कि धन का, दौलत का आकर्षण नहीं रहे।

मछंदर और गोरखनाथ जी गुरु–शिष्य थे। दोनों जंगल से गुजर रहे थे। गुरु की झोली में सोने की एक शिला थी। गुरु ने शिष्य से कहा कि भाई! मेरा मन भयग्रस्त है। रोज ऐसा नहीं होता, किंतु आज मन भय खा रहा है। थोड़ा आगे जाने के बाद गुरु को हाजत हुई। गुरु उस जगह पर रुके। उस समय शिष्य ने गुरु की झोली से सोने की शिला निकालकर बाहर फेंक दी। जब दोनों दुबारा चलने लगे तो गुरु ने कहा कि अब मन का भय दूर हो गया। शिष्य ने कहा कि पहले भय हो रहा था अब नहीं होगा क्योंकि भय पीछे छूट गया।

क्या कारण रहा होगा भय का? किस कारण से भय हो रहा था?

भय काया को नहीं माया को होता है। एक आदमी जोखिम लेकर यात्रा कर रहा हो और एक आदमी अकेले यात्रा कर रहा हो तो दोनों के दिल की धड़कन में अंतर होगा। जोखिम लेकर यात्रा करने वाले के मन में भय होगा कि कोई दुर्घटना न घट जाए। कोई छीन न ले। वह विशेष सावधानी से चलेगा। कभी–कभी विशेष सावधानी बाहर झलक जाती है और दूसरे लोग समझ जाते हैं कि यह क्यों चौकन्ना होकर चल रहा है। उस पर कभी–कभी वह बात हावी हो जाती है, किंतु जिसके पास धन नहीं है, जो अकिंचन है उसको भय नहीं रहेगा।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. की दीक्षा कपासन में हुई। कपासन यहाँ से नजदीक ही है। ज्यादा दूर नहीं है। डॉक्टर नेमीचंद जी जैन ने उस गाँव के नाम में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या की। कः (क्या), पार्श्व (पास), न (नहीं)– वह कस्बा 'जिसके पास क्या नहीं है' अर्थात् 'जिसके पास सब कुछ है', वह कपासन है अथवा 'मेरे पास क्या है– कुछ भी नहीं है' जिसको समता प्राप्त हो गई उसके पास क्या नहीं है। जो चीज राजा–महाराजाओं को

प्राप्त नहीं हो पाती, बड़े-बड़े सम्राटों को प्राप्त नहीं हो पाती, बड़े-बड़े सेठों को प्राप्त नहीं हो पाती, वह 'समता' जिसे प्राप्त हो जाए, उसका दिवाला नहीं निकल सकता। उसकी जिंदगी सदाबहार होगी।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने समता को साधा तो यह कहना सार्थक हो गया कि उनके पास क्या नहीं है अर्थात् उनके पास सब कुछ है। मन में कोई अभाव नहीं है कि मुझे यह चीज नहीं मिली। मन में किसी चीज के प्रति आकांक्षा होगी और वह नहीं मिले तो अभाव लगता है। जब आकांक्षा ही नहीं होगी, अभिलाषा ही नहीं होगी तो अभाव दु:ख नहीं देगा।

अभाव कब दु:ख देता है?

जब लगता है कि मेरे पास यह चीज नहीं है। आकांक्षा हो, अभिलाषा हो और वह प्राप्त नहीं हो तो अभाव का भाव लगेगा। अभाव का दु:ख होगा, किंतु जब चाह ही नहीं होगी, कोई फिक्र ही नहीं होगी तो फिर अभाव क्यों कष्ट देने वाला बनेगा। अत: 'महाव्रती बन मन मुस्काता।'

उसके आगे बताया गया है कि वह तन-मन के दु:खों का छेदन करता है, तन-मन के कष्ट उसको दु:खी नहीं कर पाते।

दु:ख का कारण क्या है?

दु:खी होने के बहुत सारे कारण होंगे। बहुत सारे अर्थ होंगे। बहुत सारे अनुभव हमारे सामने आ सकते हैं। इष्ट की चाह और अनिष्ट दूर हो जाने की भावना व्यक्ति को दु:खी बनाती है। मन किसी चीज को चाहता है और वह चीज प्राप्त नहीं हो तो दु:ख होता है। इसी तरह जो चीज अनिष्ट है, जिसको हटाना चाहता है, जिसके बारे में सोचते हैं कि मेरे पास नहीं रहनी चाहिए, वह चीज नहीं हटती है, तो दु:ख पैदा होता है और जब इष्ट-अनिष्ट की कोई बात नहीं होगी तब दु:ख पैदा होगा कैसे? जितनी इच्छा होगी उतने ही दु:खी होंगे। जितनी अभिलाषाएं होंगी उतने ही दु:खी होंगे। जितनी आकांक्षाएं होंगी उतने ही दु:खी होंगे। जिसकी कोई आकांक्षा नहीं है, इच्छा नहीं है, जिसने भूतकाल की बात दिमाग से निकाल दी और भविष्य की कोई कल्पना ही नहीं है, वह दु:खी नहीं होगा।

गई बात चिन्ते नहीं, आगम वांछा नाय।
वर्तमान वरते सदा, ते सुखी जग मांय।

भूतकाल तो चला गया। अब उसका रोना रोने से क्या फायदा। अब रोना रोकर भी मिलने वाला क्या है? इसी तरह भविष्य अभी सामने नहीं है। मौजूद नहीं है। भविष्य की कल्पनाएं करने, भविष्य की लहरों में जीने और वर्तमान को बिगाड़ देने से क्या होगा? कई लोग बड़े चिंतित होते हैं कि यदि कल कोई बिगाड़ हो गया तो क्या होगा? मेरा भविष्य क्या होगा, कैसा होगा?

भविष्य की चिंता आदमी को बहुत सताती है। भविष्य की चिंता नहीं होनी चाहिए। वर्तमान को सुख से जीना चाहिए। जो वर्तमान को सुख से जी लेगा, उसका भविष्य कभी दु:खमय नहीं होगा। हम वर्तमान में जी नहीं पाते हैं और भविष्य के दुख से दु:खी हो जाते हैं, परेशान हो जाते हैं कि आज मेरी जो पोजिशन है, कल रहेगी या नहीं रहेगी। मेरा मान-सम्मान रहेगा या नहीं रहेगा। परेशान होते हैं कि आज लोगों में मेरी बहुत मान्यता है, कल वह खत्म न हो जाए।

एक करोड़पति सेठ था। वह खुलकर पैसे लुटाता था। कभी किसी को मना नहीं करता। एक बार सेठ से किसी ने कहा कि लक्ष्मी चंचल है। आज आपके पास बहुत धन है, आप खुलकर लुटा रहे हो। यदि कल लक्ष्मी रूठ गई तो क्या होगा? सेठ ने कहा, उस समय हाथ जोड़ लूंगा। कल लक्ष्मी रूठ जाएगी, इसलिए आज मुझे कुछ नहीं करना, यह किसने सिखाया। आज लक्ष्मी है, तो उसका उपयोग करना है। उसको सही जगह लगाना है।

धन की तीन अवस्थाएं होती हैं। दान, भोग और नष्ट। या तो दान दे दो या भोग लो या वह नष्ट हो जाएगी। इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त कोई अन्य अवस्था नहीं है। कोई आदमी कितना खा लेगा? एक दिन में कोई करोड़ रुपए खा लेगा क्या? गाय-भैंस खा सकती है। गाय-भैंस के सामने एक करोड़ रुपए रख दो तो वह खा लेगी, किंतु कोई व्यक्ति खा पाएगा क्या? एक गाय करोड़ रुपए चर सकती है, किंतु आदमी नहीं। बढ़िया से बढ़िया खाना खाएगा तो भी सौ, दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ, हजार रुपए का खा लेगा। उससे ज्यादा क्या खाएगा। सेर भर घी पीने की भी हिम्मत नहीं है।

हमारे सुशक्ति श्री जी म.सा. के दादा जी (छगनलाल जी मोदी) ने तीन लीटर घी खड़े-खड़े पी लिया। उस समय लीटर नहीं था, सेर से हिसाब लगाते थे। पौने तीन सेर यानी ढाई किलो घी पी लेना एक बात है, किंतु पचा

लेना अलग बात है। कोई ढाई लीटर घी पी सकता है, किंतु पीकर खाट पकड़ ले, हॉस्पिटल में भरती होना पड़े तो क्या मतलब है। घी खाने के बाद पचाने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए। घी पीने के बाद थकान लगेगी, किंतु मेहनत करते रहेंगे तो घी पच जाएगा। घी खाकर लेट गए तो वह पचेगा नहीं। उन्होंने बताया वे घी पीकर ऊपर चढ़ते रहे, नीचे उतरते रहे।

एक बार बीकानेर में मैंने डॉक्टर साहब से बात की। मैंने कहा, डॉक्टर साहब! जर्मनी में ऐसा शोध हुआ है कि गाय का (असली) घी कोलेस्ट्रॉल कम करने का काम करता है और आप कहते हो कि घी नहीं खाना चाहिए। आप घी खाने के लिए मना करते हो।

उन्होंने कहा मैं मना नहीं करता, वर्क के आधार पर मना करता हूँ। जो टेबल वर्क करता है उसको मना करता हूँ। जो शरीर से काम करता है, मेहनत करता है उसको घी खाने की कोई मनाही नहीं है। घी खाकर टेबल पर बैठ जाने से घी पचेगा नहीं, किंतु शारीरिक मेहनत करने वाले को घी नुकसान करने वाला नहीं है।

मन और तन के दु:ख का छेदन करने वाली होती है धर्म की श्रद्धा। भगवान महावीर ने बताया कि धर्म श्रद्धा से मन और तन के दु:ख का छेदन हो जाता है। वहाँ उसके दिमाग में बात आ जाएगी–

''जहाँ देह अपना नहीं, वहाँ न अपना कोय''

यानी जब शरीर ही मेरा नहीं है, तो उसमें कितना ही दु:ख आए, मेरा क्या है?

सनत्कुमार चक्रवर्ती को धर्म श्रद्धा जगी। उन्हें 16-16 महारोग हो गए फिर भी शरीर की वेदना उनको सता नहीं रही थी। शरीर की वेदना उनको दु:खी नहीं बना पाई। धर्म श्रद्धा तन और मन के दु:ख का छेदन करने वाली है। शाश्वत सुख का संवेदन कराने वाली है। अव्यावाध सुख का संवेदन कराने वाली है। हमने अभी अव्यावाध सुख को नहीं जाना है। अव्यावाध सुख का अर्थ होता है, किसी प्रकार की बाधा खड़ी नहीं होना। अव्यावाध सुख भौतिक पदार्थों से मिलने वाला नहीं है। अव्यावाध सुख आत्मा का सुख है। हमारा ऐंद्रिक सुख क्षणिक है। सुख हुआ और किसी ने छीन लिया। बीच में रुकावट आ गई।

खाना अच्छा है, मिठाई अच्छी है, किंतु किसी को शुगर है तो वह उसकी वजह से मिठाई का स्वाद नहीं ले पाएगा। उसको डॉक्टर ने मना कर रखा है कि तुम शुगर के पेशेंट हो, शुगर नहीं खा सकते। वह मिठाई नहीं खा पाएगा। किसी को कचौरी, समोसा, नमकीन बहुत प्रिय है, खाने का मन हो रहा है, किंतु ब्लड प्रेशर हाई हो गया तो डॉक्टर कहता है कि तुम नमकीन नहीं खा सकते। अब समोसा, कचौरी, नमकीन खाना बंद हो गया। वे चीजें सामने पड़ी हैं, किंतु डॉक्टर ने मना कर रखा है इसलिए खा नहीं सकता।

सिद्ध भगवान के आठ गुण किस-किसको याद है? कौन बोलेगा सिद्ध भगवान के आठ गुण? आठ गुणों में अव्यावाध सुख बताया या नहीं? कोई बाधा खड़ी होने वाली नहीं है। अंतराय कर्म समाप्त हो गए। अब क्या बाधा रही? अनंत सुख भोगने में कोई रुकावट पैदा नहीं होगी। रुकावट शरीर में रहते हुए होती है। शरीर के रोग हमें रोकने वाले हो जाते हैं। धर्म श्रद्धा हमारे जीवन को सुंदर संस्कार देना चाहती है। हमारे संस्कार सुंदर हो जाने चाहिए। सुंदर संस्कार के लिए धर्म श्रद्धा का योग लेना पड़ेगा।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
संस्कारी है पुत्री सुनंदा, देखे उसको मन आनंदा,
हर्षित है परिवार, भविकजन...

संस्कार की सुंदरता के लिए सबसे पहले अपना मन सुंदर होना चाहिए। मन में दुविधा रहेगी तो सुंदर संस्कार नहीं टिकेंगे।

बारह साल का एक बच्चा किसी दुकान पर घी लेने गया। एक डिब्बा साथ में ले गया और दुकानदार से कहा कि इसमें दो किलो घी डाल दो। दुकानदार ने डिब्बा खोला तो उसमें से केरोसीन की गंध आ रही थी। दुकानदार ने लड़के से कहा कि बेटा! मैं इसमें घी नहीं दे सकता। इसमें केरोसीन की गंध आ रही है। लड़के ने कहा कि कोई बात नहीं, आप तो दे दीजिए। दुकानदार ने कहा, मैं नहीं दे सकता। तुम यह घी लेकर घर जाओगे तो घरवाले बोलेंगे कि घी में केरोसीन मिला हुआ है और इसकी चर्चा जगह-जगह होगी तो मेरे घी की बदनामी होगी, इसलिए मैं तुम्हें इसमें घी नहीं दे सकता। साफ डिब्बा होगा तो ही घी दूँगा।

वह दुकानदार उस बच्चे को घी क्यों नहीं देता?

(श्रोतागण बोले– उस डिब्बे में करोसीन की गंध आ रही थी)

दुकानदार घी इसलिए नहीं दे रहा था, क्योंकि वह डिब्बा साफ नहीं था। जैसे घी लेने के लिए डिब्बा साफ होना चाहिए, वैसे ही संस्कार पाने के लिए मन साफ होना चाहिए। मन सुंदर होना चाहिए। निर्मल और पवित्र होना चाहिए।

एक सेठ की पुत्री का नाम था सुनंदा। सुनंदा इतनी संस्कारी लड़की थी कि उसको देखते ही लोग आनंदित हो जाते। लोगों का मन आनंद से खिल जाता।

एक लड़की को, आदमी को देखते ही मन खुश हो जाता है और एक को देखते ही लगता है कि कैसा अज्जड़ आदमी है।

ऐसा क्यों होता है?

इसका कोई-न-कोई रीजन होगा। बिना रीजन के ऐसा नहीं होगा। कोई भी संस्कारवान, विनयवान कहीं जाएगा तो आदर पाएगा, सम्मान पाएगा। वह लोगों के दिल को आनंद देने वाला बनेगा। जिस व्यक्ति में संस्कार नहीं होंगे, वह कितना ही कामयाब हो, वह महत्त्वपूर्ण नहीं होगा। संस्कार से सूझ-बूझ आती है। सूझ-बूझ नहीं हो तो काम करना भी उलटा पड़ जाता है। कैसे उलटा पड़ जाता है, उसे एक रूपक से जान सकते हैं।

एक मस्तमौला आदमी था। उसने देखा कि एक बिल्डिंग में आग लगी है। उसने आव देखा न ताव, तुरंत बिल्डिंग के भीतर घुसकर अंदर के आदमियों को बाहर निकालने लगा। थोड़ी देर में पुलिसवाले आए और उसको पकड़ लिया, अरेस्ट कर लिया। उसने कहा, मुझे क्यों अरेस्ट कर रहे हो, मैंने तो इन आदमियों को बाहर निकाला है, इनको बचाया है, इनकी रक्षा की है।

पुलिसवालों ने कहा कि तुम आग बुझाने के कार्य में बाधक बने हो इसलिए तुम्हें अरेस्ट कर रहे हैं। तुमने उन्हें ही बाहर निकाला जो आग बुझा रहे थे।

वह मस्तमौला क्या कर रहा था?

वह उन्हें ही बाहर निकाल रहा था, जो अंदर आग बुझाने के लिए गए थे। वह काम करना तो चाहता था किंतु सूझ-बूझ नहीं होने से उलटा काम कर रहा था।

यदि सूझ-बूझ नहीं है तो काम करना भी उलटा पड़ जाता है। संस्कारों की सूझ-बूझ बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है।

व्यक्ति में संस्कार कैसे आते हैं, कैसे पनपते हैं, हर कोई संस्कारी क्यों नहीं होता, इस पर अपन समय के साथ विचार करेंगे। उससे पहले धर्म श्रद्धा से मन को पवित्र बना लें। धर्म श्रद्धा से मन पवित्र बन जाएगा तो दूसरे संस्कार अपने आप भीतर प्रविष्ट होंगे।

श्री गगन मुनि जी म.सा. के आज 22 की तपस्या है। तपस्या में भी गोचरी-पानी लाने का कार्य कर रहे हैं। वे तो कहते हैं कि मैं टाइम पास कर रहा हूँ, किंतु बहुत कठिन काम है, गोचरी-पानी के लिए जाना। नालें (सीढ़ियां) चढ़ना-उतरना। पाँव दुखने लगते हैं, किंतु यह बढ़िया है कि सारे कार्य करने से तपस्वी दूसरों पर बोझ रूप नहीं होता। सबसे बड़ी बात है कि अपना मन प्रसन्न होना चाहिए। अपना मन प्रसन्न है तो सब सही है। मन में उद्विग्नता हो तो कितनी ही तपस्या करें, घाटे का काम होगा। इसलिए मन की प्रसन्नता पहले जरूरी है। और भी महासतियां जी तपस्या कर रही हैं। भाई-बहनों में भी तपस्या चल रही है। भाइयों में आठ, नौ, दस, ग्यारह की तपस्या चल रही है। अब आगे जैसा होगा समय के साथ ज्ञात होगा। हम अपने मन को प्रसन्न रखने की तपस्या करें। यह तपस्या जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण होगी। उसे साधेंगे तो जीवन सधेगा, सुखी बनेंगे। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

08 जुलाई, 2023

7

अटकन टूटी भटकन छूटी

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

इन चार पदों में धर्म के सम्बन्ध में निष्कर्ष दे दिया गया है। चर्चा वहीं से शुरू करते हैं कि गौतम स्वामी भगवान महावीर के चरण में उपस्थित होकर पूछते हैं- भगवन्! धर्म-श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

धर्म श्रद्धा का फल निरूपण करते हुए भगवान ने फरमाया कि वह जीव सुख-साता में रमण नहीं करता। उनसे विरक्त हो जाता है। गृहस्थ अवस्था में रहना उसे सुहाता नहीं है। वह साधु बन जाता है और साधु बनकर तन-मन के दु:ख का छेदन करता है। वह अव्यावाध सुख का संवेदन करने वाला बन जाता है। यह कड़ी किस प्रकार से बनती है, किस प्रकार से ऐसा होता है इस पर अपन कुछ विचार करना चाहेंगे।

उल्टी नौका सीधी होती,
अन्तर ज्योति विकसित होती।
अटकन टूटी भटकन छूटी,
धर्म देव से पी ली घूंटी।।

नौका सही दिशा में चले, नदी के प्रवाह में चले तो सागर में चली जाएगी। मंजिल प्राप्त करा नहीं पाएगी। हम भी अनादिकाल से पाँच इंद्रिय-विषयों के प्रवाह में बह रहे हैं। श्रोतेंद्रिय को कुछ शब्द सुनने बड़े मधुर लगते हैं। उसका आकर्षण मधुर शब्दों की ओर होता है। आँखों को रूप-रंग सुहाता है। नासिका को गंध प्रिय लगती है। रसना द्वारा स्वाद लिया जाता है और त्वचा द्वारा स्पर्श का अनुभव किया जाता है।

इन पाँच इंद्रिय-विषयों में जिंदगी बहती जा रही है। मन को गंध अच्छी चाहिए, स्वाद अच्छा चाहिए, रूप-रंग सुंदर चाहिए। स्पर्श कभी शीतल तो कभी ऊष्ण चाहिए। कभी कोई स्पर्श सुहाला, अच्छा लगता है तो कभी कोई अन्य स्पर्श।

पाँच इंद्रियों के विषय हमारे मन को प्रभावित करते हैं। मन को आकर्षित करते हैं। मन भी अनुकूलता की ओर दौड़ लगाता रहता है। नदी के प्रवाह की तरह उसे बहने में कठिनाई नहीं होती। प्रवाह में मुर्दा भी बहता है, जड़ पदार्थ भी बह सकता है और बहता-बहता समुद्र तक पहुँच सकता है। हम भी यदि उसकी तरह बहाव में बहते रहेंगे तो संसार-सागर से उपरत नहीं हो पाएंगे। संसार रूपी समुद्र में गोते खाते रहेंगे।

अब तक हमने यही काम किया है। अब भी यदि नहीं संभले तो वही दशा मिलने वाली है जो अब तक बनी रही है। धर्म श्रद्धा होने पर उलटी नौका सीधी हो जाती है। प्रवाह की दिशा में चलने वाला मन मुड़ जाता है। धर्म श्रद्धा होने पर वह सोचता है कि मुझे इस रास्ते पर नहीं जाना है।

महासती श्री सुवर्णा श्री जी म.सा. बोल गई कि यात्री उलटी दिशा में गया तो रोने लगा। धर्म श्रद्धा वाला व्यक्ति कभी रोएगा नहीं, वह सावधान हो जाएगा। उलटी दिशा में चलने वाले को जब ज्ञान हो जाए कि यह दिशा सही नहीं है तो वह सही दिशा में आगे बढ़ने का लक्ष्य बनाएगा। ऐसा नहीं सोचेगा कि इतना चल गया तो और चल लेता हूँ। यह नहीं सोचेगा कि इतनी दूर चला आया तो अब वापस क्या मुड़ना! और आगे बढ़ जाऊँ।

उलटी दिशा में आगे बढ़ने से किनारा मिलने वाला नहीं है। किनारे के लिए रिवर्स होना पड़ेगा। वापस लौटना पड़ेगा। अनादिकाल से चल रहे प्रवाह से निकलना पड़ेगा।

उसके लिए सरल तरीका भगवान ने बताया- धर्म श्रद्धा। धर्म क्रिया करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात है धर्म श्रद्धा।

एक व्यक्ति सिंह को जानता है, पहचानता है। उसने सिंह को देखा और सावधान हो गया। एक दूसरे व्यक्ति ने सिंह को देखा नहीं है। उसने उसके आकार-प्रकार का ज्ञान किया। एक बार बिल्ली को देखकर वह समझ गया कि मेरे सामने सिंह आ गया। अनजान अवस्था में ऐसा ही होता है, इसलिए भगवान कहते हैं-

''पढमं नाणं तओ दया''

अर्थात् पहले धर्म का ज्ञान करो, धर्म का बोध प्राप्त करो।

धर्म क्या है?

अपनी पहचान धर्म है। जब अपनी पहचान होकर उस पर आस्था होगी तो वही आस्था धर्म पर होगी, तब उसे सहसा कोई विचलित नहीं कर पाएगा। इसे हम उलटी नौका सीधी होना कहते हैं। इसके साथ एक खास बात और होगी, वह यह कि अटकन टूट जाएगी, भटकन छूट जाएगी। जैसे ही अटकन टूटेगी हमारे संसार की भटकन दूर हो जाएगी। यदि निश्चय नय की दृष्टि से विचार करें, तो राग-द्वेष की ग्रंथि, राग-द्वेष की अर्गला जब तक नहीं टूटेगी, जब तक नहीं हटेगी तब तक भीतरी अटकन टूटने वाली नहीं है। अनादिकाल से संसार में रहने का कारण राग-द्वेष की अटकन ही है।

राग-द्वेष की निबिड़ ग्रंथि, बड़ी गहरी गाँठ हमारे भीतर पड़ी हुई है। उसको अब तक तोड़ा नहीं, हटाया नहीं, इसलिए संसार में भ्रमण हो रहा है।

मोहनीय कर्म की स्थिति (उत्कृष्ट) 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की है। ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30-30 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है। उक्त कर्मों की स्थिति को जीव घटाते-घटाते जब कोड़ा-कोड़ी के भीतर ले आता है, तब जीव के उन अध्यवसाय विशेष को यथा प्रवृत्तिकरण की संज्ञा दी गई है।

मेरी बात ध्यान में लेना, बहुत गहरी बात है। 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम। करोड़ से करोड़ को गुणा करेंगे तो एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम होगा। उसे 70 से गुणित करेंगे तब होगा 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम। इतनी स्थिति होती है मोह कर्म की। अर्थात् मोह कर्म इतने लंबे समय तक आत्मा के साथ बना रहेगा। (मैं सागरोपम की व्याख्या अभी नहीं कर रहा हूँ) ऐसे ही ज्ञानावरणीय आदि तीन घाती कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति 30-30 कोड़ा-कोड़ी सागर की होती है। उक्त स्थिति को घटाते-घटाते जीव जब अंत: कोड़ा-कोड़ी में ले आता है, यानी एक कोड़ा-कोड़ी के भीतर की स्थिति में ले आता है, उस अवस्था को यथा प्रवृत्तिकरण कहते हैं। ऐसा उसने एक बार नहीं, अनेक बार किया, किंतु इससे उसका काम नहीं सरा। वह उससे और आगे नहीं बढ़ पाया। वापस संसार में गोते लगाने लगा। फिर कर्मों की स्थिति को दीर्घ बनाने लगा।

कभी-कभी उत्साह जगता है, अपूर्व वीर्योल्लास जगता है उस समय जीव का पुरुषार्थ सक्रिय हो जाता है। जब ऐसी सक्रियता आती है तब वह हिम्मत करके राग-द्वेष की निबिड़ ग्रंथि को काट देता है। (जैसे कश्मीर से अनुच्छेद 370 को हटाया गया) जैसे ही राग-द्वेष की ग्रंथि हटती है, जीव का वीर्योल्लास और तीव्र हो जाता है। इस अवस्था का नाम है अपूर्वकरण।

अपूर्वकरण का अर्थ क्या होता है?

करण का मतलब है माध्यम। जिसके माध्यम से साध्य को साधा जाता है। ऐसा उल्लास, ऐसा उत्साह जो अनादिकाल से पहली बार जीव में जगा और उसने राग-द्वेष की ग्रंथि को तोड़ डाला। जैसे अभिमन्यु ने चक्रव्यूह का भेदन कर दिया। यह बात अलग है कि वह बाहर निकलने में समर्थ नहीं हो पाया। हम भी इस संसार रूपी मोह के चक्रव्यूह का भेदन करने में तब समर्थ होते हैं, जब अपूर्वकरण पैदा होता है। जब अपूर्व उल्लास पैदा होता है।

यहाँ पर दो स्थितियाँ बनती हैं। शास्त्र की दृष्टि से, सिद्धांत की दृष्टि से वहीं पर जीव को क्षयोपशम समकित प्राप्त हो जाती है, वहीं पर धर्म श्रद्धा व्यक्त हो जाती है। धर्म के प्रति श्रद्धा बन जाती है। कर्म सिद्धांत की दृष्टि से उसको आगे अनिवृत्तिकरण करना होगा। अनिवृत्तिकरण के बीच अंतरकरण करता है। अंतरकरण करते हुए जीव अनिवृत्तिकरण के बाद में उदय आने योग्य दलिकों में से कुछ को अनिवृत्तिकरण के शेष काम में प्रक्षेप कर देता है और कुछ दलिकों को बाद में उदय आने योग्य कर देता है, इस तरह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल मोह रहित हो जाता है, जिसे उपशांत अद्धा कहते हैं। उपशांत अद्धा के पूर्व की स्थिति को प्रथम स्थिति व बाद की स्थिति को द्वितीय स्थिति कहते हैं। प्रथम स्थिति के दलिकों को वह भोग कर क्षय कर देता है। द्वितीय स्थिति का वर्तमान में उदय हो नहीं रहा है अत: बीच का समय उपशान्त होता है। उस समय दर्शन मोह कर्म के दलिकों का उदय नहीं होता। परिणामस्वरूप वह समय उपशम सम्यक्त्व का होता है। यह एकदम शांत-प्रशांत अवस्था है। जैसे यमुना का पानी शांत रहता है, किसी जलाशय का पानी शांत रहता है, वैसा ही उसका अंत:करण शांत बन जाता है। किंतु यह स्थिति लम्बे समय तक रह नहीं पाती है।

अब उसके सामने तीन अवस्थाएं होती हैं; मिथ्यात्व की अवस्था,

सम्यक्त्व की अवस्था और सम्यक् मिथ्या मोहनीय की अवस्था। यदि मोह कर्मों का झोंका तेज आ गया तो व्यक्ति वापस मिथ्यात्व में चला जाता है। जहाँ से आया वहीं लौट जाता है। जहाँ से निकला वहीं पर वापस घुस जाता है।

यदि सम्यक्त्व की अवस्था में प्रवेश करता है तो सम्यक्त्व-मोहनीय का उदय होता है और उसे आत्मा का श्रद्धान बना रहता है।

किसी अलमारी में पुस्तकें रखी हुई हैं। शास्त्र रखे हुए हैं। हमने सुना कि उसमें शास्त्र रखे हुए हैं, किंतु दिखता नहीं है, क्योंकि उसमें लकड़ी का दरवाजा है। उस अलमारी में कौन-से शास्त्र रखे हुए हैं, कौन-सी पुस्तकें रखी हुई हैं वह ज्ञात नहीं हो पाता। एक और अलमारी में भी वैसे ग्रंथ भरे हुए हैं। उस पर कपड़े का पर्दा लगा हुआ है। वह पर्दा कभी हिलता है तो भीतर की थोड़ी झलक मिलती है। कौन-से ग्रंथ पड़े हैं साफ नहीं दिखता, किंतु झलक मिलती है कि ग्रंथ है। एक तीसरी अलमारी और है, उसमें भी शास्त्र भरे हुए हैं। उसका कपाट काँच का है, पारदर्शी है। उसके भीतर रखा हुआ एक-एक आगम, एक-एक शास्त्र, एक-एक पुस्तक बाहर से दिख रही। दिख रहा है कि स्थानांग सूत्र है, आचारांग सूत्र है, उत्तराध्ययन सूत्र है। उसके भीतर पड़े शास्त्र बहुत स्पष्ट दिख रहे हैं, किंतु कोई हाथ डालकर निकालना चाहे तो निकाल नहीं पाएगा।

क्यों नहीं निकाल पाएगा?

(श्रोतागण बोले- काँच का दरवाजा लगा हुआ है, इसलिए नहीं निकाल पाएगा)

काँच का दरवाजा लगा हुआ है, इसलिए निकाल नहीं पाएगा, पर उसके भीतर की चीजें ज्ञात हो रही हैं।

ऐसा ही सम्यक्त्व-मोहनीय है। उससे हमें आत्मा की अनुभूति होती है, उसका संवेदन होता है, किंतु हम उससे एकदम एकमेक नहीं हो पाते। पूर्ण रूप से हस्तगत नहीं कर पाते। संवेदन होता है कि मैं आत्मा हूँ। ऐसी अनुभूति होती है, किंतु क्षायिक समकित में जैसा अवबोध होता है वैसा नहीं हो पाता।

जिस समय काँच का दरवाजा भी हट जाए, अलमारी खुल जाए, उस समय उसमें से ग्रंथों को आसानी से निकाला जा सकता है। वैसे ही क्षायिक समकित हो जाने पर आत्मा की स्पष्टता हो पाती है। यह है राग-द्वेष रूपी ग्रंथि को भेदन।

इस प्रकार राग-द्वेष रूपी निबिड़ ग्रंथि रूप अटकन टूटे तो समझ लें कि संसार की भटकन छूट गई। मोक्ष का रिजर्वेशन हो गया। मोक्ष फाइनल हो गया। कितने समय बाद मोक्ष होगा यह बात अलग है, किंतु यह निश्चित है कि वह जीव मोक्ष में जाएगा। कोई अनंतकाल भी संसार में निकाल सकता है तो कोई थोड़े काल में भी मोक्ष जा सकता है।

मेघकुमार ने हाथी के भव में प्राणभूत जीव सत्व की रक्षा की। उससे उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। वह मरकर राजकुमार के रूप में जन्मा, वहाँ उसने साधु जीवन स्वीकार कर साधना की और अनुत्तर विमान में देव रूप से जन्म प्राप्त करता है। इसके बाद मनुष्य जन्म को प्राप्त करके मोक्ष में जाएगा। मतलब थोड़े समय में मोक्ष चला जाएगा।

सुबाहु कुमार के प्रकरण की बात हम सुन रहे हैं। सुमुख गाथापति के भव में उसने सुपात्र दान दिया, जिससे मोक्षगामी बना। पंद्रह भव करके वह मोक्ष चला जाएगा। मोक्ष जाने का बहुत सुगम रास्ता है सुपात्र दान।

सीमंधर स्वामी, मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए...

क्या बात कही गयी है?

सीमंधर स्वामी से क्या निवेदन किया गया है?

सीमंधर स्वामी से कहा गया कि मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए। सर्टिफिकेट दीजिए। सर्टिफिकेट होगा तो कोई रोकेगा नहीं।

एक देश से दूसरे देश में, एक प्रांत से दूसरे प्रांत में माल जाता है। पास में प्रमाण-पत्र है, सर्टिफिकेट है तो चेक-पोस्ट आने पर कोई दिक्कत नहीं होगी। कच्चा काम होगा तो चेक-पोस्ट पर रोक दिया जाएगा।

सीमंधर स्वामी से मुक्ति जाने की डिग्री देने का निवेदन किया गया तो मानो सीमंधर स्वामी कहते हैं-

'सुपात्र दान से मुक्ति जाने की डिग्री पाइए...'

स्पष्ट है कि सुपात्र दान देने से मोक्ष की डिग्री प्राप्त की जा सकती है। मुक्ति का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया जात सकता है।

भगवान महावीर स्वामी को यह प्रमाण-पत्र नयसार के भव में प्राप्त हुआ। क्या नियम था नयसार का?

नयसार लकड़ी का काम करने वाला एक कारीगर था। उसका नियम

था कि किसी को दिए बिना भोजन नहीं करना। किसी अतिथि को खिला-पिलाकर भोजन करना। एक बार वह जंगल में लकड़ी लेने के लिए गया हुआ था। फर्नीचर के लिए लकड़ी लाने जंगल गया हुआ था। भोजन का समय निकल रहा था और उसे जंगल में कोई अतिथि नजर नहीं आ रहा था। उसको भूख लग रही थी। थोड़े समय के बाद एक साधु मिला तो उसने बड़े अहोभाव से निवेदन किया, म.सा. कृपा कीजिए।

साधु ने गोचरी-पानी लिया। सुपात्र दान का उसको योग बना और उसने सुपात्र दान से मुक्ति जाने का रास्ता तय कर लिया। उसे मोक्ष जाने की डिग्री प्राप्त हो गयी। यह बात अलग है कि बीच में बहुत सारा समय निकला, मोक्ष बहुत जल्दी नहीं हो पाया। उसका कारण है कि वह एक बार डिग्री लेकर भूल गया।

उसने वह डिग्री कहाँ रख दी? यों समझें कि वह खो गई।

जब डिग्री पास में नहीं होगी तो कैसे जाएगा मोक्ष?

बीच में वापस मिथ्यात्व का उदय हो गया था, मिथ्यात्व में जाना हो गया, इसलिए अधिक समय लगा। क्षायिक समकित हो जाए तो कितने भव में मोक्ष हो जाएगा?

यदि आयुष्य कर्म का बँध नहीं हुआ हो तो उसी भव में मोक्ष होगा? यदि बँध हो गया होगा तो तीसरा मनुष्य भव नहीं टालेगा। दूसरे मनुष्य भव में भी मोक्ष जा सकता है, किंतु अधिक हो तो तीसरे मनुष्य भव में तो मोक्ष हो ही जाएगा।

यह ताकत किसमें है?

यह ताकत है सुपात्र दान में।

यह शक्ति है क्षायिक समकित में।

किंतु सुपात्र दान कैसा होना चाहिए।

'दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहग सुद्धेणं...'

अर्थात् दिया जाने वाला द्रव्य शुद्ध होना चाहिए। जो गोचरी-पानी बहराया जाए वह शुद्ध होना चाहिए। अशुद्ध गोचरी हमने बहुत बार बहराई होगी, किंतु वह कारगर नहीं हो पाई। नकली चाबी से भी कभी ताला खुल जाए यह बात अलग है, किंतु नकली चाबी से ताला खुलने का काम नहीं

होता। काम होता है असली चाबी से। नकली रुपया कहीं चल जाए तो बात अलग है, किंतु पकड़ में आ जाए तो सीधे जेल है।

एक गरीब व्यक्ति ने कहीं से सामान खरीदा। उसको एक चवन्नी वापस मिली। वह चवन्नी खोटी थी। वह बड़ा परेशान हो गया कि क्या करूँ। उसने सोचा कि मैं चवन्नी का घाटा क्यों खाऊँ। उसने विचार किया कि इस चवन्नी को कहीं चलाना है। वह चवन्नी चलाने की कोशिश करने लगा। उसने देखा कि एक दुकानदार अभी व्यस्त है तो उससे कहा कि मुझे चवन्नी की अमुक चीज दीजिए। दुकानदार ने चवन्नी ली और गल्ले में डाल दी। वह आदमी सामान लेकर मस्ती से दौड़ते हुए जोर-जोर से बोलने लगा, चल गई रे, चल गई रे... चल गई रे...

उसकी आवाज सुनकर लोग अपनी-अपनी दुकानों पर शटर लगाने लगे कि कहाँ गोली चल गई? कहाँ दो समुदायों में झगड़ा हो गया? किस मोहल्ले में झगड़ा हो गया? पुलिस की गाड़ियाँ भी उधर से इधर दौड़ने लगी। वह चल गई रे, चल गई रे कहता हुआ जा रहा था। पुलिस वालों ने उसे रोका और कहा, किस मोहल्ले में गोलियाँ चल गईं?

उसने कहा, हुजूर! मुझे पता नहीं, मेरी खोटी चवन्नी चल गई इसलिए मैं बोल रहा हूँ कि चल गई रे, चल गई रे।

खोटी चवन्नी चल जाने पर बहुत हर्ष हुआ उसको। उसने सोचा मैंने विजय प्राप्त कर ली। उसी प्रकार से जिस दिन हमारी खोटी आत्मा मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ हो जाएगी, उसका हर्षोल्लास कहना ही क्या! हम अब तक सोए रह गए। कोई बात नहीं-

'जब जागो तभी सवेरा'

अभी विचार कर लें कि अब मुझे गलत रास्ते पर आगे नहीं बढ़ना। जितना बढ़ गया, बढ़ गया, अब एक कदम भी उस रास्ते पर आगे नहीं बढ़ाना। सही रास्ते पर आगे बढ़ना है। वापस होंगे तो सही रास्ते पर लौटेंगे। सही रास्ता मिल जाएगा तो जितना हर्ष होगा, जितनी खुशी होगी, उसका कोई पार नहीं रहेगा। लगेगा कि अब मेरी भटकन छूट गई। अब मुझे सही रास्ता मिल गया। यह रास्ता राजमार्ग है। इस पर सीधे चलना है। किसी दूसरी सड़क पर नहीं मुड़ना है। यह सड़क गंतव्य तक पहुँचाएगी।

हमने कौन-सी सड़क पकड़ रखी है?

शिव सुख पाना हो तो प्यारे त्यागी बनो, प्यारे त्यागी बनो।

त्याग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं। ये मोक्ष का रोड है। इस पर चलते रहो, चलते रहो, चलते रहो। इस पर चलते समय यदि बीच में इधर-उधर गलियों में घुस गए तो यह मार्ग छूट जाएगा। बताने वाले ने बताया कि भाई! एकदम सीधे जाना, कहीं बीच में मुड़ना नहीं पर हम मुड़कर दूसरी ओर चले जाएं और बताने वाले को बोलें कि उसने मुझे गलत रास्ता बता दिया तो दोष किसका है? दोष हमारा है या बताने वाले का?

(श्रोतागण बोले- दोष हमारा ही है)

उसने पहले ही कहा कि दूसरी गलियों में मत घुसना।

दूसरी गलियाँ कौन-सी हैं?

दूसरी गलियाँ हैं मन को आकर्षित करने वाले पाँच इंद्रियों के विषय जो हमें इधर-उधर भटकाएंगे।

गुरुदेव दो मित्रों का एक आख्यान फरमाया करते थे। एक बार दोनों मित्र कठिनाई में आ गए। उन्होंने सोचा कि यहाँ पर रहना ठीक नहीं है, लोगों की नजरों से गिरकर जीना उचित नहीं है इसलिए पुरुषार्थ करना चाहिए। दोनों ही अपना भाग्य आजमाने के लिए कहीं और चले। उन्होंने सोचा कि कमाई करके वापस लौटेंगे। दोनों चले। चलते-चलते शाम हो गई। वे थक गए। उन्हें टिमटिमाता दीपक नजर आया। दीपक देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि यहाँ झोंपड़ी होगी। दोनों वहाँ पहुँचे।

वहाँ एक त्यागी महात्मा/योगी साधना कर रहा था। दोनों ने उसको प्रणाम किया। योगी की आँख खुली और कहा- मित्रो! लगता है तुम बहुत थके हुए हो। तुम्हारे चेहरे से लग रहा है कि तुम भूखे-प्यासे भी हो। योगी ने कहा कि मेरे पास भक्तों के यहाँ से आई हुई रोटी पड़ी है, तुम खा लो। वे रोटी खाते हैं, पानी पीते हैं। उसके बाद योगी के समीप बैठे। फिर योगी जी ने कहा, मुझे लगता है कि तुम लोग धन के चक्कर में घूम रहे हो। परेशानी से परेशान हो। दोनों ने योगी के पैर पकड़कर कहा, स्वामी जी! आप तो प्रत्यक्षद्रष्टा हैं, ज्ञानी हैं, कठिनाई को जानने वाले हैं। आपने हमारी सही स्थिति को जान लिया है। आप कृपा कीजिए।

योगी ने कहा कि मेरे पास दो टॉर्च हैं, एक-एक टार्च दोनों ले लो और यहाँ से उत्तर दिशा में जाओ। उस दिशा में एक जंगल आएगा। योगी ने कहा कि ध्यान रखना, इधर-उधर मत देखना। सीधे रास्ते से जाना, आगे रत्नों की खदान मिलेगी। उस खदान से तुम जितना चाहे रत्न ले लेना। जितना चाहो झोली भर लेना। योगी ने पुन: ध्यान दिलाया कि इस टॉर्च का प्रयोग इधर-उधर देखने में मत करना। टॉर्च को इधर-उधर देखने में खर्च करोगे और टॉर्च की लाइट बीच में समाप्त हो गई तो तुम जंगल में भटक जाओगे। इधर-उधर कई चमकीली गलियां होंगी। सोने-चाँदी की परतें मिलेंगी, किंतु भूलकर भी उस ओर जाना मत, सीधे जाना।

दोनों को टॉर्च दे दी गई। एक मित्र थोड़ा चंचल स्वभाव का था। वह सीधा देखने के बजाय इधर-उधर देखने लगा। वह थोड़ा आगे बढ़ा तो उसे सोने-चाँदी की पहाड़ियाँ नजर आईं। वह उन पहाड़ियों की ओर जाने लगा तो दूसरे मित्र ने कहा, भाई! योगी जी ने हमें साफ मना किया है कि इधर-उधर मत जाना, फिर तुम इधर-उधर क्यों जा रहे हो? उसने कहा, अरे! तुम नहीं जानते, वह आदमी धोखा देने वाला होगा। मैं तो इधर ही जाऊँगा। वह उधर गया।

दूसरा मित्र टॉर्च जलाते हुए सही रास्ते पर चलता रहा। चलते-चलते वह जंगल पार हुआ। उसको वहाँ पर रत्नों की खदान मिली। उसने कुछ महत्त्वपूर्ण कीमती रत्नों को लिया। उसने सोचा कि ज्यादा रत्न ग्रहण करूँगा तो भार बढ़ेगा। कीमती रत्न एक ही लाभ देने वाला होगा। उसने बेशकीमती रत्नों को चुना और वापस महात्मा जी के पास आ गया।

महात्मा जी के पास आकर उसने उनका आभार व्यक्त किया। महात्मा जी ने पूछा, तुम्हारा दूसरा मित्र कहाँ रह गया, वह अभी तक आया नहीं?

उसने कहा, मैंने उसको बहुत मना किया, किंतु वह माना नहीं, वह मुख्य मार्ग छोड़ गलियों में चला गया। पता नहीं कहाँ रह गया। महात्मा जी बोले, वह अब मिलने वाला नहीं है। वह भटक जाएगा, मिलेगा नहीं।

यह एक उदारण है। एक दृष्टांत है। हम भी आकर्षणों के प्रति इधर-उधर भटक जाते हैं। हमारा मन भी इधर-उधर भटक जाता है। हमने सही मार्ग को छोड़ दिया तो भटककर वापस संसार-सागर में गोते लगाएंगे। फिर किनारा

कब मिलेगा कहना मुश्किल है। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि रास्ता भटको मत। जो रास्ता दिखाया गया है वह लम्बा भी हो सकता है, किंतु तुमको उसी रास्ते पर चलना है। उसी राह पर चलते रहने से ज्ञान, दर्शन, चारित्र के रत्न मिल जाएंगे। उन रत्नों के प्रकाश से अपने गंतव्य मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे। शिव सुख की प्राप्ति कर लेंगे। यदि मन चंचल बना रहा तो वह भटकेगा। इसलिए अपने मन को चंचल नहीं होने दें। अपने मन पर नियंत्रण करें, मन को नियंत्रित करें। मन को नियंत्रित करेंगे तो जल्दी से भटकाव नहीं होगा। फिर नौका उलटी नहीं सीधी हो जाएगी और सीधी दिशा में गतिशील होते चले जाएंगे।

मुख्य बात है अटकन को तोड़ने की और अपनी चपलता, चंचलता को हटाने की। राग-द्वेष की ग्रंथि का भेदन करने की। जब उसका भेदन हो जाएगा तो केवल सावधान होकर चलने की आवश्यकता होगी। लापरवाह होंगे तो कहाँ-कहाँ ठोकर खाएंगे, पता ही नहीं चलेगा। हमें ठोकर नहीं लगें इसलिए सावधान होकर चलना है। ताकि पाँच इंद्रियों के विषय हमें अपने वश में न कर सकें।

पाँच इंद्रियों के विषय हमें लोभी बनाते हैं। हमारे मन को आकर्षित करते हैं। हम इनके पीछे भागते हैं, भटकते हैं। हमारी नीयत भटकने की होगी तो हम इनके पीछे भटकते फिरेंगे। उस स्थिति में खाना-पीना, मौज उड़ाना ही काम रह जाएगा। हम सोचेंगे कि यही हमारे जीवन का लक्ष्य है। इसी लक्ष्य से यानी बढ़िया खाने-पीने के लिए यदि कोई साधु बन जाए और सोचने लगे कि अब हमें मोक्ष हो जाएगा तो ध्यान रखना ऐसे साधु बनने मात्र से मोक्ष नहीं मिलेगा।

शास्त्रकारों की बात पर विचार करें तो हमने पिछले जन्मों में साधु जीवन की जितनी पोशाकें पहनी हैं, उन सबको इकट्ठा किया जाए तो मेरु पर्वत जैसे कई ढेर लग जाएंगे। पिछले जन्मों में हम कई बार साधु बने किंतु साधु हो नहीं पाए। जिस दिन हमारी आत्मा साधु हो जाएगी, वह दिन कल्याणकारी होगा। वह दिन हमारे कल्याण का दिन होगा। आत्मा साधु होने का मतलब है कि इंद्रियों के विषय में उलझे नहीं, अपने मस्तिष्क को सुलझा हुआ रखे। कोई भी स्वाद प्रभावित करने वाला नहीं बने। आँखों के विषय आकर्षित करने वाले नहीं हों। पाँचों इंद्रियों पर अपना नियंत्रण रखें और अपनी मंजिल को प्राप्त करें।

इसके लिए यह भी जरूरी है कि धर्म देव से घूँटी पी लें अर्थात् उनके सदुपदेश को आत्मसात कर लें।

हम सुनंदा की बात सुन रहे हैं–

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार,
तीन योग है हेतु उसके, नहीं तो केतु लगता उसके
वातावरण अनुकूल, भविकजन...
आनुवांशिक संस्कार अपने, पूरण होते उसके सपने
छिपा गुदड़ी लाल, भविकजन...

संस्कारों के विकास के लिए तीन योगों की आवश्यकता बताई गई है। वातावरण, आनुवांशिकी और अपने पूर्व संस्कार। हमने जैसे संस्कारों में अपने आपको ढाला है, हमारा कार्य उन्हीं संस्कारों से सृजित होता है। संस्कार ही उसमें मुख्य होते हैं।

भगवान महावीर का जीव अशुभ कर्मों के कारण से देवानंद ब्राह्मणी की कुक्षि में गया। इंद्र को जब ज्ञात हुआ तब उसने विचार किया कि अनादिकाल में ऐसा प्रसंग कभी-कभार ही होता है, किंतु उस योनि से उसका जन्म नहीं होता। उन्होंने अपने सेनापति को आदेश देकर उस गर्भ को, भ्रूण को त्रिशला जी के गर्भ में स्थापित कराया। क्योंकि वैसी आनुवांशिकता और वातावरण ब्राह्मण कुल में नहीं मिल पाता। वह क्षत्रिय कुल में ही मिल सकता है। क्षत्रिय में स्वाभाविक रूप से उदारता होती है। तीर्थंकरों में उदारता होनी बहुत जरूरी है। ये आनुवांशिक संस्कार वहीं से मिल पाएंगे और वातावरण कैसा मिलना चाहिए? शहरों का माहौल वर्तमान में उलटा हो गया है।

पहले गाँवों में एक-एक कौम के मोहल्ले अलग-अलग हुआ करते थे। ओसवालों का मोहल्ला, अग्रवालों का मोहल्ला, ब्राह्मणों का मोहल्ला, माहेश्वरियों का मोहल्ला, चारणों का मोहल्ला। सबके अलग-अलग मोहल्ले हुआ करते थे। अब बड़े शहरों में आकर बस गए। शहरों में फ्लैट सिस्टम से रह रहे हैं। वहाँ आस-पास कौन है, कैसा है, उससे कोई मतलब नहीं है। आस-पास के लोगों से कोई लेना-देना नहीं है। पड़ोसी का खानदान क्या है, उनका रहन-सहन कैसा है, उससे कोई मतलब नहीं है। ऐसे वातावरण में बच्चों में संस्कार कैसे आएंगे।

'जैसी संगत-वैसी रंगत'

ऐसा माना गया है कि कोई विरला पुरुष ही संगत के प्रभाव में नहीं आता अन्यथा अधिकांश लोगों पर संगति का प्रभाव पड़ जाता है। जैसी संगति होती है, आदमी वैसा ही ढल जाता है। यही कारण है कि आज जैनों पर प्रश्नवाचक चिह्न लगने लगे हैं।

एक व्यक्ति ने बताया कि उसे लड़की की शादी करनी थी। उसने लड़के की खोज की। उसने एजूकेटेड परिवार से बात की। जिस लड़के से शादी की बात हुई उसने कहा कि मैं ड्रिंक करता हूँ। उसने कहा कि लड़की ड्रिंक करे तो उसकी मर्जी, मेरी तरफ से मना नहीं है और नहीं करे तो भी कोई बात नहीं है, किंतु मैं ड्रिंक करता हूँ और करूंगा।

उसने ऐसे कई परिवारों को देखा। वह सोचने लगा कि क्या करूँ! आजकल लोग सोचते हैं कि शराब पीना कॉमन बात है। जौ का पानी ही तो है। ऐसा सोचने के पीछे कारण क्या है? आनुवांशिक गड़बड़ी है या वातावरण प्रभावित करने वाला बन गया। लोग बोलते हैं हमारी बैठक ऊँचे लोगों के साथ होती है।

'ऊँचे लोगों की ऊँची पहचान'

शराबी की क्या पहचान होगी? ऊँचे लोगों के साथ शराब पीने से पहचान ऊँची हो जाएगी क्या? शराबियों के साथ शराब पीने से ऊँची पहचान होगी या सामायिक करने से होगी?

(श्रोतागण बोले- सामायिक करने से होगी)

सामायिक करने वाला भी शराब पी लेगा तो...

सामायिक करने वाला शराब शायद न पीए, किंतु शराब पीने वाला सामायिक कर लेता है। वह सोचता है कि लोगों को दिखे कि वह सामायिक कर रहा है, प्रतिक्रमण कर रहा है। इसलिए सामायिक कर लेता हूँ, प्रतिक्रमण कर लेता हूँ। शराब पीने वाला भी सामायिक-प्रतिक्रमण कर लेता है। किसी ने कहा, मिच्छा मि दुक्कडं तो उसने भी कह दिया मिच्छा मि दुक्कडं लेकिन कहने से भीतर कितना मिच्छामि दुक्कड़ं आया? यह चिंतनीय है।

सुनंदा के अपने एवं जन्म के संस्कार अनुकूल थे। आनुवांशिकता उसको सही संस्कार देने वाला बना। उसको वातावरण भी वैसा ही मिला। घर-परिवार, पड़ोसियों का वातावरण अच्छा मिला।

लोग कहते हैं कि यदि किसी आदमी की जानकारी करनी हो तो उसके पड़ोसी की जानकारी कर लो या पता कर लो कि वह कैसे लोगों के बीच बैठता है। इससे पता चल जाएगा कि व्यक्ति कैसा है। यदि वह शराबियों के साथ बैठा रहता है तो उसके हाल भी वही हैं। सही व्यक्तियों के साथ बैठा है तो भी उसकी हकीकत पता चल जाएगी कि कैसा आदमी है।

तीन योग संस्कारित करने वाले होते हैं। तीन योग अनुकूल दशा बनाते हैं। सुंदर संस्कार पूरे परिवार को संस्कारित बनाता है। व्यक्ति के अपने पूर्व संस्कार सशक्त हैं तो वह दूसरों से जल्दी प्रभावित नहीं होगा। अन्यथा ज्यादातर लोग दूसरों से प्रभावित ज्यादा होते हैं।

खैर, सुनंदा को अनुकूल वातावरण मिला। आनुवांशिकी से संस्कार भी सही मिले इसलिए वह निरंतर सुंदर संस्कारों में ढलती गई।

'सुनंदा घर में शिक्षा पाती, संतन सेवा उसे सुहाती,
कभी न अवसर खोय, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...'

सुनंदा घर में शिक्षा पा रही थी। व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त कर रही थी। जीवन जीने का शिक्षण प्राप्त कर रही थी। व्यावहारिक अध्ययन कई बार लोगों के सिर पर चढ़ जाता है कि मैंने डॉक्ट्रेट की है। मैंने इंजीनियरिंग की है, मैंने एम.बी.ए. किया है। मैंने मैनेजमेंट का कोर्स किया है। उसने मैनेजमेंट का कोर्स किया होगा, किंतु यदि अपने जीवन का मैनेजमेंट नहीं किया तो बाहर की कितनी भी पढ़ाई किस काम की। जो अपने जीवन का मैनेजमेंट करने में समर्थ होता है, वह आगे बढ़ने में समर्थ होता है।

सुनंदा केवल डिग्री नहीं प्राप्त कर रही थी। वह यह सीख रही थी कि कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे सोना, बड़ों से कैसे बात करना, बड़ों के सामने कैसे प्रस्तुत होना। बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करना, छोटों के साथ कैसा व्यवहार करना। इस प्रकार वह लाइफ मैनेजमेंट का भी अध्ययन कर रही थी। योग बनते ही साधु-साध्वियों का सान्निध्य भी प्राप्त करती थी।

ऐसा नहीं सोचती कि कर लेंगे, अभी क्या जल्दी है। ऐसा सोचने में समय निकल जाता है और व्यक्ति संत सन्निधि से वंचित रह जाता है। वह साधु-साध्वियों की सन्निधि में रत हो उनसे आध्यात्मिक शिक्षण प्राप्त करती। ज्ञान-ध्यान में रुचि बढ़ाती।

लाइफ मैनेजमेंट सबके जीवन में होना चाहिए। सारे लोग दीक्षा लेने वाले नहीं होते, किंतु लाइफ मैनेजमेंट में जीने से आध्यात्मिक साधना होगी। जीवन में मैनेजमेंट होगा तो आदमी कठिनाइयों में भी घबराएगा नहीं।

आज ऐसे-ऐसे घटनाक्रम सुनने में आते हैं जिनसे पता लगता है कि लोगों में लाइफ मैनेजमेंट का अभाव है। निर्वाण मुनि जी म.सा. ने कई बातों की ओर इशारा किया। कुछ ही दिन पहले सुना कि एक विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो गया तो उसने आत्महत्या कर ली। आत्महत्या करने वाले छात्रों की बातें सुनने को मिलती हैं। दूसरी वजहों से भी आत्महत्या करने वाली बातें सुनने को मिलती हैं।

यह सुसंस्कारों का परिणाम है या कुसंस्कारों का?

(श्रोतागण बोले- कुसंस्कारों का परिणाम है)

आदमी सोचता है कि फाँसी लगा लेने से कठिनाइयों से बच जाऊंगा, समस्याओं से बच जाऊंगा किंतु आत्महत्या किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। ग्रंथकार ऐसा बताते हैं कि एक बार आत्महत्या करने वाले के भीतर अगले जन्मों में भी बार-बार आत्महत्या करने की सोच उभरती है और वह बार-बार आत्महत्या करता हुआ संसार में भम्रण करने वाला बनता है।

जिस कठिनाई से डरकर लोग आत्महत्या करते हैं, वह कठिनाई उन्होंने ही पैदा की है। कठिनाई से बाहर निकलने के लिए सहज भाव से जीने का अभ्यास करना चाहिए। जीवन को आध्यात्मिकता से सराबोर करना चाहिए। जीवन में आध्यात्मिकता होगी तो कठिनाइयों से घबराएंगे नहीं, बल्कि उनका मुकाबला करने का साहस होगा। हिम्मत बढ़ेगी।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल जी शर्मा, पहले एक टीचर थे। टीचर से राष्ट्रपति के पद पर गए। उनका कहना था कि जब तक हमारी शिक्षा में आत्मा और मन का समावेश नहीं होगा, तब तक हमारी शिक्षा-प्रणाली अधूरी रहेगी। पहले भारतीय शिक्षा-पद्धति में आत्मा और मन का अध्ययन कराया जाता था। मैकाले ने हमारे संस्कारों को बदलने के लिए, हमारा माइंड मोड़ने के लिए अर्थ प्रधान शिक्षा की शुरुआत की। उससे हमारी दृष्टि अध्यात्म से हटकर भौतिकता पर चली गई। रुपया प्रधान बन गया। हमें और कुछ नहीं दिख रहा है। केवल रुपया दिख रहा है। रुपया मिल जाए तो समझेंगे कि

परमात्मा मिल गए। गुरुदेव फरमाया करते थे–

''पैसो म्हारो परमेश्वर, लुगाई म्हारी गुरु
छोरा-छोरी सालगराम, सेवा यांरी करुं''

रुपया हो जाने पर लोग सोचते हैं कि अब धर्म-ध्यान क्यों करना? क्यों आत्मा-परमात्मा का विचार करना?

एक बात ध्यान में रखना, रुपयों से परमात्मा नहीं मिलेंगे। परमात्मा मिलेंगे अन्तर्भाव से। अन्तर्भाव नहीं होगा, पैसों के पीछे दौड़ते रहेंगे तो परमात्मा नहीं मिलेंगे। पैसा परेशानी देता है। पैसों की मानसिकता परेशानी देने वाली होती है। मेरे खयाल से हजार में से 999 लोग आकर कहेंगे कि म.सा. परेशानी बहुत है। बहुत परेशान हैं। यह परेशानी है, वह परेशानी है। पता नहीं कितनी परेशानी होगी।

किसको परेशानी नहीं है?

(श्रोतागण बोले- सबको परेशानी है)

परेशानी क्यों है?

परेशानी का कारण रुपया है। जब तक दिमाग में रुपया-रुपया चलता रहेगा, तब तक परेशान होते रहेंगे। जिस दिन आत्मा के अध्ययन की बात करेंगे उस दिन पैसे दोयम हो जाएंगे। जीवन व्यवहार में रुपयों की आवश्यकता हो सकती है, किंतु रुपये सिर पर हावी नहीं हों। पैसा परमात्मा नहीं है। जब तक पैसों का भाव हमारे साथ होगा तब तक परेशानी हमें परेशान करती जाएगी।

आते हैं सुनंदा की बात पर। सुनंदा अपने आपमें शिक्षा प्राप्त करती हुई, सुंदर संस्कारों से जीवन का सृजन कर रही थी। अब आगे उसका जीवन किस प्रकार क्या मोड़ लेता है और कैसे क्या स्थिति बनती है यह तो अपन समय पर विचार करेंगे। इतना निश्चित है कि धर्म हमारे में सही संस्कारों को सृजित करने वाला है। धर्म कठिनाइयों से बचने की बात नहीं कहता, अपितु वह शिक्षा देता है कि घबराओ मत, आगे बढ़ते जाओ। घबराओ मत, डटे रहो। एक गीत में कहा गया है–

धर्म पर डट जाना, है वीरों का काम...

अभी तो आपकी आवाज मुझ तक ही नहीं आ रही है।

(निर्वाण मुनि जी बोले- नाश्ता नहीं किया)

नाश्ता तो किया, किंतु ज्यादा कर लिया।

नाश्ता ज्यादा कर लिया, इसलिए आवाज नहीं आ रही है।

हमारे धर्म के साथ बहुत बड़ा धोखा हो गया। जिस कौम को यह धर्म मिला वह मूतकर तौलने का काम करती है। उसको पैसे में ही परमात्मा नजर आता है। क्षत्रिय कुल को यह धर्म प्राप्त था, वैसा ही बना रहता तो पता नहीं आज यह धर्म कहाँ होता? बाणियों के हाथ में धर्म आ गया तो उसे ताकड़ी पर रख दिया। इसलिए उसकी यह दशा बनी हुई है।

उत्साह मुनि जी म.सा. के विषय में आप सुन गए हैं। उनका विचार बना कि मुझे ऐसी वैसी मौत नहीं मरना, मुझे वीरों की मौत प्राप्त करनी है। जैसे हमारी सेना के जवान सोचते हैं कि मुझे शहीद होना है, वैसे ही उन्होंने हिम्मत की और जीवन की अंतिम अवस्था में संथारा-संलेखना के साथ साधु जीवन स्वीकार किया। जयप्रभ मुनि जी, अनन्य मुनि जी म.सा. उनकी सेवा में तल्लीन हैं। उनको पाथेय दे रहे हैं। धामणगाँव रेलवे के रहने वाले थे। वे दूसरा व तीसरा मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं।

इधर गगन मुनि जी म.सा. के आज 23 की, महासती श्री सुभग श्री जी म.सा. की 24 की व महासती खंतिप्रिया श्री जी म.सा. की आज 22 की तपस्या है। और भी कई महासतियों में तपस्या चल रही है। समय के साथ ज्ञात होगा। हम इनसे प्रेरणा लें, अपनी वीरता को, ओजस्विता को धारण करें। हमारे भीतर दीनता नहीं रहे। हम दीन नहीं, अदीन हैं। हमारा लक्ष्य वीरता की ओर अग्रसर होने का बने। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

9 जुलाई, 2023

8

धर्म श्रद्धा रण जय दिलाए

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धम्म सद्धा यानी धर्म के प्रति श्रद्धा। धर्म पर विश्वास। इतना गहरा विश्वास की धर्म ही श्रेष्ठ है।

''एस अट्ठे सेसे अनट्ठे''

यही अर्थ है, बाकी सब अनर्थ है। बाकी सब का कोई प्रयोजन नहीं है। एक मात्र धर्म श्रद्धा का प्रयोजन है। वही स्वीकार करने योग्य है। अन्य से कोई मतलब नहीं है। धर्म श्रद्धा पैदा होना बहुत दुष्कर है। बहुत कठिन है।

''अटकन टूटी, भटकन छूटी''

जब तक राग-द्वेष की अटकन पड़ी रहती है, तब तक व्यक्ति को धर्म श्रद्धा का बोध नहीं हो पाता। राग और द्वेष मोह कर्म का ही भेद है। इन्हें मोह कर्म की ही शक्ति प्राप्त है। मोह कर्म को पछाड़ना बहुत कठिन होता है।

शूरों में जो शूर सयाना, मोह भूप किसमें अनजाना।
एक धर्म से वह भय खाता, दूर भागता पास न आता।

शूर उसको कहते हैं जो युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाता। शूर को मरना कबूल होता है, किंतु पीठ दिखाना मंजूर नहीं। ऐसा ही शूर है मोह राजा। मोह भूप किसी से अनजाना नहीं है। प्राय: लोग जानते हैं। कहने की बात यह है कि मोह राजा हम पर राज कैसे कर रहा है। अनंतानंत आत्माओं पर उसका साम्राज्य चल रहा है।

एक जमाने में बादशाह अकबर भारत पर राज कर रहा था। उसकी

एक नीति थी– शक्तिशाली व्यक्तियों को ओहदा देना। उनको अपना बना लेना। वैसे राज्य संचालन के लिए चार नीतियाँ बताई गई हैं– साम, दाम, दंड और भेद।

साम यानी समझाना। समझाने से काम चलता है तो समझा लो। प्रेम से, मोहब्बत से यदि व्यक्ति समझ जाता है तो बहुत अच्छी बात। यदि नहीं समझे तो धन का प्रलोभन देना। धन के प्रलोभन का मतलब है कोई पद देना। सत्ता का कोई महकमा संभला देना। किसी–न–किसी प्रकार से उसके हाथ में धन पहुँचा देना, जिससे वह अपना बना रह जाए। उसकी आँखें उठ नहीं सकें। नीतिकारों ने बताया है कि चाँदी से मुँह बंद किया जा सकता है। यदि उसको धन दे दिया, पद दे दिया तो मुँह बंद हो जाएगा। बोलेगा नहीं। तीसरी बात बताई गई भेद। यदि पहले दो से नहीं समझ रहा है तो भेद नीति लागू करना। उसको दूसरों से अलग कर देना। तोड़ देना। आज के समय में राजनीति में ऐसे खेल आप बहुत देखते हैं, सुनते हैं, समझते हैं। कभी–कभी प्रश्न खड़ा होता है कि जनतंत्र ठीक है या राजतंत्र ठीक था?

ठीक तो कोई भी नहीं होगा। खरबूजे पर चाकू पड़े या खरबूजा चाकू पर पड़े, कटना किसको है?

(श्रोतागण बोले– खरबूजे को ही कटना है)

नीचे चाकू पड़ा है और ऊपर से खरबूजा पड़ेगा तो कौन कटेगा?

(श्रोतागण बोले– खरबूजा कटेगा)

नीचे खरबूजा पड़ा रहे और ऊपर से चाकू गिरे तो कौन कटेगा?

(श्रोतागण बोले– खरबूजा कटेगा)

इसी तरह जनतंत्र हो या राजतंत्र, पिसना जनता को ही है। एक बात जरूर समझ में आती है कि जब तक व्यक्ति समझने वाला नहीं हो जाए, सयाना नहीं हो जाए, तब तक उसके हाथ में कोई भी सत्ता न सौंपी जाए। यदि अपरिपक्व हाथों में सत्ता सौंपी जाती है तो वह सत्ता के साथ क्या खिलवाड़ करेगा कह नहीं सकते।

राजतंत्र में एक फायदा था। जो सही राजा होते थे, संवेदनशील राजा होते थे, वे प्रजा का हित चाहते थे। अधिकांश राजाओं का इतिहास ऐसी अवस्थाओं से भरा हुआ है। राम भी राजा बन रहे थे और राज्य छोड़कर चले

गए। हरिश्चंद्र राजा ने सत्य के लिए राज्य का त्याग कर दिया। ऐसे बहुत राजा हुए हैं। उन राजाओं का एक ही लक्ष्य था कि मेरी प्रजा को कोई असुविधा नहीं हो।

प्रजातंत्र तब सफल होता है जब जनता जान जाए कि राज्य-सत्ता मेरे हाथ में है। जहाँ यह सामर्थ्य पैदा नहीं होता, वहाँ का प्रजातंत्र वोट, नोट और सोट पर चलता है। प्रजातंत्र में वोट मिलना चाहिए। कैसे मिलेगा वोट? सुनने में आता है कि वोट मिलेगा नोट से। आप लोग भी अपरिचित नहीं होंगे।

मध्य प्रदेश सरकार ने क्या चला रखा है? कौन-सी योजना चला रखी है?

(श्रोतागण बोले- लाडली बहना योजना)

कब से लाडली हो गई बहनें?

चुनाव नजदीक आए तब बहनें लाडली हो गईं। चुनाव नजदीक आते ही धुआँधार घोषणाएं चालू हो जाती हैं। लोग समझते हैं कि यह चुनावी खेल है, फिर भी सब भूल-भुलाकर वही काम फिर कर लेते हैं। जैसे जल रही लाइट पर पतंगा झंपापांत करता है और बेहोश हो जाता है, नीचे गिर जाता है। होश में आने पर वह फिर वापस लाइट पर झंप मारता है और फिर गिरता है। फिर जाता है, फिर गिरता है। जैसे वह पतंगा लाइट पर झंपापात करता रहता है, वैसे ही जनता है। उस पर बार-बार चोट होती रहती है और वह सहती रहती है। नेता सोचते है नोट से काम चले तो चला लो, उससे काम नहीं चला तो सोट चला दो।

बंगाल के चुनाव किस रूप में सम्पन्न हुए, मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है। चुनाव भी ग्राम-पंचायत के थे, विधानसभा-लोकसभा के नहीं थे। जहाँ कल्चर में हिंसा आ जाती है वहाँ कानून एक तरफ पड़ा रह जाता है। कानून से बचने के सौ रास्ते हैं। जो कानून से बचने का रास्ता नहीं जानता वह तो कानून से बच नहीं पाएगा किंतु जो कानून से बचने की गलियाँ जानता है, वह किसी भी गली से निकल जाएगा। वह सुरक्षित रह जाएगा। अच्छा वकील होना चाहिए। दिमाग वाला वकील होना चाहिए। अच्छे दिमाग वाला वकील आपका रास्ता निकाल देगा। वकील को आपसे कोई लेना-देना नहीं है। वह अपना पैसा खड़ा करता है।

प्रजातंत्र की हालत अभी सम्यक् नहीं है क्योंकि लोग अभी समझ ही

नहीं पाए कि हमारे वोट की कीमत क्या है। लोगों को यह मतलब नहीं है कि चुनाव में कौन खड़ा हुआ है, कौन क्या करने वाला है। चुनाव लड़ने वाले छह महीने हाथ जोड़ते हैं, बाकी के साढ़े चार साल किसको हाथ जोड़ने पड़ते हैं?

(श्रोतागण बोले– हमें जोड़ने पड़ते हैं)

चुनाव के समय नेता आपके घर आते हैं फिर आपको उनके घर जाना पड़ेगा। आप उनके घर जाओगे तो बोला जाएगा कि अभी नो–एंट्री है, अभी प्रवेश निषेध है। आप मिलते भी होंगे, काम भी होता होगा, किंतु ऐसी बातें होती हैं। जब नोट और सोट से वोट मिलेगा तो सही नेतृत्व होना संदेह की बात होगी। मान लो कोई वोट में जीत भी गया पर उसमें राज्य संचालन की काबिलियत है या नहीं, पता नहीं है। पर जनमत है।

अल्पमत–बहुमत का मतलब क्या होता है? मत किसको ज्यादा मिलता है? मान लो चार पार्टियां खड़ी हुईं। चारों में एक ने बहुमत पा लिया। यदि हम सोचें कि एक को हटाकर तीनों एकमत हो जाएं तो किसका मत अधिक होगा? तो सरकार किसकी बनेगी? सौ में से तीस वोट पाने वाला जीत जाता है। उसमें यह नहीं देखा जाता कि 70 प्रतिशत उसको नहीं चाहते। वह सरकार बनाता है। फिर भी हमारी दृष्टि में बहुमत है।

खैर ये बातें अलग हैं। जिसका हमने नाम नहीं जाना, कभी देखा नहीं, कभी समझा नहीं, जाना नहीं, उसे वोट दिया जाता है। ऐसे में यह कहना मुश्किल है कि सही आदमी का चुनाव होगा। यदि सही आदमियों का ही चयन होता है तो प्रचार और प्रसार किसलिए करना?

राजाओं के समय में आनुवांशिक रूप से राजा बनते थे। आनुवांशिक रूप से सत्ता संचालन का अधिकार प्राप्त होता था। जैसे व्यापारी का बेटा व्यापार के गुर सीख लेता है, किसान का बेटा खेती के गुर सीख लेता है, वैसे ही राजा का पुत्र राज्य चलाना सीख लेता था। उसको ट्रेनिंग देने की आवश्यकता नहीं रहती। वर्तमान समय ट्रेनिंग का है। पहले ट्रेनिंग नहीं दी जाती थी। जैसे किसान का बेटा खेती का काम कर लेता, उसे ट्रेनिंग देने की आवश्यकता नहीं होती थी वैसे ही राजा का बेटा आनुवांशिक रूप से राजकीय गुर धीरे–धीरे समझ लेता था। जब उसको युवराज बनाया जाता और फिर राजा बनता तो वह समझ लेता कि मुझे किस तरह से राज्य का संचालन करना है।

कभी-कभी विपरीत बातें भी हो जाती थीं।

एक राजकुमार के पिता का असमय स्वर्गवास हो गया। राजकुमार छोटा ही था। छोटे का मतलब 20-25 की उम्र रही होगी। वह विशेष अनुभव प्राप्त नहीं कर पाया था। वह सम्राट बन गया। उसने सोचा कि मेरा कैबिनेट, मेरा मंत्रिमंडल युवाओं से जगमगाता होना चाहिए। उसने युवाओं को शामिल किया।

युवाओं के हाथ में सत्ता जाना बुरी बात नहीं है, किंतु उन्हें अनुभव कितना है, यह बात जरूर देखनी चाहिए। अनुभवी नहीं होंगे तो राज्य को संभालना आसान काम नहीं है। बहुत टेढ़ी खीर है। कुछ दिनों तक सब ठीक चलना रहा। बढ़-चढ़कर राजा की विरदावलियां गाई जाती रहीं। राजा चापलूसों के बीच फँस गया। पर राजा भी खुश, मंत्रिमंडल भी खुश। एक दिन अचानक एक समस्या आ गई। उसका समाधान मंत्रिमंडल का कोई सदस्य कर नहीं पाया। अंत: पूर्व के दीवान जी को समाधान के लिए बुलाया गया। उन्होंने बात ही बात में समस्या को समाहित कर दिया। इसलिए कहा जाता है जिस सभा में कोई वृद्ध न हो वह सभा कैसी?

मैंने एक पुस्तक पढ़ी। चीन का वॉर (युद्ध) कब हुआ?

(श्रोतागण बोले- 1962 में)

भारत क्यों हार गया?

(एक व्यक्ति ने कहा- भारत के पास ज्यादा शक्ति नहीं थी इसलिए)

हम बोल सकते हैं कि भारत के पास ज्यादा शक्ति नहीं थी। हमारे पास ज्यादा शक्ति नहीं थी, किंतु उस पुस्तक मैं मैंने पढ़ा कि बहुत से अफसर बिके हुए थे। वे चीन की हाँ-में-हाँ मिलाने वाले थे।

कहते हैं कि महाभारत में कर्ण के हारने का कारण आपसी भेद था। शल्य को उनका सार्थवाह बनाया गया। रथ संचालन का काम शल्य को सौंपा गया। शल्य को विपक्षियों द्वारा तोड़ा गया कि तुम्हारे जैसे शक्तिशाली राजा को रथ संचालन का काम सौंपा। रथ संचालन का काम सौंपने वालों ने सोचा कि कर्ण फ्री माइंड होकर युद्ध कर पाएंगे क्योंकि शल्य रथ संचालन में श्रेष्ठ है, इसलिए यह योग बढ़िया रहेगा, किंतु विपक्षियों ने उनके भीतर भेद रेखा खींच दी कि तुम्हारे जैसे को यह कार्य सौंपा गया। तुम बहुत बड़े योद्धा हो और तुम्हें यह कार्य सौंपा। तुम युद्ध नहीं कर सकते, खाली रथ संचालन करते रहो।

उसके मन में यह बात चुभ गई कि मेरा तिरस्कार किया जा रहा है, मेरा अपमान किया जा रहा है। मेरा जो मान-सम्मान होना चाहिए था, वह नहीं हो रहा है। श्री कृष्ण ने कहा, देखो! तुम्हारा एक ही काम है कर्ण के सामने अर्जुन की प्रशंसा करना और कर्ण के कार्यों के लिए यह कहना कि तुमने ऐसा कर दिया, ऐसे कैसे तीर चलाया। उसके लिए नेगेटिव बात करना। ऐसा कहकर कर्ण को आहत करना है। कहते हैं कि बार-बार आहत करने से कर्ण का माइंड डिस्टर्ब हो गया, जिससे उसको पराजय का मुख देखना पड़ा। मैं सारी महाभारत नहीं बता रहा हूँ, किंतु कर्ण के हारने के पीछे का जो कारण है वह बता रहा हूँ। कर्ण के हारने का कारण था भेद रेखा।

बताया गया कि सत्ता प्राप्त करने के लिए चार प्रकार की नीतियों का उपयोग किया जाता रहा- साम, दाम, दंड और भेद।

चौथी नीति है- दंड नीति। यदि तुमने बात नहीं मानी तो ई.डी. तुम्हारे द्वार पर आ जाएगी। सी.बी.आई. तुम्हारे घर पर आ जाएगी। कुछ नहीं तो इनकम टैक्स वालों के छापे पड़ने शुरू हो जाएंगे। मानसिक रूप से परेशान किया जाएगा।

ऐसी बहुत सारी बातें हैं। धन से मानें तो ठीक, नहीं तो भेद रेखा खींची जाएगी। भेद रेखा का असर नहीं हुआ तो फिर दंड नीति का प्रयोग किया जाएगा। तुम्हें दंडित किया जाएगा, इसलिए पहले सोच ले तुझे क्या करना है। ऐसे में कोई भी सरकार कितना शुद्ध रूप से बनेगी कुछ कहा नहीं जा सकता।

मैं अकबर बादशाह की बात कह रहा था। अकबर भी बड़े लोगों को ओहदा देता था। वह भी साम, दाम, दंड और भेद की नीति से चलता था। कोई नहीं मानता तो उसके सीने पर तलवार खड़ी कर देता और कहता कि देख लो, सोच लो, समझ लो। उसने कई हिंदू कन्याओं के साथ शादी की। कोई सही तरीके से लड़की देने को तैयार नहीं होता तो उसके सीने पर तलवार तन जाती थी। तलवार तानने का मतलब है कि उन्हें कहा जाता था कि देख लो! ऐसा करोगे तो तुम राज सुख भोगोगे तो तुम्हारा मान-सम्मान बढ़ेगा।

जिन्होंने यह सोचा कि अपने को बचे रहना है, उन्होंने अपनी लड़की उसे सौंप दी। ओहदा प्राप्त कर लिया। भले ही वह गुलाम होगा किंतु नहीं सोच पा रहा है कि मैं गुलाम हूँ।

जैसे राजा साम, दाम, दंड, भेद की नीति खेलते हैं, वैसी ही नीति मोह राजा की भी है। उसकी नीति भी साम, दाम, दंड, भेद की है। वह कभी राग से मनवाएगा, तो कभी द्वेष से। कभी लोभ से मनवाएगा, तो कभी मान से। वह इस प्रकार का लोभ और लालच देगा कि व्यक्ति अपने आप उसके अधीन हो जाए।

मोह राजा अपने सारे खेल कर्म प्रकृतियों के माध्यम से करता रहा है, कर रहा है और करता रहेगा। क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, शोक, हास्य, रति-अरति कर्म प्रकृतियाँ हैं। सम्पूर्ण रूप से कभी भी मोह का राज्य हटाया नहीं जा सकेगा। जो व्यक्ति चाहे वह अपने आपको उससे स्वतंत्र कर सकता है, लेकिन वह सोचे कि मोह का प्रवाह रोककर उस पर अपना अधिकार जमा लूं, तो ऐसा होना मुश्किल है। सारे संसार को मोह से मुक्त करना आसान काम नहीं है। सबको मोह राजा से मुक्त कराना असंभव है। मोह राजा की चपेट से, मोह राजा के अंकुश से वही व्यक्ति अपने आपको अलग कर सकता है, जिसके भीतर धर्म श्रद्धा का जागरण हो गया होगा।

एक धर्म से वह भय खाता,
दूर भागता पास न आता।

धर्म ही एक ऐसा तत्त्व है जो मोह पर अंकुश लगाने में समर्थ है। अन्य किसी के वश की बात नहीं है कि मोह को जीत ले। धर्म, सदा मोह पर हावी रहता है। धर्म हमें जो सिखाता है, वह मोह के कारण से हम सीख नहीं पाते हैं। धर्म हमें जो सिखाना चाहता है या जो सीख देता है, उसे मोह राजा के कारण हम सीख नहीं पाते। चाहे मोह को प्रलोभन हो या उसका भय, उसके कारण हम धर्म श्रद्धा की नीति को स्वीकार करने में समर्थ नहीं हो पाते। धर्म शक्ति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो पाते।

अंग्रेजों का राज था। अंग्रेजों का मुख्य काम था भय दिखाना। दो आदमियों के बीच में, दो कौमों के बीच में भेद डालना और अपना सिक्का जमाना। मोह का भी ऐसा ही खेल चल रहा है। आज हम धर्म की बातें सुन रहे हैं, किंतु हमारे गले कितनी उतर रही हैं। कितनी बातों को हम गले उतारने के लिए तैयार हैं कि मैं इस बात की पालना करूंगा।

धर्म हमें सिखाता है- 'इदं न मम' यानी यह मेरा नहीं है। क्या है मेरा? मेरा क्या है?

'दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा'

'दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा' का मतलब है कि जो भी पदार्थ दिख रहा है उससे निर्वेद को प्राप्त होना। निर्वेद यानी उसके प्रति उदासीनता। उसके प्रति लगाव पैदा नहीं हो, क्योंकि जितने भी दिखने वाले पदार्थ हैं वे सभी सदा उसी रूप में रहने वाले नहीं हैं। जो सदा रहने वाला नहीं है उनमें हम मुग्ध बनेंगे तो उसके पीछे ठोकर खाएंगे। इसलिए धर्म कहता है कि जितने भी पदार्थ हैं उनकी नश्वरता को जान लो। जो दृश्य है, जो दिख रहा है उसमें निर्वेद को प्राप्त करो। निर्वेद यानी मेरा नहीं है, मैं इसका नहीं हूँ।

''न सा महं नो वि अहं पि तीसे''

पदार्थों के प्रति इस प्रकार का भाव हमारे मन में होना चाहिए। इस प्रकार का भाव हमारे भीतर पनपेगा तो संसार के रंगमंच पर हम रंगीन स्वप्न नहीं देखेंगे। हम पर संसार का रंग चढ़ नहीं पाएगा। हम साधु बन पाएंगे या नहीं, यह आगे की बात है। जरूरी नहीं कि सब साधु ही बने। बिना साधु बने भी कल्याण होता है। हाँ, साधुता होना जरूरी है। साधुता के बिना मोक्ष नहीं है।

आनंद श्रावक की बात मैंने कही थी वह ज्ञातकुल की पौषधशाला में पहुँचकर धर्म ध्यान में लग जाता है। वह साधु नहीं बन पाया, किंतु वहाँ से देवलोक में जाकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और मोक्ष प्राप्त करेगा। कभी-कभी साधु भी एकाभवतारी नहीं हो पाता पर आनंद जैसा श्रावक एकाभवतारी हो जाता है। वह साधु भले ही नहीं बना हो, किंतु मोह कर्म को पछाड़ने के लिए उसने हर तरह का उपक्रम किया और मोह पर जीत हासिल की व पूर्ण रूप से भी करेगा। बिना धर्म के आधार से कोई भी मोह पर जीत हासिल नहीं कर पाएगा, यह सुनिश्चित है। मोह पर विजय प्राप्त करने के लिए धर्म का सहारा लेना ही पड़ेगा।

कल का भरोसा किसको है?

हम सब कल के भरोसे पर जी रहे हैं। हम जानते हैं कि कल का कोई भरोसा नहीं है, फिर भी आज की बात कल पर डाल जाते हैं। कहते हैं कि आज नहीं कल कर लेंगे पर कल आएगा क्या?

कल, कल करते हुए नदियों का पानी समुद्र में चला गया और खारा बन गया। हम भी कल-कल की बात करते चले जाते हैं। कितनी सुंदर बात कही गई है-

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरी करेगा कब।।

हमारी जिंदगी में कल कभी नहीं आएगा। जो भी आएगा वह आज के रूप में आएगा। हमने यदि आज को सफल नहीं बनाया तो कल कभी भी सफल नहीं बनेगा। जिसने आज को सफल बना लिया, वर्तमान को जिसने सफल बना लिया उसको कोई पराजित नहीं कर सकता। उसको कोई असफल नहीं कर सकता। जो कल सफल होना चाहता है वह कभी सफल नहीं हो पाएगा। सफल होना है तो वर्तमान में होना होगा। जो अपने आपको वर्तमान में सफल बना लेता है उसको कोई असफल नहीं कर सकता।

एक धर्म से वह भय खाता,
दूर भागता पास न आता।

धर्म ही ऐसा तत्त्व है, जिससे मोह राजा भय खाता है। उससे दूर भागता है। उसके समीप आ नहीं पाता।

धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

भारत ही नहीं, पूरे विश्व के जितने भी देश हैं, उनकी सेनाएं रोज अभ्यास करती हैं या युद्ध आता है तभी अभ्यास करती हैं?

(श्रोतागण बोले- रोजाना अभ्यास करती हैं)

युद्ध का अभ्यास निरंतर चलता रहता है। सैनिकों को कभी खाली बैठने का मौका नहीं दिया जाता। खाली पड़ी चीज में जंग लग जाती है। हम भी यदि अपनी शक्ति को उपयोग में नहीं लेंगे तो हमारी शक्ति में जंग लग जाएगी। सैनिक युद्धाभ्यास करते रहते हैं। कभी किसी राष्ट्र के साथ, तो कभी किसी राष्ट्र के साथ, युद्धाभ्यास करते रहते हैं ताकि एक-दूसरे के गुर को समझ सकें। अभ्यास निरंतर चलता रहता है। उसी तरह हमें भी मोह पर विजय प्राप्त करनी है तो निरंतर धर्माभ्यास करना होगा। निरंतर धर्म आराधन करना होगी। दिल से धर्म आराधन करने पर उसका अलग ही प्रभाव होता है किंतु हम औपचारिकता में धर्माराधन करते हैं, दिल से नहीं करते या कम कर पाते हैं।

लोहे को पारसमणि का स्पर्श करा देने पर लोहा सोना बन जाता है। वैसे ही लोहे तुल्य अपने जीवन को यदि धर्म से, सामायिक से स्पर्श करा दिया

होता, उससे यदि सम्पर्क जुड़ गया होता तो हमारे भीतर ओजस्विता प्रकट हुए बिना नहीं रहती। धर्म को जितना जीया जाएगा, भीतर उतना ही ओज पैदा होगा, किंतु हम औपचारिकता से धर्माराधन करते हैं। उसके सार को, तत्त्व को अपने साथ जोड़ने की कोशिश नहीं करते। इस कारण जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। इसके कारण से हम मोह पर विजय पताका फहराने में सफल नहीं होते। जिन्होंने भी विजय पताका फहराई है, उन्होंने धर्म श्रद्धा को जाना है। चाहे मर्यादा पुरुषोत्तम राम का नाम ले लें या महावीर भगवान का नाम ले लें। यदि आप भी चाहते हैं मोह पर विजय पताका फहराना, तो धर्म का सहारा लें। धर्म के सहारे के बिना कभी भी मोह राजा पर विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं होंगे।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
पिता वैरी है, शत्रु माता, जो पुत्री को नहीं पढ़ाता
सेठ रहा यह मान, भविकजन...

समय मालूम नहीं पड़ता, धर्म की बात बढ़ती चली गई। धर्म की बात से शक्ति मिलेगी, बल मिलेगा। उसी से शौर्य मिलेगा। संस्कारों की बात कही जा रही है। संस्कार भी हमें शक्ति-सम्पन्न बनाने वाले हैं। नीतिकारों ने एक बात कही-

''माता शत्रुः, पिता वैरी, येन बाला न पाठिता''

वे माता-पिता शत्रु हैं जो अपनी लड़की को नहीं पढ़ाते हैं। अब जमाना बदल गया। आज लड़कियाँ भी पढ़ती हैं। एक जमाने में लड़कियों को नहीं पढ़ाया जाता था। लोग कहते थे कि लड़कियों को पढ़ाकर क्या करना है। वे तो पराये घर जाएंगी, इसलिए उन पर क्यों खर्च करना। आजकल लड़कियाँ भी लड़कों का कान काटने वाली बन गईं। वे भी पढ़ रही हैं।

सेठ की उस जमाने में सोच थी कि मैं लड़की को पढ़ाऊँगा। लड़की को नहीं पढ़ाऊँगा तो लड़की अनजान रह जाएगी। अनजान रह जाएगी तो उसकी कलाएं नहीं खिलेंगी। हमारी कलाएं लोहे के समान हैं उसको चुम्बक की आवश्यकता लगती है। जैसे चुम्बक, लोहे को खींचती है वैसे ही बाहर की विद्या हमारे भीतर की कलाओं को खींचती है। कलाओं का ज्ञान हमारे भीतर है। बाह्य ज्ञान, कलाओं को विकसित करता है। हम सोचते हैं कि हमें कला बाहर से सीखने को मिल गई, यह नहीं सोचना, कला हमारे भीतर मौजूद थी। बाहर से तो केवल उसको प्रोत्साहित किया गया है, खींचा गया है।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि तीतर (एक पक्षी) झाड़ियों में छिपे रहते थे। उसको पकड़ने के लिए बहेलिया अपने पास पकड़े हुए तीतर को ले जाकर झाड़ियों के पास छोड़ देता है। वह वहाँ आवाज करता है। उसकी आवाज सुन झाड़ियों में छिपे तीतर भी बाहर आ जाते हैं। वैसा ही हमारे लिए है। बाहर से कला का ज्ञान लिया तो, हमारे भीतर रहा कला का ज्ञान प्रकट हो जाएगा। चाहे थोकड़े का ज्ञान हो या कुछ और, बाहर का सहारा मिलते ही वह भीतर प्रकट होता है। यदि हमारे भीतर नहीं होता तो प्रकट होने की बात नहीं होती।

सेठ यह विचार करता है कि मैं यदि कन्या को नहीं पढ़ाऊंगा तो उसके भीतर की कलाएं प्रकट नहीं होंगी। मुझे उसके भीतर की कलाओं को प्रकट कराना है, कलाओं को विकसित कराना है। इसलिए संस्कार जरूरी है। संस्कारों की शक्ति से जीवन उन्नत हो सकता है। जो कार्य बल से नहीं हो पाता, वह कल से हो जाता है, कला से हो जाता है यानी बुद्धि से हो जाता है। बुद्धि का विकास संस्कारों की शक्ति से होता है। अनेक प्रकार की बातें जब सामने आती हैं तो हमारी बुद्धि सोचने के लिए बाध्य होती है और सोचकर उसका रिजल्ट निकाल लेती है। सक्रिय बुद्धि पेचीदा स्थितियों में भी हल निकाल लेती है।

सेठ समझ रहा है कि संस्कारों की बहुत आवश्यकता होती है।

मात-पिता की लाडली पुत्री, जीवन उसका था एक सूत्री,
कर्तव्य पथ स्वीकार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

माता-पिता की एक ही पुत्री थी। वह बहुत लाडली थी। माता-पिता उस पर फिदा थे। ध्यान रखना, ज्यादा लाड-प्यार भी संतान को बिगाड़ देता है और बिना प्रेम के भी संतान बिगड़ जाती है। संतान के साथ यदि सदा दुर्व्यवहार किया, उससे प्रेम नहीं किया, सौतेला व्यवहार रखा तो उसके भीतर हीन भावना पैदा हो जाती है।

उसके भीतर ऐसा कुछ भी नहीं था। वह सकारात्मक सोचती थी। वैसा ही उसको प्रशिक्षण दिया जा रहा था। वैसा ही परिवार का सपोर्ट मिल रहा था। आनुवांशिक रूप से जो संस्कार मिले उसके अनुसार उसका एक सूत्री कार्यक्रम था। वह अपने कर्तव्य पर डटी रहती। कर्तव्य पालन में कभी कमी नहीं रहने देती।

आज बहुत से व्यक्ति अपना कर्तव्य निश्चित करने में सक्षम नहीं हैं।

व्यक्ति का कर्तव्य अपने व परिवार तक ही सीमित है क्या? उतना किया बस मेरा हो गया, अब बस। हर व्यक्ति की अपनी-अपनी क्षमता, अपना-अपना सामर्थ्य है। जिसके भीतर सामर्थ्य है उसको उसका बोध जागृत होना चाहिए कि मेरा दायित्व केवल अपने और अपने परिवार तक ही सीमित नहीं है। अपने समाज व राष्ट्र का दायित्व भी है। जो राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को नहीं समझेगा, वह राष्ट्र का हित कभी नहीं सोच पाएगा। जो अपने आपमें वैश्विक दायित्व ले लेता है, वह विराट बन जाता है। जो जितना दायित्व का बोध करता है उसका उतना ही विकास होता है। जो छोटे दायरे में रह गया वह छोटे दायरे में ही रह जाता है। जो अपना दायरा विकसित करेगा और जिम्मेदारी लेगा वह अपना विकास निरंतर करता जाएगा। उसके विकास को कोई नहीं रोक सकता। फिर वह राष्ट्रीय प्राणी नहीं, वैश्विक प्राणी बनने में समर्थ होगा। इसलिए अपने कर्तव्य की पहचान करें। अपने कर्तव्य की पहचान होना जरूरी है। कर्तव्य की पहचान करके चलेंगे तो उन्नति को रोकने में कोई समर्थ नहीं होगा।

सुनंदा अपनी गति से चल रही थी। घर-परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करती थी। माता-पिता की सेवा करती। घर के पशु वगैरह को देखती। घर में आए हुए सदस्यों का सम्मान करती, स्वागत करती।

सारे कर्तव्यों का पालन करते हुए सुनंदा अपना जीवन आगे बढ़ा रही थी। आगे किस प्रकार का प्रसंग बनेगा यह हमें समय के साथ ज्ञात होगा। हम अपने आपको संस्कारित करें। दूसरे संस्कारों के साथ धर्म के संस्कार बहुत जरूरी हैं। नीतिकारों ने बताया कि जिसको 72 कलाओं का ज्ञान है और एक धर्म कला का ज्ञान नहीं है उसका जीवन अधूरा है। जिसको धर्म कला का ज्ञान है अन्य 72 कलाओं का ज्ञान नहीं है तो उसका जीवन पूर्ण हो सकता है। इसलिए जीवन में धर्म श्रद्धा होना जरूरी है। धर्म श्रद्धा से अपने आपको लाभान्वित करें। इतना ही कहते हुए विराम।

11 जुलाई, 2023

9

ऐसा धर्म सदा सुखदायी

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म की महिमा का कोई अंत नहीं है। धर्म व्यक्ति को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है। अब तक धर्म की आराधना का, धर्म की श्रद्धा का लाभ बताया गया। अब धर्म की महिमा के बारे में बताया जाएगा।

'ऐसा धर्म सदा सुखदाई, नित्य बजे जय की शहनाई'

पेट में गया हुआ भोजन व्यक्ति को कष्ट दे सकता है, अपच हो सकता है, उससे बहुत सारी गड़बड़ियाँ हो सकती हैं, किंतु धर्म कभी भी विपरीत परिणाम देने वाला नहीं होता। आयुर्वेद में हरीतकी का उल्लेख है। हरीतकी यानी छोटी हरड़। उसके लिए बताया गया है कि माँ का दूध बच्चे के लिए कभी कष्टकर हो भी सकता है, किंतु पेट में गई हरड़ कष्ट नहीं देती। वैसे ही धर्म कभी भी विपरीत परिणाम देने वाला नहीं होता।

'ऐसा धर्म सदा सुखदाई'

धर्म में विशेषण लगाया गया है, ऐसा...

कैसा धर्म?

जिसमें मोह पर विजय प्राप्त करने की बात कही गई है। जीवन में जितने भी दु:ख-द्वंद्व पैदा होते हैं उनका मूल कारण मोह है। हम समझ लेते हैं कि पड़ोसी मुझसे दुर्व्यवहार कर रहा है, बेटा मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है, पुत्रवधू सही नहीं आई जबकि सच्चाई यह है कि मोह कर्म को हमने नहीं पछाड़ा। यदि उसे पछाड़ दिया होता तो सब सही होता, किसी में कोई

बुराई नजर नहीं आती। सबसे बड़ी बात है मोह कर्म की। उसमें हम गहरे उतरे हैं या वह हमारे में गहरा उतरा हुआ है, दोनों ही स्थितियों में हम परेशान होते हैं।

'ऐसा धर्म सदा सुखदाई, नित्य बजे जय की शहनाई।'

मोह कर्म पर विजय पाने की बात बताने वाला धर्म, सुख देने वाला होता है।

''धर्मी मात कभी ना खाता, जब भी पाता वह जय पाता''

चेड़ा महाराज भगवान महावीर के बारह व्रतधारी श्रावक थे और मामा भी थे, किंतु जब अन्याय का प्रतिकार करने का प्रसंग आया तो वे डट गए, पीछे नहीं हटे। युद्ध, धर्म युद्ध भी होता है और कर्म युद्ध भी होता है।

रूस और यूक्रेन का युद्ध मूँछों का, नाक का युद्ध है। रूस ने शायद नहीं सोचा होगा कि यूक्रेन, युद्ध को इतना लम्बा खींच देगा। दूसरी शक्तियाँ यूक्रेन के साथ हो गईं और रूस के लिए समस्या खड़ी हो गई। वैसे ही जब मोह की बात होती है तो उसके इधर-उधर की सारी सेनाएं साथ हो जाती हैं और सत्य उससे लड़ने की तैयारी में रहता है। अंततोगत्वा सत्य की विजय होती है। धर्म युद्ध होगा तो धर्म की ही विजय होगी। हमारे भारतीय संस्कृति में एक सूक्ति है-

''सत्यमेव जयते''

विजय किसकी होती है?

(श्रोतागण बोले- सत्य की विजय होती है)

महाभारत का युद्ध नैतिकता का युद्ध था। यदि दुर्योधन मान गया होता तो युद्ध की नौबत नहीं आती, किंतु वह पांडवों को उनका हक नहीं देना चाहता था। उनका हक हड़पने की कोशिश में था। उस युद्ध में कौरव पराजित हुए और पांडव जीते। रावण ने आततायी का काम किया, राम को युद्ध करना पड़ा। लक्ष्मण को युद्ध करना पड़ा। राम-लक्ष्मण के साथ नैतिकता का बल था, इसलिए वे जीत गए।

राजाओं के युग में नैतिकता का ध्यान भी रखा जाता था। सूर्यास्त होने के बाद युद्ध विराम हो जाता था। घोषणा हो जाती थी कि अब कोई किसी पर आक्रमण नहीं करेगा।

महाभारत में बताया गया है कि युद्ध के बाद कौरव और पांडव मिलते-जुलते। आपस में भाईचारे की बात होती, घर की बात होती। इसका

मतलब था कि युद्ध किसी व्यक्ति के लिए नहीं, अपितु नैतिकता की रक्षा के लिए था। कंस और शिशुपाल ने आतंक फैलाया। उसका परिणाम उनको भोगना पड़ा। जो युद्ध में धर्म को आधार बनाकर चलता है, नैतिकता को साथ लेकर चलता है, वह कभी पराजित नहीं होता।

चेड़ा महाराज का एक नियम था कि जो उन पर प्रहार करेगा, वे उसी पर प्रहार करेंगे। जो उन पर शस्त्र चलाएगा, उसी पर वे शस्त्र चलाएंगे। ऐसा नहीं कि शत्रु सामने है तो धड़ा-धड़ सब पर बारूद की बौछार कर दी जाए। युद्ध भूमि में ऐसे नियम का पालन करना बहुत कठिन काम है। युद्ध भूमि में तो लक्ष्य होता है शत्रु को समाप्त करने का, किंतु उनका ऐसा लक्ष्य नहीं था, क्योंकि उनका व्रत था कि जो मेरे शरीर पर आक्रमण करेगा उसी पर प्रहार करूंगा। उस व्रत का, उस सत्य का, उस नियम का युद्ध क्षेत्र में भी पालन करना, बहुत महत्त्व की बात है इसलिए कहा गया है-

'ऐसा धर्म सदा सुखदाई, नित्य बजे जय की शहनाई'

शहनाई बजने का मतलब यह नहीं है कि जय पा हर्ष विभोर हो जाए। इसका मतलब है कि उसकी जय हुई। उसका मन साफ रहे, शुद्ध रहे, पवित्र रहे।

महाभारत का युद्ध होने के बाद युधिष्ठिर और अर्जुन गमगीन हो गए कि अब किस पर राज्य करें? लाशों के ढेर लगे हैं। ऐसे राज्य प्राप्ति से क्या फायदा। कितने लोगों को हमने खोया है। कितने परिचितों को, कितने परिजनों को खोया है।

हकीकत में युद्ध किसी बात का समाधान नहीं है। राजाओं के समय में छोटी-छोटी बातों पर युद्ध हो जाता था। अब लोग समझने लगे हैं कि युद्ध समाधान नहीं है, इसलिए बातचीत करो। बातचीत से समाधान निकालना चाहिए। घर में, परिवार में भी किसी से बात हो जाए, किसी से अनबन हो जाए तो सबसे सुंदर तरीका है, बातचीत करना। आपस में बातचीत करो, समाधान निकल जाएगा।

एक विचार करना चाहिए कि रोज लड़ाई कर रहे हैं, झगड़ा कर रहे हैं उसका निष्कर्ष क्या होगा! यदि कोई घर छोड़कर जाएगा तो बात अलग है। परिवार को छोड़कर जाएगा तो बात अलग है। जब रहना उन्हीं के बीच है तो

फिर रोज-रोज की खट-पट क्यों! अत: पहले ही निश्चय कर लो कि इनके बीच रहना है या नहीं! यदि उन्हीं के बीच में रहना है तो रोज का दंगा-फसाद किसलिए करना? रोज के दंगा-फसाद से आपसी प्रेम मंद पड़ जाता है, कम हो जाता है, सूख जाता है, खत्म हो जाता है। एक दूसरे के मन में, एक दूसरे के लिए जो सहानुभूति होनी चाहिए वह रहना मुश्किल है। इसलिए पहले यह बात तय कर लो कि मुझे इनके साथ रहना है या नहीं? रहना साथ है, तो रोज की कच-कच का क्या मतलब? रहो तो शांति से रहो। प्रेम से रहो। जब रहना उन्हीं के बीच है तो समझ लो कि जो अवस्था है उसी में रहना है।

'जाट कहे सुन जाटनी, अणी गाँव में रहणो तो हांजी, हांजी केहणो।'

आजकल ग्राम-पंचायतें हो गईं, सरपंच हो गए, पहले ठाकुर होते थे। ठाकुर की बात नहीं मानेंगे तो रोज समस्याएं खड़ी होंगी और उनकी बात मान ली तो कोई समस्या नहीं। अपने अहंकार को हमने समझा लिया तो झगड़ा नहीं होगा। जो भी झगड़ा होता है, जो भी तनाव पैदा होता है उसका कारण कहीं-न-कहीं अहंकार होता है। हमारा अहंकार एक पक्ष की बात, एक तरफ की बात पकड़कर खींचता है। बात खिंचेगी तो तनाव पैदा होगा। नहीं खिंचेगी तो तनाव पैदा नहीं होगा।

''धर्मी मात कभी ना खाता, जब भी पाता वह जय पाता''

जिस पक्ष में सच्चाई होगी उसी की जीत होगी। जीत में देर लग सकती है, विलंब हो सकता है, किंतु अंततोगत्वा उसी का पक्ष प्रबल रहेगा क्योंकि धर्म और नैतिकता उसके साथ है। ईमान उसके साथ है। जिधर ईमान रहेगा, धर्म रहेगा, सत्य रहेगा, जिधर नैतिकता रहेगी, उसी की जीत होगी। उसके सामने कोई भी सेना टिक नहीं पाएगी। उसका एक-एक वार इतना सशक्त होगा कि उसको सहना हर किसी के वश की बात नहीं होगी।

महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण ने पहले ही कह दिया कि मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा। उन्होंने शस्त्र नहीं उठाया, केवल पांडवों के पक्ष में खड़े रहे। विजय किसकी हुई?

(श्रोतागण बोले- जीत पांडवों की हुई)

वैसे ही सत्य हमारे पक्ष में खड़ा है, धर्म हमारे पक्ष में खड़ा है तो जीत

हमारी होगी, किंतु उसके लिए धैर्य रखना होगा। धर्म हमें धैर्य सिखाता है। सिखाता है कि जल्दबाजी मत करो। हड़बड़ी मत करो। हड़बड़ी गड़बड़ी पैदा करती है। हड़बड़ी न करके धैर्य रखो। धैर्य रखकर व्यक्ति बहुत सारी समस्याओं से अपने आपको बचा सकता है।

आज अपने घर में, अपनी दुकान में, ऑफिस में, फैक्ट्री में, अपने प्रतिष्ठान में मन के विपरीत थोड़ा भी कुछ हो जाए तो तत्काल जवाब नहीं देना। तीन मिनट तक धैर्य रखना। हाथों-हाथ जवाब नहीं देना। चाहे घर की बात हो, प्रतिष्ठान की बात हो या ऑफिस की।

कौन-कौन तैयार हैं? करा दूँ प्रतिज्ञा? बहनें समझीं की नहीं? आज के लिए प्रतिज्ञा करा दूँ?

(श्रोतागण बोले- करा दें)

(सभा में उपस्थित श्रोताओं ने प्रतिज्ञा ली)

विषाद या विवाद की बात आए तो तीन मिनट से पहले जवाब नहीं देंगे। यह एक प्रयोग है। आप प्रयोग करके देखना। इससे आपको मालूम पड़ जाएगा। आपको लगे कि यह ठीक है, मन को सांत्वना मिली है, मन को अच्छा लगा है तो आगे भी करना।

यदि दवाई फायदा करे तो उसको निरंतर लेना चाहिए या नहीं?

(श्रोतागण बोले- लेना चाहिए)

सदा ऐसा नियम नहीं है। कुछ दवाएं शरीर का बिगाड़ करने वाली भी होती हैं। वे अधिक समय तक नहीं ली जा सकतीं, किंतु जो दवाई मैं बता रहा हूँ, वह कुछ भी बिगाड़ करने वाली नहीं है। करेगी तो अच्छा ही करेगी, बुरा कभी नहीं करेगी।

एक क्षण यदि व्यक्ति ठहर जाता है, तीन मिनट ठहर जाता है तो बमबारी नहीं होगी। बम विस्फोट नहीं होगा। तीन मिनट का समय निकल गया तो बात खत्म हो गई। फिर वह बात उस रूप में उफान नहीं लेगी। तीन मिनट बाद कहने के लहजे में फर्क आ जाएगा, वचनों में अंतर आ जाएगा। जो उफान और उभार था वह मंद पड़ जाएगा और तनाव अपने आप कम हो जाएगा। ये सुंदर संस्कार की बातें हैं। सुनंदा ऐसे संस्कारों से जी रही है।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार,
कर्तव्य से ना पीछे हटना, कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहना।
दृढ़ता थी मन मांय, भविकजन...

बात आई कि 'कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहना' कर्तव्य से ना पीछे हटना। इसकी समीक्षा करनी पड़ेगी कि कर्तव्य क्या है।

जवाहरलाल जी कवाड़ दीक्षित हुए और बाद में आचार्य जवाहरलाल बने। उनके मन में वैराग आया, मन में संवेग और निर्वेद के भाव जगे। उनके मन में आया कि मुझे साधु बन जाना चाहिए, किंतु उन्हीं का मन, उन्हीं का तर्क काट भी रहा था। उनका विचार उनके ही विचारों से द्वंद्व कर रहा था कि जवाहर! तुम दीक्षा लेना चाहते हो तो क्या यह सही है! जिस मामा ने तुम पर उपकार किया, तुम्हें सहारा दिया, उनके परिवार को बेसहारा बनाकर तुम दीक्षा कैसे ले लोगे?

उनकी माता का मरण तब हो गया था जब जवाहरलाल की उम्र लगभग दो साल की थी। साढ़े चार-पाँच साल की उम्र में उनके पिताजी का देहावसान हो गया। तब उनके मामा उन्हें अपने घर लाए और लालन-पालन किया। आठ साल की उम्र जवाहरलाल के मामा का भी स्वर्गवास हो गया। मामी और मामा का छोटा लड़का पीछे रहे।

ऐसे में उनके मन में तर्क पैदा हो रहा था कि जवाहर! इनकी जिम्मेदारी तुम्हारे पर आ गई है। इनको छोड़कर तुम दीक्षा कैसे लोगे।

ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? उनको अपने भरोसे छोड़ देना या उनका लालन-पालन करना?

एक बात बताई गई है कि किसी बेसहारा व्यक्ति के लिए यदि संवत्सरी का पौषध करना भी छोड़ना पड़े तो छोड़ना चाहिए। जैसे कोई अपने माता-पिता को संभाल रहा है, माता-पिता की हालत नाजुक है, दूसरा कोई संभालने वाला नहीं है और संवत्सरी में बेटा सोचे कि मैं पौषध करूंगा तो वह उचित नहीं है। वह उन्हें ऐसे ही नहीं छोड़ सकता। उसका पौषध हो या नहीं हो, पहला व्रत अहिंसा का होना चाहिए। उनकी सेवा-शुश्रूषा करना उसका दायित्व बनता है।

जवाहर के यहाँ ऐसी अवस्था नहीं थी कि वह किसी के सहारे हैं।

जवाहर को समाधान मिला। उन्हीं के विचारों में समीक्षा करने पर समाधान मिला। वे अपने भूत को निहार रहे थे और उनको समाधान मिल गया। उनके मन ने आवाज दी, जवाहर! तू क्या सोच रहा है! क्या तुम ही इनका पालन करने वाले हो? यह अहंकार झूठा है। यह मन की कमजोरी है, यह एक बहाना है। तुम सोचो कि जब तुम पाँच वर्ष के थे उस समय तुम्हें सहारा मिला या नहीं मिला! तुम्हारी आठ वर्ष की उम्र में तुम्हारे मामा का स्वर्गवास हो गया, उस समय किसने तुमको संभाला? आचारांग सूत्र को याद करो।

''पत्तेयं पुण्णपावं''

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का पुण्य और पाप होता है। जैसा उसका पुण्य-पाप होगा वैसा उसको सहारा मिलेगा। यह विचारकर वे एकदम उद्यत हो गए और साधु बन गए।

सबको अपने कर्तव्य का ज्ञान हो जाना चाहिए। खाली पकड़कर नहीं बैठना चाहिए कि मेरी तो ऐसी स्थिति है। ऐसा करना कहीं-न-कहीं मोह का रेशा है, मोह का फंदा है। यदि संवेग-निर्वेद सशक्त हो जाते हैं तो फिर मन में कोई रुकावट पैदा नहीं होगी।

गजसुकुमाल मुनि की बात हम सुनते हैं। राजकुमार की बात हम सुनते हैं। अरिष्टनेमि भगवान की एक देशना सुनकर जिसके मन में वैराग जग गया। माँ देवकी कितना झुरना झुरी तब जाकर उसको गजसुकुमाल मिला और आज वह कह रहा है माँ! मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। ऐसा सुनकर माँ का हाल क्या होगा? निर्वाण मुनि जी कह रहे हैं कि माता-पिता बड़े खुश होते हैं। ये ही कभी आपको सुनाएंगे।

सुबाहु कुमार ने जैसे ही अपनी माता से दीक्षा की बात कही, उनकी माता धड़ाम से गिरकर बेहोश हो जाती है।

''असुयपुव्वं''

अब तक ऐसे शब्द सुने नहीं। वे शब्द सुनकर देवकी बेहोश होकर धड़ाम से नीचे गिर गई। गजसुकुमाल वहीं खड़ा है, किंतु उसके चेहरे पर कोई फर्क नहीं है। वह हक्का-बक्का नहीं हुआ, वह झट से नीचे झुककर माता को सहलाने नहीं लगा।

ऐसे में हम कह सकते हैं कि कैसा बेरहम आदमी है। यह कोई वैराग है?

जिनको यह ज्ञान हो जाता है कि मैं इनका नहीं हूँ, ये मेरे नहीं हैं वह ''न सा महं नो वि अहं पि तीसे'' की अवस्था में आ जाता है। वह समझ जाता है कि कोई किसी का नहीं है। कौन है किसका? यह बता दो, कौन है किसका?

'मात कहे मेरा पूत सपूता, बहन कहे मेरा भैया
घर की जोरू यूं कहे, सबसे बड़ा रुपैया'

पैसा परमेश्वर है। वह है तो जय-जयकार है। हकीकत में जय किसकी होती है?

(श्रोतागण बोले- पैसे वालों की)

हकीकत में जय होती है हमारे प्रयोजन की, हमारे स्वार्थ की। जब तक स्वार्थ सिद्ध होता है, तब तक कहा जाता है कि मेरे हैं। स्वार्थ सिद्ध हो जाते ही आदमी पराया हो जाता है। अपनी संतान भी परांगमुख हो जाती है। इसी प्रकार जब जीव को भेद विज्ञान हो जाता है तब वह समझ जाता है कि यह शरीर माध्यम है, जितने दिन तक चल रहा है, चल रहा है, मुझे इसके सहारे नहीं रहना है। मैं अपने आप में स्वतंत्र हूँ। ऐसे ही भाव संथारा-संलेखना तक ले जाते हैं। शरीर के प्रति ममत्व का भाव संलेखना-संथारा ग्रहण नहीं करने देगा। ममत्व भाव हटेगा तो संथारा-संलेखना के लिए अपने आप ही मन बन जाएगा।

जब तक परिवार में हैं, तब तक परिवार की देख-रेख करना जिम्मेदारी का काम है। हकीकत में यदि वैराग पैदा नहीं हुआ, संवेग-निर्वेद के भाव प्रबल नहीं हैं तो ढोंग करने की आवश्यकता नहीं है। परिवार में रहकर कोई सोचे कि मैं तो बेटी की शादी नहीं करा सकता, क्योंकि पाप लगेगा, दुकान नहीं कर सकता, क्योंकि पाप लगेगा तो ठीक नहीं है। तुम्हारे पीछे संभालने वाले हैं तो तुम अपने आपको किनारे कर सकते हो। कोई संभालने वाला नहीं है तो किसी को मझधार में छोड़ना कर्तव्य से विमुख होना है।

सुनंदा का मन बड़ा सुदृढ़ था। जिसके साथ सत्यनिष्ठा खड़ी हो जाती है उसके भीतर श्रद्धा अपने आप आ जाती है।

कच्चे गारे से खड़ी की गई दीवार ज्यादा मजबूत नहीं होगी, किंतु जो दीवार आर.सी.सी. से बनाई गई है और जिसकी अच्छे से तराई हुई है, वह

मजबूत होगी।

वैसे ही जिसके साथ सत्यनिष्ठा रहेगी उसकी विचारधारा संस्कारित होगी। सुनंदा अपने आप में कर्तव्य पथ पर अटल है, दृढ़ है।

सत्संगत से शिक्षा पाई, धर्म जग जीवन सुखदायी,
रहे सदा मन मोय, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सत्संगत में नित रहना। जब भी मौका मिले साधुओं की संगत में रहना। साधुओं की संगत बहुत बल देती है। सत्संगत का अर्थ होता है- सत्य के साथ रहना, सत्य की संगति करना। धर्म का आराधन नित करना। संतों की संगति से विल पॉवर मजबूत बनता है।

'जैसी संगत वैसी रंगत'

सत्य की संगत करेंगे तो सुदृढ़ बनेंगे। मोह और ममत्व की संगत करेंगे तो कहीं-न-कहीं मन रोएगा। मन कमजोर बनेगा।

जवान बेटा या जवान पत्नी चली जाए तो मन रोता है। क्यों रोता है मन? क्योंकि मोह की संगत है। सत्य की संगत करने वाला किसी के भी चले जाने पर रोता नहीं है। वह सोचता है कि इतने ही दिनों का साथ था। इतना ही संयोग था। उसने मेरे घर जन्म लिया, मेरे घर में आया, इतने दिनों का ही संयोग था, इसलिए आया और चला गया। इतने दिन मेरे साथ रहा और चला गया। चला गया तो चला गया, रोना किसलिए? भीतर मोह का भाव होगा तो रोना आएगा और सत्यनिष्ठा पर दृष्टि होगी तो वह हमें रुलाएगी नहीं, तत्त्व का बोध कराएगी।

सुनंदा सत्यनिष्ठ संयोग के लिए तत्पर रहती थी। जब भी अवसर मिला, वह उसमें पीछे नहीं रही। सम्यक्त्व के 67 बोल में सम्यक्त्वी के लिए बताया गया है कि तीन दिन के भूखे प्राणी को सूखी रोटी मिले तो भी वह बहुत खुश हो जाता है। उसको यदि खीर-खांड का भोजन मिल जाए तो उसको बेहद प्रसन्नता होगी। वैसे ही सम्यक् दृष्टि को जब भी वीतराग वाणी सुनने का मौका मिल जाए, सत्संगत का मौका मिल जाए उसको अपार खुशी होगी। वह उस मौके को छोड़ना नहीं चाहेगा। कितना ही महत्त्वपूर्ण समय हो सत्संगत से बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता।

पूणिया श्रावक की सामायिक कितने में बिक रही थी? 52 डूँगरी धन

तो उसकी दलाली में पूरा नहीं हो रहा था, फिर सामायिक की कीमत कितनी होती? एक सामायिक की कीमत 52 डूँगरी से तो कई गुणा अधिक होती। यदि यह विश्वास हमारे जेहन में होगा तो क्या हम दुकान खोलकर बैठेंगे?

आप बोलो! मंडी जाओगे या व्याख्यान सुनने आओगे?

मंडी जाएंगे, दुकान खोलेंगे। हमने पैसों को महत्त्व दिया, इसलिए मंडी जाना हमारे लिए लाजिमी हो गया। आपकी दृष्टि में धर्म आराधना का लाभ मंडी की कमाई के सामने तुच्छ है इसलिए मेरे कहने से आप नहीं थमोगे। जब तक समझ में यह बात नहीं आ जाएगी कि धर्म की कमाई महत्त्वपूर्ण है, तब तक पैसों के पीछे भागते रहेंगे। जब बात समझ में आ जाएगी तब सारी दुनिया इधर से उधर हो जाए, किंतु धर्म में दृढ़ रहेंगे। धर्म से च्युत नहीं होंगे। धर्म को पहले स्थान देंगे। बाकी काम होते रहेंगे।

सायबलाल जी मारू की बात से भी इसे जाना जा सकता है। सायबलाल जी आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के पिता जी थे। उनकी पुत्री का वियोग हो गया। वे पौषध में थे। गाँव वाले आए और बोले आपकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया।

हो गया तो हो गया। उनके पौषध में कोई फर्क नहीं पड़ा। उनके चेहरे पर कोई फर्क नहीं पड़ा। चेहरे पर कोई सिकन नहीं आई।

इसी तरह ब्यावर के चोरड़िया माँजी के पुत्र फतेहलाल जी का वियोग हो गया। वे पौषध में थे व माता भी पौषध में थी। जब उनको मालूम पड़ा तो कहा कि हो गया जो हो गया। लोगों ने कहा कि वह आएगा, वह आएगा तब तक लाश को रखते हैं। उन्होंने कहा मिट्टी (लाश) को रखने से क्या फायदा। रोना तो दूर की बात।

आप विचार कीजिए, ये विचार कहाँ से आते हैं! सत्संग से ये विचार दृढ़ होते हैं। सत्य की संगत होगी तो श्रद्धा हमारे भीतर आएगी।

सुनंदा ऐसे ही सत्यनिष्ठा के साथ कर्तव्य पथ पर डटी हुई अपने कर्तव्यों का पालन कर रही थी। आगे किस प्रकार से उसके जीवन में क्या कुछ घटता है यह समय के साथ समझेंगे, किंतु इतना निश्चित है कि व्यक्ति अपना मानस बना ले कि मुझे सत्यनिष्ठा से जीना है। मुझे हराम की कमाई नहीं चाहिए। सत्य की कमाई कभी भूखा नहीं मारेगी और हराम की कमाई कभी

पनपेगी भी नहीं। डिब्बा खाली हो जाएगा।

आज से 50 वर्ष पहले की बात लें। तब घर की रसोई में रखे डिब्बे में रोटी हमेशा मिलती थी। दिन हो या रात, हर समय रोटी मिलती थी। आज डिब्बा खोलेंगे तो क्या मिलेगा?

(श्रोतागण बोले- खाली मिलेगा)

डिब्बा खाली क्यों मिलेगा?

बिस्किट के पैकेट जरूर मिल जाएंगे। पारले जी, फारले जी, पता नहीं कौन-कौन-से बिस्किट मिल जाएंगे। प्रभावना में बिस्किट मिल जाते हैं। पाँच-आठ रुपए में एक पैकेट मिला और प्रभावना कर दी। प्रभावना के लिए बिस्किट आसानी से मिल जाते हैं अत: घर में बिस्किट तो मिल जाएंगे, किंतु रोटी का डिब्बा खाली है।

हम सत्यनिष्ठा में जीएंगे। सत्य की संगत करेंगे तो कर्तव्य पथ की राह आसान हो जाएगी। उस स्थिति में नैतिकता को कभी भी पीछे नहीं खिसकने देंगे। नैतिकता साथ रहेगी, ईमान साथ रहेगा तो कहीं भी जाएंगे हमारे पैर मजबूत रहेंगे। हमारी वाणी मजबूत रहेगी। कहीं भी कोई धक्का देने वाला नहीं मिलेगा। कहीं कमजोरी आने की बात नहीं रहेगी। ऐसा हमारा लक्ष्य होना चाहिए। ऐसी दृढ़ता हमारे भीतर आनी चाहिए। ऐसी दृढ़ता आएगी सत्संगत करने से, सही संस्कारों में जीने से, प्रतिदिन धर्माराधन करने से। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे।

12 जुलाई, 2023

10

धर्म रंग से मन हो रंगा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म की बात चल रही है। धर्म के माहात्म्य का कथन हो रहा है। जब हमें धर्म का महत्त्व समझ में आएगा तो हमारे भीतर धर्म आराधन की तमन्ना जगेगी, भावना जगेगी। धर्म का माहात्म्य ऐसा है तो मुझे भी धर्म की आराधना करनी चाहिए।

नानूराम जी धर्मपाल बता रहे थे कि एक बार उनको बिच्छू ने काट लिया। बिच्छू ने डंक मार दिया। उन्होंने बताया कि वे डॉक्टर के पास नहीं गए। कोई झाड़-फूँक नहीं कराया। वे सामायिक लेकर बैठ गए और नवकार मंत्र का जाप चालू कर दिया। वे सामायिक में इतने तन्मय हुए कि बिच्छू के जहर का कोई असर नहीं हुआ।

यह उन्होंने अपने जीवन में घटी घटना बताई। जब इस प्रकार का माहात्म्य किसी के जीवन में घटित हो जाता है तो उसकी श्रद्धा बलवती होती है। हालांकि यह श्रद्धा चमत्कार के आधार पर सुदृढ़ हुई है। ज्ञानीजन कहते हैं कि श्रद्धा ज्ञान की ज्योति से संवलित होनी चाहिए। ज्ञान की ज्योति से प्रगाढ़ होनी चाहिए।

''जीवाइनवपयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं''

जीवादि नौ पदार्थों का ज्ञान जिसको होगा उसके सम्यक्त्व में दृढ़ता आएगी। ज्ञान से समकित मजबूत होती है, श्रद्धा मजबूत होती है। चमत्कार से एक बार घटना घट सकती है, बार-बार नहीं। हमने चमत्कार से श्रद्धा कर ली,

किंतु दूसरी बार यदि वैसा नहीं हुआ, वैसा लाभ नहीं मिला तो मन डाँवाडोल भी हो सकता है कि मैंने भरोसा किया, श्रद्धा की, किंतु मुझे तो लाभ ही नहीं मिला। ज्ञान से परिपूर्ण श्रद्धा फलवती बनती है और सुदृढ़ होती है।

हमारी श्रद्धा डाँवाडोल क्यों हो जाती है?

श्रद्धा डाँवाडोल होने का कारण शंका, कांक्षा और वितिगिच्छा आदि भी है। किसी विषय में संशय पैदा हो गया तो भीतर डाँवाडोल की स्थिति पैदा हो सकती है। इसी तरह कोई नाकोड़ा जी गया, भैरू जी के मंदिर गया, कोई तिरुपति गया और उसे कुछ लाभ जैसा हो गया तो उसका मन उधर झुक जाता है। अब आपको क्या करना है? कौन-से भैरू जी के मंदिर जाना है?

सिद्धांत कहता है कि पुण्य प्रबल हुए बिना कोई भी कुछ दे नहीं सकता। देवता में ताकत नहीं कि हमें धनाढ्य बना दें। देवता ने धनाढ्य बना भी दिया तो जरूरी नहीं है कि वह धन हमारे पास टिक जाएगा। पुण्य होगा तो धन टिकेगा। पुण्य नहीं होगा तो आया हुआ धन भी, आई हुई संपत्ति भी हाथ से चली जाएगी। टिक नहीं पाएगी। कोई देवता देने वाला नहीं है। कई लोग मेरे सामने ऐसी चर्चा कर लेते हैं कि ऐसा करने से ऐसा हो गया। ऐसा करने से फायदा हो गया। मैं कभी-कभी विनोद कर लेता हूँ कि फायदा होता है तो राजनेताओं को क्यों नहीं बताया। उनको यह मालूम पड़ जाए कि ऐसा करने से ऐसा फायदा होता है तो क्यों वे घर-घर घूमेंगे और क्यों हाथ जोड़ेंगे! एक देवता को मनाने से काम चल जाए, नाकोड़ा जी, भैरू जी या तिरुपति जाने से कार्य सिद्ध होता हो तो राजनेता घर-घर क्यों घूमेगा, क्यों हाथ जोड़ेगा।

एक ही डॉक्टर की दवाई से फायदा होता हो तो पाँच डॉक्टरों के पास जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी। भले ही राजनेता मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर जाएंगे, किंतु उनको भरोसा किसी एक जगह भी नहीं है कि यहाँ जाने से मुझे टिकट मिल जाएगा। उन्हें भरोसा नहीं रहता कि मैं जीत जाऊँगा और मंत्री बन जाऊँगा, मैं विकास कर पाऊँगा। ऐसा गहरा विश्वास शायद राजनेता को नहीं होगा। स्पष्ट बात है कि मेहनत के बिना सफलता नहीं मिलती। मैं एक बात पूछना चाहूँगा कि जो भैरू जी, नाकोड़ा जी, तिरुपति की बात कर रहा है उसने दूसरा कोई पुरुषार्थ किया या नहीं किया? यदि बिना पुरुषार्थ किए हुए शालिभद्र की तरह घर में पेटियाँ उतरें तो समझ में आएगा कि किसी ने कुछ

दिया है। हालांकि शालिभद्र को भी किसी ने नहीं दिया, उनकी पुण्यवानी की बदौलत देवता का ध्यान उधर आकर्षित हुआ और उनके घर में सामग्रियां पहुँचने लगीं। यदि पुण्यवानी नहीं होती तो न देवता का उधर ध्यान जाता और न घर में पेटियाँ पहुँचतीं।

'धर्म रंग में मन हो रंगा, देख कठौती दिखती गंगा'

हमारा मन धर्म रंग से रँगा होना चाहिए। एक रँगा सियार की बात भी आती है। एक सियार रंगरेज की बालटी में गिर गया। उसका रंग बदल गया। रंग बदलने के बाद जब वह जंगल में गया तो अन्य जानवरों ने कहा, यह कौन-सा जीव आ गया। उसने देखा अच्छा मौका है, सब पर राज कर लूँ। उसने चालाकी की और अपने आपको राजा घोषित कर दिया। राजा घोषित करने के बाद सबसे पहले उसने सारे सियारों को जंगल से बाहर निकाल दिया ताकि वहाँ कोई बोले नहीं। उसे डर था कि कोई उसके पास आकर बोल देगा और मैं भी बोल गया तो सबको मालूम पड़ जाएगा कि यह भी सियार है।

एक बार भूले-भटके रात्रि के अंतिम प्रहर में एक सियार आकर हू-हा, हू-हा करने लगा तो रँगा सियार भी हू-हा करने लगा। उसकी हू-हा सुनकर पास में रहे शेर को पता चल गया कि यह तो सियार है, इसने इतने दिन से हमें धोखे में रखा है। असलियत जानने के बाद सिंह ने उसे मार दिया, खत्म कर दिया।

'धर्म रंग में मन हो रंगा, देख कठौती दिखती गंगा'

हमारा मन धर्म से रंग जाए। एकमात्र धर्म की श्रद्धा ही उसके सामने रहे। आनंदघन जी ने धर्मनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा है-

''बीजो मन मंदिर आणुं नाही...''

रंग लगना बहुत बड़ी बात है। मीरा को रंग लग गया और वह उसमें मग्न हो गईं। जिसको धर्म का रंग लग जाएगा उसकी बात ही निराली हो जाएगी। उसका रूपांतरण हो जाएगा। उसमें बदलाव आ जाएगा। कल तक कुछ नहीं था, किंतु एकदम से बदलाव हो जाएगा। एकदम से बदलाव होना कोई अनहोनी बात नहीं है। किस समय किसका भाग्य जगता है, किस समय पुण्य फलित होता है कुछ नहीं कहा जा सकता।

नीतिकारों ने बताया है कि त्रिया चरित्र और पुरुष का भाग्य कब

बदल जाता है कोई नहीं जानता। अपन देवता की बात नहीं करते। इनसान की बात कर रहे हैं। मानव का भाग्य रातों-रात बदलना संभव है, स्वाभाविक है। कभी हाथों-हाथ बदलाव हो जाता है, तो कभी धीरे-धीरे भी होता है। यदि स्विच लूज हो तो ट्यूब लाइट जलते-जलते जलेगी और स्विच सही होगा तो एक बार दबाने से लाइट जल जाएगी, पंखा चल जाएगा। वैसे ही हमारी बुद्धि यदि प्रखर है, पवित्र है, पावन है, तो एक झटके में बोध प्राप्त हो जाएगा।

रोहिणेय चोर ने भगवान महावीर की चार बातें सुनीं और उसके जीवन में बड़ा बदलाव आ गया। बड़ा रूपांतरण हो गया। कोई सोच नहीं सकता कि एक खूँखार चोर, एक तस्कर साधु बन जाएगा, किंतु वह साधु बन गया। प्रभव चोर पाँच सौ चोरों के साथ इस प्रकार का हमला करता कि सामने वाले को मालूम ही नहीं पड़ता। प्रभव चोर के पास दो विद्याएं थीं। एक विद्या से वह लोगों को सुला देता और दूसरी से ताला तोड़कर कब और कहाँ हाथ साफ करता किसी को मालूम ही नहीं पड़ता। उसे जम्बू कुमार का सान्निध्य मिला और इतना परिवर्तन हुआ कि सभी पाँच सौ चोर साधु बन गए।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. नागदा विराज रहे थे। गुरुदेव का व्याख्यान पूरा हुआ और सीताराम जी बलाई हाथ जोड़कर खड़े हो गए। गुरुदेव ने कहा, क्या बात है? उन्होंने कहा कि गुरुदेव! हम लोग हिंदू हैं। हमारी संख्या एक लाख की है। हिंदू लोग हमसे घृणा करते हैं, नफरत करते हैं। मुसलमान लोग हमको स्वीकारने को तैयार हैं। हम क्या करें? अब आप ही हमारा कल्याण कर सकते हो। सीताराम जी ने कहा कि कुछ ही दिनों में गुराड़िया गाँव में 70 गाँवों के लोगों का कार्यक्रम है। वहाँ 70 गाँवों के प्रतिनिधि लोग आएंगे, आप यदि वहाँ पहुँचकर प्रवचन दें, उद्बोधन दें, उनको ज्ञान दें तो हम निहाल हो जाएंगे।

गुरुदेव ने किसी से कुछ नहीं कहा। उन्होंने एक संत को साथ लिया और चले गए गुराड़िया गाँव। 70 गाँव के लोग वहाँ मौजूद थे। गुरुदेव ने धर्मनाथ भगवान की स्तुति करते हुए उपदेश दिया और कहा कि तुम लोग अपना काला तिलक हटाओ। काला टीका हट जाएगा, तो तुमसे कोई नफरत नहीं करेगा। काला टीका हटाने का मतलब था खान-पान, रहन-सहन सही करना।

व्याख्यान पूरा हुआ ही नहीं कि 70 गाँव के लोग खड़े हुए और

बोले, हमें प्रतिज्ञा करवा दीजिए। गुरुदेव ने कहा, मांस-मछली नहीं खाना, शराब नहीं पीना, व्यसनों का उपयोग नहीं करना। उसके बाद सीताराम जी आदि धर्मपालों में इतनी ललक जग गई कि उन्होंने गुरुदेव को अपने-अपने क्षेत्रों में लगभग साढ़े तीन महीने (अनेक गाँवों में) विचरण करवाया। उस दौरान गुरुदेव ने साढ़े सत्तरह हजार लोगों को प्रतिज्ञा करवाई।

गुरुदेव ने कितने लोगों को सुधारा? हमने कितने लोगों को सुधारा? हमने अपने घर में काम करने वालों का सुधार किया? उनको धर्म का उपदेश दिया या नहीं? उनको धर्म में लगाया या नहीं? कोई हमारे घर में काम करे और उसका खाना-पीना नहीं सुधरे, उसका रहन-सहन नहीं बदले तो यह सोचने की बात है। यहाँ प्रश्नवाचक खड़ा हो जाता है। अँगुली हमारी तरफ ही खड़ी होगी कि क्या कारण है जो इनके घर में इतने समय तक काम करते हुए भी खान-पीन, रहन-सहन नहीं सुधरा।

हमारा थोड़ा-सा प्रयत्न लाभकारी हो सकता है। एक व्यक्ति को भी यदि हमने मांस खाना छुड़ा दिया तो आप विचार करना कि कितने जीवों को अभयदान मिल जाएगा। रोज खाने वाला हो या सप्ताह में एक बार खाने वाला हो या फिर महीने में एक बार खाने वाला हो। चालीस वर्षों तक कोई आदमी मांस खाएगा तो कितने जीवों की हिंसा होगी, कितने जीवों की घात करेगा वह? यदि हमने एक को भी मांस खाना छुड़ा दिया तो कितने जीवों को अभयदान मिल जाएगा? एक व्यक्ति की शराब छुड़ा दी, तो कितने परिवार सुधर जाएंगे। उन परिवारों से कितनी दुआएं मिलेंगी।

रतलाम चातुर्मास के पश्चात् और इंदौर चातुर्मास के पहले लगभग साढ़े तीन महीनों तक गुरुदेव ने बलाई एरिया में विचरण किया और उनको त्याग से जोड़ा। एक युगांतरकारी परिवर्तन हुआ। बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। बलाई जाति के लोगों ने कहा कि अब हमारा काला टीका हट गया, हमारी पहचान किससे हो? गुरुदेव ने कहा- धर्मनाथ भगवान की स्तुति की, तुम धर्म पालन को तत्पर हुए हो इसलिए तुम्हारी पहचान धर्मपाल के नाम से हो जाए।

आज भी उनके बच्चे, उनके लोग सामायिक, संवर और पौषध करने में तत्पर हैं। ज्ञान की दिशा में उनके लिए स्कूल चल रहे हैं। वे ज्ञान-ध्यान सीख रहे हैं।

रैदास की कहानी आपने सुनी होगी? रैदास जूते गाँठने का काम करता था। जूते सिलाई करना, जूते ठीक करना, जूते बनाना उसका काम था। गंगा नदी के तीर पर (किनारे) उसकी दुकान थी। भक्त लोग दूर से आते तो उनके जूते घिस जाते, जूते फट जाते। घिसे और फटे जूतों को ठीक करना, उनकी सिलाई करना, उनको गाँठने का काम रैदास करता था।

एक बार एक ब्राह्मण आया और बोला कि मेरे जूते घिस गए। रैदास बोला, कृपा कराइए। जब रैदास जूते गाँठ रहा था, उसी समय उस ब्राह्मण ने कहा, भाई! गंगा मैया तो तुम्हारे नजदीक हैं, तुम महीने में कितनी बार स्नान करते हो? उत्तर में रैदास ने कहा, अभी तो एक बार भी स्नान नहीं कर पाया। ब्राह्मण बोला, अरे! इतनी नजदीक गंगा मैया और तुमने एक बार भी स्नान नहीं किया! रैदास बोला, क्या करूं, समय ही नहीं मिल पाता।

हमको समय मिलता है या नहीं?

'धर्म री गंगा में हाथ धोय लेनी रे
चादणो हुयो है मोती पोय लेनी रे।।

धर्म की गंगा में हाथ धोएंगे तो हाथ पवित्र हो जाएंगे। यदि धर्म गंगा में हाथ नहीं धो पाए तो हाथ मैले के मैले रह जाएंगे।

ब्राह्मण ने रैदास को उपदेश देना शुरू किया- अरे! तुम कैसे प्राणी हो? धर्म के महत्त्व को नहीं समझ रहे हो। इतनी नजदीक गंगा मैया होते हुए भी तुमने एक बार भी स्नान नहीं किया। 'बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।' तुम क्या जानो नहाने की महिमा।

रैदास ने कहा, आप जो कह रहे हो बिलकुल सही है, किंतु मुझे समय ही नहीं मिल पाता। दिन-रात जूते गाँठते-गाँठते समय ही नहीं मिलता, इसलिए मैं नहीं जा पाता हूँ।

रैदास ने जूता गाँठ दिया और ब्राह्मण जाने लगा तो रेदास ने कहा, ब्राह्मण देव! यह एक मेरी सुपारी आप ले लो। इसको गंगा मैया के हाथों में सौंपना, इधर-उधर पानी में बहाना मत। गंगा मैया का आह्वान करना, गंगा मैया स्वयं लें तो देना, नहीं तो मेरी सुपारी वापस ले आना।

ब्राह्मण देव मन में विचार करने लगा कि बहुत बड़ा भक्त बना है इसके लिए गंगा मैया खाली बैठी हैं जो प्रकट हो जाएंगी। ब्राह्मण देव वहाँ से चले,

नहाए-धोए। उन्हें याद आया कि रैदास ने सुपारी दी है। उसने गंगा मैया का आह्वान किया कि गंगा मैया रैदास ने यह सुपारी दी है और कहा है कि गंगा मैया स्वंय लेने आएं तो देना, नहीं तो वापस ले आना।

कहते हैं कि गंगा मैया का हाथ बाहर निकला। हाथ देखकर ब्राह्मण ने सोचा, अरे! यह क्या बात हुई। खैर, ब्राह्मण ने गंगा मैया के हाथ में सुपारी रखी और जाने लगा। ब्राह्मण जाने लगा तो आवाज आई कि रुको, मेरे भक्त के लिए कुछ प्रसाद लेते जाओ। गंगा मैया ने एक रत्नजड़ित कँगन दिया और कहा कि यह मेरे भक्त रैदास को दे देना। ब्राह्मण ने कँगन लिया और देखा। अब ब्राह्मण देव के मन में क्या विचार आने लगे? उसके मन में विचार आने लगा कि क्या करूं? कोई देखने वाला भी नहीं है, कोई साक्ष्य भी नहीं है, क्या करूं?

''राम नाम जपना, पराया माल अपना''

अभी गंगा में स्नान किया है। पुराने पापों को धोया है। धोया कि नहीं भगवान जाने, किंतु लोग कहते हैं कि गंगा नहा लिया तो हो गया कल्याण। जो जीते जी गंगा नहीं नहाया, मरने के बाद भी यदि उसकी हड्डियाँ गंगा में विसर्जित कर दीं तो हो जाएगा कल्याण। पर यथार्थ में गंगा स्नान करने से यदि कल्याण हो जाए तो उसमें रहने वाली मछलियों का तो कल्याण होना ही है। गंगा में रहने वाले जलचर प्राणियों का तो कल्याण होना निश्चित है। ऐसी बातें चलती रही हैं और चल रही हैं। ऐसा नहीं है कि अभी बंद हो गई। जैनियों में भी ये संस्कार रहे हुए हैं। मरने के बाद फूल कहाँ डालना?

(श्रोतागण बोले- गंगा नदी में डालना)

(एक श्रोतागण बोले- हम तो जाते ही नहीं हैं)

एक आपकी बात नहीं है कि आप जाते हैं या नहीं। खुद नहीं जा पाएंगे तो किसी जाते हुए को फूल दे देंगे और कहेंगे गंगा में बहा देना। कुछ रीति-रिवाज परंपरा से चलते आ रहे हैं। लोग चला रहे हैं। संस्कार की बात है। जैसे संस्कार होते हैं व्यक्ति वैसा ही होता है।

ब्राह्मण देवता का मन ऊँचा-नीचा होने लगा। वह सोचने लगा कि रैदास को क्या पता चलेगा कि गंगा मैया ने उसके लिए रत्नजड़ित कँगन दिया। इतना कीमती कँगन खोजने पर भी नहीं मिलता। ब्राह्मण सोचने लगा कि

इसको घर ले जाऊं, तो मेरे बच्चे खुश हो जाएंगे। वह घर पर ले गया और पत्नी को दिखाया। पत्नी ने सोचा कि बच्चों को दिखाने से क्या फायदा होगा और कहीं बच्चों ने पहन लिया तो लोग सोचेंगे कि कहीं से चोरी करके लाए हैं। ब्राह्मण ने घर पर यह नहीं बताया कि चोरी करके लाया या उठाकर लाया। उसने तो कहा कि गंगा मैया मेरे पर तुष्ट हो गई, मेरी भक्ति पर राजी हो गई और मुझे यह कँगन दे दिया। उसकी पत्नी के मन में विचार आया कि क्यों न इसको राजा को भेंट कर दिया जाए ताकि इसके बदले राजा से बहुत सम्पत्ति मिल जाएगी। उसने सलाह दी और ब्राह्मण ने वह कँगन राजा को भेंट कर दिया, राजा से कहा कि गंगा मैया मेरी भक्ति पर बहुत खुश हुई और उन्होंने मुझे यह प्रसाद दिया है।

राजा ने कँगन को स्वीकार कर लिया और ब्राह्मण को बहुत सारा धन दिया। राजा ने राजकुमारी को बुलाया और उसके हाथ में कँगन पहना दिया। राजकुमारी बहुत खुश हुई। राजकुमारी खेलने के लिए बगीचे में चली गई। वहाँ पर काफी सहेलियाँ आ गईं। सहेलियों ने व्यंग्य किया कि एक हाथ में कँगन है और दूसरा हाथ सूना-सूना है। यह सुनकर राजकुमारी का मुँह फूल गया। गुस्से में आकर उसने राजा से कहा कि मेरी तौहीन हो गई। एक हाथ में कँगन होने और एक में नहीं होने से मेरी सहेलियों ने मुझे चिढ़ाया।

राजा ने कहा कि कोई बात नहीं, दूसरा कँगन भी ले आएंगे। जब ब्राह्मण देवता पर गंगा मैया खुश हुई हैं तो एक बार और खुश हो जाएंगी। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाया और कहा, ब्राह्मण देव! आपके ऊपर तो गंगा मैया खुश हैं। हमारी राजकुमारी नाराज हो गई, उसके लिए दूसरा कँगन गंगा मैया से लाना पड़ेगा। अब ब्राह्मण देवता के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी कि यह मैंने क्या किया। जान-बूझकर आफत मोल ले ली। पहले मालूम होता कि ऐसा होगा तो राजा को कँगन देता ही नहीं।

'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत'

अब हाथ में बात नहीं रही। ब्राह्मण को मन में भय भी हो रहा है कि गंगा मैया क्या कहेंगी। वह सोच रहा है कि मेरी धोखाधड़ी गंगा मैया के सामने खुल जाएगी, लेकिन दूसरा कोई उपाय नहीं है, जाना ही पड़ेगा।

ब्राह्मण गंगा मैया के पास गया, उनसे अरदास किया। गंगा ने उसको

फटकारा। कहा कि तू धूर्त है। तुमने ब्राह्मण होकर धोखाधड़ी की। तुम्हें रैदास ही बचा सकता है। ब्राह्मण रैदास के पास आया और बोला, भाई! कैसे ही करके मुझे बचा लो, मेरी जान जोखिम में पड़ गई है। रैदास ने कहा, क्या हुआ तो ब्राह्मण ने सारी कहानी सुना दी कि गंगा मैया ने कँगन दिया। मेरा मन विचलित हो गया और मैंने वह कँगन राजा को भेंट कर दिया। अब राजा एक और कँगन मँगवा रहा है। मेरी जान खतरे में है। जैसे-तैसे करके तू गंगा मैया को राजी कर। तुम पर वह राजी होंगी।

रैदास ने कहा, ब्राह्मण देव! कोई बात नहीं, आप घबराओ मत। रैदास कठौती में हाथ डाला और क्या मिल गया?

उसे दूसरा कँगन मिल गया। तब से यह कहावत चालू हो गई कि

'मन चंगा तो कठौती में गंगा'

इसलिए कहा गया है-

'धर्म रंग में मन हो रंगा, देख कठौती दिखती गंगा'

रैदास ने यह नहीं कहा कि आपने मेरे साथ धोखाधड़ी कर ली। रैदास को कँगन से कोई लेना-देना नहीं था। उसने तो यह सोचा कि ब्राह्मण कह रहा है तो मैं भी गंगा मैया को अपनी तरफ से एक भेंट दे दूँ। यह सोचकर उसने ब्राह्मण से कहा कि मेरी भेंट गंगा मैया को दे देना।

धर्म से जिसका मन रंग जाएगा वह चंगा रहेगा। उसके मन में लोभ-लालच नहीं रहेगा। खाली धर्म की औपचारिकता करते रहेंगे तो जैसे ब्राह्मण देव का मन डाँवाडोल हुआ वैसे ही हमारा मन डाँवाडोल होता रहेगा। वैसे कहने में यह कहते हैं कि

'देख पराई चूपड़ी, मत ललचावे जीव'

दूसरों की थाली में चुपड़ी हुई रोटी देखकर मन ललचाए नहीं। मन में यह नहीं आए कि मेरी रोटी लूखी है, मुझे भी चुपड़ी रोटी मिले। मेहनत की लूखी रोटी भी लाभकारी होती है जबकि अनैतिक तरीके से मिली चुपड़ी रोटी भी पेट में गड़बड़ी कर देगी। यह निश्चित है कि अनैतिकता से कमाया हुआ धन टिकता नहीं है। अनीति का धन शरीर को नुकसान करने वाला होगा। मन को गड़बड़ करने वाला होगा।

आज भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में बीमारियाँ फैली हुई हैं। बीमारियों

का कारण क्या है? बीमारियों का कारण है हमारा रहन-सहन। हमारा रहन-सहन सही नहीं है। साथ ही साथ हमारी कमाई का तरीका सही नहीं है। हम अनीति के सहारे चल रहे हैं। झूठ, छल-कपट में हमारी मति काम कर रही है। हमारी बुद्धि दूसरों के धन को हड़पने में रहती है। आपकी नीयत ऐसी नहीं भी हो, किंतु दिमाग में भी ऐसा लेकर चलेंगे तो स्वस्थ नहीं रह पाएंगे। मन की रुग्णता बढ़ेगी। उसका असर शरीर पर आएगा तो शरीर भी बीमार पड़ेगा।

उधर सुनंदा कर्तव्य पथ पर डटी हुई है। उसका स्पष्ट मंतव्य है कि कभी भी अनीति का कार्य नहीं करना।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार
मात-पिता को वंदन करती, आशीर्वाद से घट को भरती
सामायिक सुखकार, भविकजन...

सुनंदा का नित्य का क्रम था- उठना, शारीरिक चिंता निवृत्ति के बाद सामायिक करना, स्वाध्याय करना। माता-पिता का चरण स्पर्श करना। आशीर्वाद लेना।

अब संस्कृति में परिवर्तन हो गया है। बदलाव हो गया है। माता-पिता के चरणों की तरफ झुकते जरूर हैं, किंतु हाथ भी पैरों तक नहीं पहुँचता, सिर पहुँचाने की बात तो दूर ही हो गई। माता-पिता के चरणों तक सिर पहुँच जाएगा तो बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। कभी-कभी लोग कहते हैं कि आशीर्वाद दीजिए। आशीर्वाद माँगने से नहीं मिला करता। हमारा कर्म, हमारा कार्य या हमारी जीवनशैली ही आशीर्वाद दिलाने वाली होगी। एक कहावत है-

'मैं कांई आशीष दूं, म्हारी आंतड़िया आशीष देई'

यदि माता-पिता की अँतड़ियों को हमने ठंडा किया है, शीतल किया है तो बिना माँगे उनके भीतर से आशीर्वाद आएगा। वैसे कहा जाता है- पूत कपूत हो सकता है, किंतु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती। बेटा कैसा भी व्यवहार करे, किंतु माता-पिता रहमदिल हुआ करते हैं।

एक हकीकत घटना है, गुजरात की घटना है। एक घर में माता बहुत दुःखी हो गई। वह कुछ भी कहती उसके बेटा-बहू सुनने को तैयार नहीं। उसने सोचा क्या करूं, बड़ी मुसीबत हो गई। ऐसे जीवन कैसे बिताऊँगी? मौत भी

आ नहीं रही है। उसने सोचा कि मौत आ जाए तो यहाँ से छुट्टी हो जाए।

एक बार उसने एक परिचित से बात की। परिचित ने कहा कि वृद्धाश्रम में तुम्हारी व्यवस्था कराई जा सकती है। मैं व्यवस्था कर सकता हूँ। सुंदर व्यवस्था हो जाएगी।

उसने कहा तुम्हारा भला होगा, मेरी व्यवस्था करा दो।

वृद्धाश्रम में ज्यादा गुंजाइश नहीं थी। वह पहले से भरा हुआ था। एक सीट खाली थी तो उसके कहने से बात बन गई और माता जी को भरती करवा दिया। दूसरे दिन अखबारों में खबर आ गई कि अमुक सेठ की माँ वृद्धाश्रम में।

अखबार में खबर आने के बाद लोगों के फोन उसके बेटे के पास आने लगे कि बात क्या है? फोन पर फोन आने लगे। खबर फैल गई कि अमुक सेठ की माँ वृद्धाश्रम में है। परिजनों के फोन आने लगे कि क्या बात है? क्या हो गया, कैसे हो गया? ऐसे कैसे हो गया? वह किस-किसको जवाब दे। उसकी बड़ी बदनामी हो गई। बेटा वृद्धाश्रम जाकर माँ के पैर पकड़कर झूठ-मूठ के आँसू बहाने लगा। कहने लगा कि तुम ऐसे-कैसे आ गई, बिना बताए आ गई। मुझे रातभर नींद नहीं आई। वह बहाने बनाने लगा। वह कहने लगा कि तुम्हारी पुत्रवधू भी बहुत दुःखी हो रही है। यह भी कहा कि हम नालायक हैं, हमारे से गलती हो गई। हमारी इज्जत तुम्हारे हाथ में है, तुम वापस घर चलो।

माँ का मन पिघल गया। माँ घर जाने को तैयार हो गई। घर जाने की तैयारी करके वृद्धाश्रम के अधिकारी से बात की तो उन्होंने कहा, देखो! हमारे पास ज्यादा सीट नहीं है। यदि तुम वापस आना चाहोगी तो हमारे पास कोई गुंजाइश नहीं होगी। माता ने कहा, कुछ भी हो, मेरा बेटा रो रहा है, मैं बेटे को दुःखी नहीं देख सकती। वह घर आ गई। घर आने के बाद उसकी जो फजीहत हुई, उसके साथ जो दुर्व्यवहार हुआ उसका बयान करना बहुत कठिन है। वह फिर वृद्धाश्रम में गई तो वहाँ जगह नहीं थी। बहुत मुश्किल से उसने जिंदगी व्यतीत की। उसका जीना हराम हो गया। इसलिए कहा गया है- बेटा कपूत भी हो जाए, किंतु माता कुमाता नहीं हो सकती।

माता-पिता के मन में संतान के प्रति बहुत जल्दी करुणा का भाव आ जाता है। वे अपनी संतान को दुःखी नहीं देख सकते। वे स्वयं दुःखी हो सकते हैं, किंतु संतान को दुःखी नहीं देखना चाहते। अच्छे संस्कार होंगे तो जल्दी से

ऐसी बातें क्यों बनेंगी! इसलिए संत महात्मा समय-समय पर आपसे कहा करते हैं कि संतान को धार्मिक शिक्षा दो। धर्म के नजदीक जाने पर संस्कार मिलेंगे। दीक्षा लेना, नहीं लेना आगे की बात है।

यह निश्चित है कि हरेक व्यक्ति दीक्षा नहीं ले सकता। पुण्य का योग होता है तो दीक्षा की भावना जगती है। भावना जगे तो अच्छी बात, नहीं तो कम-से-कम एक अच्छा श्रावक, अच्छा गृहस्थ बनें। पूरे परिवार को साथ लेकर चलें। सबके साथ प्रेम का व्यवहार रखें। धार्मिक आराधना होगी तो शांति मिलेगी। हम पैसों के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। कुछ भी करने से पैसे तो मिल जाएंगे, किंतु उससे शांति कभी नहीं मिलेगी। पैसा मिल सकता है, प्रशंसा मिल सकती है, किंतु पैसों से प्रसन्नता नहीं मिलेगी। प्रसन्नता के लिए आपको अपनी जीवनशैली में परिवर्तन करना पड़ेगा।

स्वाध्याय उसकी दैनिक चर्या करती दुखियों की परिचर्या

मिलता अन्तरतोष, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

सुनंदा माता-पिता को प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त करती। यह उसका नित्य का क्रम था। सामायिक करना उसका रूटीन था। हमारा भी यह लक्ष्य रहना चाहिए कि प्रतिदिन कम-से-कम 15 मिनट धार्मिक पुस्तक का अध्ययन करें। भले एक ही किताब को दूसरी-तीसरी बार पढ़ें। जितनी बार पढ़ेंगे, आपको कुछ नया मिलेगा। इसलिए 15 मिनट ध्यान लगाकर धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन होना चाहिए।

बहुत-से लोग धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करते होंगे। जो नहीं कर रहे हैं उन्हें भी आज से ऐसा लक्ष्य बनाना चाहिए। जैसे सुबह चाय-नाश्ता या जो भी करते हैं, वैसे ही रोज दिन की शुरुआत 15 मिनट के स्वाध्याय से हो। धार्मिक ग्रंथों से हो। जब भी समय मिले, करें।

दुखियों का दर्द दूर करने के लिए, उनकी परिचर्या करने के लिए सुनंदा सदा तैयार रहती थी। उससे उसको बड़ा आनंद आता था। उसको दूसरों की सेवा करके, दूसरों को साता पहुँचाकर बड़ी आत्मसंतुष्टि मिलती।

हम दूसरों को बताने के लिए, अहसान जताने के लिए सेवा नहीं करें। दिल से करें। दिल से सेवा करेंगे, दुखियों का दर्द दूर करेंगे तो आपके अन्तर में संतोष पैदा होगा। आत्मसंतुष्टि मिलेगी। यह लाभ आपको ही होने वाला है।

यदि हम सोचें कि सेवा करके दूसरों पर उपकार कर रहे हैं तो ऐसा सोचना गलत होगा। हम सेवा करके किसी पर अहसान नहीं कर रहे हैं। अपना ही उपकार कर रहे हैं। अपना ही उपकार सोचकर सेवा करेंगे तो लाभदायी होगी। उस सेवा के परिणामस्वरूप आत्मसंतुष्टि मिलेगी। आत्मसंतोष मिलेगा।

सुनंदा आत्मतोष प्राप्त करते हुए अपने जीवन को आगे बढ़ा रही थी। आगे का प्रसंग क्या बनता है यह तो समय के साथ विचार करेंगे।

श्री गगन मुनि जी म.सा. की आज 27 की तपस्या है। मासखमण के बहुत नजदीक आ चुके हैं। कितने कदम दूर रह गए?

(श्रोतागण बोले- तीन कदम दूर हैं)

एक, दो, तीन। वन, टू, थ्री और क्या हो जाएगा?

(श्रोतागण बोले- मासखमण हो जाएगा)

कब होगा?

उपवास से चालू करेंगे तो मासखमण होगा। श्रावण सुदी पंचम को मासखमण का घर कहा जाता है। अभी से आप ध्यान में लेना, ज्यादा दूर नहीं मासखमण के एक सप्ताह बाकी होगा। लक्ष्य रहे कि उस दिन उस भाव से उपवास हो। यदि अनुकूलता रही तो आगे बढ़ेंगे, नहीं तो मिच्छा मि दुक्कडं। नहीं हो तो उपवास का पारणा कर सकते हैं और यदि हो जाए तो बेला-तेला करना।

''करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान''

करते-करते अभ्यास हो जाएगा। थोड़े दिन और आगे बढ़ेंगे तो क्या हो जाएगा?

(श्रोतागण बोले- मासखमण हो जाएगा)

मासखमण का तप हो जाएगा। आज गगन मुनि जी म.सा. की 27 की, श्री सुभग श्री जी म.सा. की 28 की, श्री खंतिप्रिया जी म.सा. की 26 की, श्री चंदना श्री जी म.सा. की 14 की तपस्या है। श्रीमती सरोज जी कांठेड़ की भी आज 27 की तपस्या है। वया बाई जी की 21 की तपस्या है। पीछे कुछ भाई और बहनें आगे बढ़ रहे हैं। ग्यारह तक खतरा रहता है। अठाई करते हैं, ग्यारह करते हैं। ग्यारह की घाटी पार होते ही पंद्रह की घाटी आती है। पंद्रह हुए तो लगता है अब तो ढलान है, अब घाटी नहीं है। पंद्रह के बाद आशा रहती है

कि मासखमण हो जाएगा। ग्यारह तक पहुँचने के बाद सीधे सोलह का प्रत्याख्यान ले लेना ताकि पंद्रह की घाटी पार हो जाए और फिर क्या देर लगेगी? अगर पंद्रह का पारणा करेंगे तो पंद्रह दिन पारणे में लग जाएंगे, इससे बढ़िया है पंद्रह दिन आगे बढ़ेंगे तो मासखमण हो जाएगा। हम अपनी भावना बढ़ाएं। यथाप्रसंग, यथावसर अपना लक्ष्य बनाएं। धर्म-ध्यान से, ज्ञान-ध्यान से, संस्कारों से अपने आपको धन्य करेंगे तो आगे बढ़ेंगे।

13 जुलाई, 2023

11

धर्म मर्यादा लक्ष्मण रेखा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

व्यक्ति सुखी होना चाहता है। सुखी होना उसकी आकांक्षा है। सुखी होना उसकी चाह है। वह सुख की खोज कर रहा है। सुख चाह रहा है। धर्म उसे सुखी बनाता है।

व्यक्ति सुखी कब होगा? सुखी होने का उपाय क्या है? सुख पाने का उपाय क्या है? सुख पाने का उपाय हमें समझना होगा।

'धर्म भक्ति है लक्ष्मण रेखा, कभी ना करना उसको अनदेखा'

हम अपनी मर्यादा में रहेंगे तो सुख मिलेगा। मर्यादा का उल्लंघन दु:ख को बुलाने वाला होता है। जो जिसमें जी रहा है वह अपनी मर्यादा का पालन करे। साधु जीवन की अपनी मर्यादाएं होती हैं। श्रावक की अपनी मर्यादा होती है। श्रावक, साधु जीवन की मर्यादाओं का पालन नहीं कर सकता और साधु अपनी मर्यादाओं से नीचे ना उतरे। मर्यादा का पालन होगा तो सुख ही मिलेगा, दु:ख नहीं। मर्यादा से च्युत होते ही, मर्यादा को अनदेखा करते ही दु:ख पैदा होता है या हम दु:खी होते हैं।

सीता की भावना ऊँची थी कि मेरे घर आया हुआ कोई भी अतिथि, कोई भी सन्न्यासी खाली नहीं जाए। उसको मालूम नहीं था कि सन्न्यासी के वेष में धूर्त भी घूम रहे होंगे। सीता की भावना पवित्र थी, शुद्ध थी और उसने लक्ष्मण रेखा के बाहर पाँव रख दिया। हालांकि यह बात रामायण में बहुत जोर-शोर से बताई जाती है, किंतु समीक्षा करने वाले शायद ऐसा बता रहे हैं

कि चार सौ साल पहले की रामायण में यह घटना नहीं थी। रामायण में यह घटना थी या नहीं थी, हम उसकी समालोचना नहीं कर रहे हैं। कैसा भी रहा होगा, किंतु इससे प्रेरणा अवश्य मिलती है कि मर्यादा में रहना चाहिए। मर्यादा छोटी-से-छोटी भी हो सकती है और बड़ी-से-बड़ी भी। वैसे छोटी मर्यादा छोटी नहीं, बड़ी ही होती है। मर्यादाओं का पालन अवश्य होना चाहिए।

श्रावक के बारह व्रतों में यह बताया गया है कि कि कूड़ा तौल-माप नहीं करना। कूड़ा लेख नहीं लिखना। चोर की चुराई वस्तु नहीं लेना। चोर को सहायता नहीं देना। ये मर्यादाएं हैं। इन मर्यादाओं का पालने करेंगे तो दुख क्यों आएगा! जब हमारी आँखों में लोभ तैरने लगता है तो आँखें लालची बन जाती हैं। तब वह दाँव खेलने लगती है। व्यक्ति सोचता है कि कौन देख रहा है उसे।

एक गुरु ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए सोचा। वे देखना चाहते थे कि किसने कितनी शिक्षा ग्रहण की और दी गई शिक्षा किसने किस रूप में स्वीकार की है। उन्होंने शिष्यों को एक-एक कबूतर देकर कहा, बेटा! जहाँ कोई नहीं देखे वैसी जगह पहुँचकर इसकी गरदन मरोड़ देना।

वे कबूतर नकली थे या असली, यह अपनी चर्चा की बात नहीं है। वे कबूतर नकली भी हो सकते हैं।

एक शिष्य कुछ दूर गया, इधर-उधर देखा। उसे कोई नजर नहीं आया तो उसने कबूतर की गरदन मरोड़ दी और गुरु के पास आया। गुरु ने उसको धन्यवाद दिया। गुरु का मन भीतर से दुःखी हो रहा है, किंतु उन्होंने उससे कहा, वाह! तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया।

दूसरा शिष्य भी अवसर की तलाश में इधर-उधर घूम रहा था। काफी देर के बाद वह भी कबूतर की गरदन मरोड़कर आ जाता है। तीसरा शिष्य कबूतर को लेकर गुरु के पास आता है। गुरु ने ऊपरी स्तर पर आक्रोशित होते हुए, क्रोध दिखाते हुए कहा, तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। उसने कहा, गुरुदेव! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए गया, किंतु आपकी शर्त थी कि जहाँ कोई नहीं देखे, ऐसी सुनसान जगह पर कबूतर की गरदन मरोड़ देना। मैं जहाँ भी गया, मेरी दो आँखें मुझे देख रही थीं। कबूतर की दो आँखें मुझे देख रही थीं और भगवान के ज्ञान की आँखें भी मुझे देख रही थीं। मुझे ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ कोई भी नहीं देख रहा हो। जहाँ कोई देखने वाला नहीं हो।

हम सोच लेते हैं कि हमें कोई नहीं देख रहा है, किंतु हम स्वयं देख रहे हैं और सी.सी.टी.वी. कैमरा देख रहा है या नहीं?

(श्रोतागण बोले- सी.सी.टी.वी. कैमरा देख रहा है)

सेटेलाइट देख रही है या नहीं?

(श्रोतागण बोले- सेटेलाइट भी देख रही है)

सी.सी.टी.वी. की आँख, सेटेलाइट की आँख आप पर लगी हुई है। आज के युग में इस बात को समझना बहुत आसान हो गया। सेटेलाइट आपको कहीं-से-कहीं तक कोई रुकावट पैदा नहीं करती। सी.सी.टी.वी. कैमरा आपको रुकावट पैदा नहीं करता, किंतु आप जो भी करते हैं वह सारा उसमें कैद हो जाता है। आप अच्छा कर रहे हो तो भी उसमें कैद हो जाएगा और बुरा कर रहे हो तो भी कैद हो जाएगा। वैसा ही भगवान का ज्ञान है। उस ज्ञान में हमारी सारी बातें झलक रही हैं। हम जो सोचते हैं, जो भी करते हैं अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान उन सारी बातों के साक्षी हैं।

हम कभी भूल जाएं, चूक जाएं, हमें कभी याद रहे या नहीं, किंतु सिद्ध भगवान के ज्ञान में ऐसा कोई भी पल, कोई भी क्षण नहीं है जिसकी उनको जानकारी नहीं हो। खाली एक आदमी की नहीं, दुनिया की सभी आत्माओं का पूरा लेखा-जोखा उनके ज्ञान में प्रति समय, प्रति क्षण बनता रहता है। इसलिए यह तो हो ही नहीं सकता कि हमें कोई नहीं देख रहा है। हम अपनी आँख बंद कर लेंगे कि मेरी आँख नहीं देखे, किंतु परमात्मा के ज्ञान, परमात्मा की आँख से कुछ छिपा नहीं रहेगा। हम यदि मर्यादा को भंग करेंगे, तो कोई जाने या नहीं जाने, हम तो जान ही रहे होंगे कि यह गलत काम कर रहा हूँ।

एक लकड़हारा को संतों का संयोग मिला। संतों ने उसे उपदेश दिया और कहा, भाई! जीवन में कोई-न-कोई प्रतिज्ञा होनी चाहिए। छोटा भी नियम हो पर नियम होना ही चाहिए। एक छोटा-सा नियम भी जीवन की रक्षा करने वाला बन जाता है।

उस लकड़हारे ने कहा, महाराज! हम तो किसान हैं, काम करने वाले हैं। हमें समय का अता-पता नहीं रहता।

संतों ने कहा, सोच लो, कोई-न-कोई प्रतिज्ञा ले लो। संत ने कहा, ऐसा करना महीने में एक दिन स्त्री संसर्ग नहीं करना। उसने कहा, यह तो ठीक

है, यह तो हो जाएगा। बाकी मुझे दिन मालूम नहीं रहेगा पूर्णिमा के दिन करा दीजिए। जिस दिन पूरा चाँद उगेगा उस दिन स्त्री संसर्ग नहीं करूंगा। कहानी बहुत लम्बी है। एक समय के बाद उसके पास अच्छे पैसे हो गए, काफी यार-दोस्त बन गए। एक बार उसे यार लोग वेश्या के कोठे पर ले गए। अच्छे पैसे ले वेश्या के महल में पहुँच गए। आरामदायक पलंग पर उसको बैठाया गया। जिससे उसको संसर्ग करना था वह उसकी अच्छी खातिरदारी कर रही थी, मेहमानगीरी कर रही थी। लकड़हारे ने कहा कि खिड़की बंद क्यों है? वेश्या ने कहा, ठण्डी हवा बहुत आती है, इसलिए बंद है। लकड़हारे ने खिड़की खोली तो उसने पूर्णिमा का चाँद देखा। उसने सोचा मेरा तो आज नियम है।

वह बहाना बनाकर वहाँ से निकल गया। वेश्या इंतजार करती रही, किंतु वह वापस लौटकर नहीं गया। उसने नियम की अपनी दृढ़ता रखी। घटना आगे बताती है कि उसको ठोकर लगी, नीचे गिरा इतने में एक हथनी आती है और उसके गले में माला डाल देती है। उसको वहाँ का राजा बना दिया जाता है। किसी आदमी का पुण्य कैसे खिलता है, कैसे उसका पुण्य प्रकट होता है ये बात हम ऐसे कथानकों से समझते हैं।

चोटी का पसीना एड़ी तक बहा देने पर भी किसी को खाना-पीना नसीब में नहीं होता। हालांकि अब ऐसी स्थिति भारत में कम रही होगी, किंतु विश्व में ऐसी स्थिति आज भी मौजूद है और कइयों का पुण्य इतना प्रबल होता है कि एक चीज खाने की इच्छा होती है तो चार चीजें सामने आती हैं। उसकी मनुहार होती है, आग्रह होता है और वह खा नहीं पाता है। यह पुण्य का खेल है।

किसी जमाने में, किसी जन्म में जिसने नियम-मर्यादा का पालन किया होगा उसका परिणाम आज उसके सामने आ रहा है। इसलिए जीवन में कोई-न-कोई मर्यादा अवश्य होनी चाहिए, जो लक्ष्मण रेखा बनकर रक्षा करने वाली बन सके। हमारा नियम, हमारी मर्यादा हमारा रक्षा कवच बनेगा।

नदी का पानी तटबंधों के बीच में चलता है तो लम्बी दूरी तय करता है। धीरे-धीरे वह समुद्र तक पहुँच जाता है। बीच में बहुत से खेतों को पानी मिलता है। उससे फसल होती है, पैदावार होती है। उसी नदी का पानी यदि तटों को तोड़कर बाहर बहने लगे तो बाढ़ का रूप ले लेगा। तब वह न फसल देने वाला होगा और न ही समुद्र तक यात्रा कर पाएगा, बल्कि तबाही करनेवाला होगा।

आज एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक माल जाता है। कन्याकुमारी से कश्मीर तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक गाड़ियों से, ट्रकों से माल पहुँचाया जाता है। जिस वायु को टायर में भर दिया जाता है वह संगठित होकर, मर्यादित होकर हजारों टन माल इधर से उधर ढोने में समर्थ होती है। वही हवा यदि बाहर निकाल दें, तो उसका क्या अस्तित्व रहेगा? इससे समझा जा सकता है कि मर्यादा-अनुशासन जीवन की थीम है।

भगवान महावीर कहते हैं-

''अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो''

अर्थात् अपनी आत्मा का ही दमन करना चाहिए। दमन का अर्थ कभी-कभी यह लिया जाता है कि प्रेशर से कंट्रोल करके रखना, किंतु यहाँ दमन का अर्थ साधना से दमित करना लिया गया है। साधना से उसको दमित करना। इस प्रकार दमित करना या इस प्रकार से साध लेना कि वह आपके इशारे पर चले।

बंदर का नृत्य दिखाने वाले उसे इतना साध लेते हैं कि जैसा इशारा होता है वैसा ही वह काम करता है। और तो और साधने वाला सिंह को साध लेता है। पर अपने मन को साध लेना बहुत बड़ी बात है। अन्य किसी को हमने साध लिया और अपने मन को नहीं साध पाए, अपने मन को नियंत्रित नहीं कर पाए तो कभी भी फेल हो सकते हैं। मन सधा रहेगा तो हर जगह उत्तीर्ण होंगे। कहीं पर भी फेल होने की नौबत नहीं आएगी। नियंत्रित मन बहुत ऊँचाई देने वाला होता है।

आज तारीख कितनी है?

(श्रोतागण बोले- 14 तारीख है)

आज भारत क्या करने जा रहा है?

(कुछ श्रोतागण बोले- आज भारत चंद्रयान-3 छोड़ रहा है)

यह अनुशासन से होगा या बिना अनुशासन के?

(श्रोतागण बोले- अनुशासन से होगा)

यदि रॉकेट वगैरह सही रूप से ऊपर नहीं चढ़ाएंगे तो यान की सफलता संदिग्ध रहेगी। सारे कार्य अनुशासन से होंगे, नियम से होंगे तो कार्य की सफलता में बाधा और विघ्न पैदा नहीं होगा। अनुशासित मन ऊँचाई प्रदान करने वाला होता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान महावीर ने अपने आपको नियंत्रित किया। ऐसे बहुत से नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने अपने मन को नियंत्रित किया और सिद्धि को प्राप्त कर लिया। साधना से जब मोक्ष रूपी सिद्धि को भी प्राप्त किया जा सकता है तो दूसरी सिद्धियों का तो कहना ही क्या! जिन्होंने भी ऊँचाइयाँ प्राप्त की उन्होंने स्वयं को नियंत्रित किया। यदि हम अपने आपको नियंत्रित करते हैं तो शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, शक्ति का जागरण होता है। हमारे भीतर शक्ति प्रकट हो जाती है। वही शक्ति ऊँचाइयाँ दिलाने वाली बनती हैं।

हम अपने आप ही अपना विस्तार करने लगते हैं, फैलाव करने लगते हैं तो शक्ति संचित नहीं हो पाती। आज लोग सोचते हैं कि विज्ञापन करो, खूब विज्ञापन करो, किंतु जंगल में रहने वाले फूल को विज्ञापन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वह अपने आप में सुगंध पैदा करता रहता है। हवा का एक हिलोरा आता है और फूल की सुगंध को दूर तक फैला देता है। वह फूल कभी विज्ञापन के लिए नहीं जाता।

हमारी मति में, हमारी दृष्टि में यह महत्त्वपूर्ण हो गया है कि विज्ञापन होना चाहिए। प्यासा व्यक्ति कुएं के पास जाएगा, कुआँ प्यासे के पास नहीं जाता। आज विज्ञापन के युग में कुएं का पानी घर-घर पहुँच गया। पानी घर-घर पहुँच तो गया, किंतु इसका उपयोग हो रहा है या दुरुपयोग? इसका उपयोग सही हो रहा है या गलत?

(श्रोतागण बोले- गलत हो रहा है)

पहले लोग कुएं से पानी भर करके सिर पर उठाकर लाते थे। वे लोग पानी की कीमत समझते थे, क्योंकि एक घड़ा पानी लाने में बहुत मेहनत करनी पड़ती थी, काफी मशक्कत करनी पड़ती थी। आज बहुत सुविधा हो गई है। लैट्रिन में गए तो वहाँ टोटी चलाई और पानी आ गया। शिंक पर गए तो वहाँ टोटी घुमाई और पानी आ गया। किचन में गए, बाथरूम में गए तो वहाँ टोटी चला ली। खाली एक टोटी घुमाने से पानी आ जाता है। पहले कहीं भी पानी ले जाना होता तो बाल्टी में ले जाते थे।

पहले लोगों को मेहनत करनी पड़ती थी, इसलिए वे पानी की कीमत समझते थे। जो चीज सुविधा से मिल जाती है, उसकी कदर नहीं होती। प्राय:

ऐसी दृष्टि बन गई है। इस दृष्टि का परिमार्जन करना जरूरी है। हमें पानी की कीमत समझनी चाहिए।

आज की सरकार ने सबके घर लाइट और पानी की सुविधा दे दी है। इस सुविधा ने बहुत सारी दुविधाएं खड़ी कर दी हैं। अनेक दुविधाओं से आज आदमी जूझ रहा है। मेहनत कम हो गई। फ्री की चीजें ज्यादा हो गईं, इसलिए सारी दुविधाएं खड़ी होती हैं। पानी का विज्ञापन हुआ, लाइट का विज्ञापन हुआ। घर-घर लाइट, घर-घर पानी दिया गया। इसका फायदा नहीं हुआ, इसका दुरुपयोग ज्यादा हुआ। आज कहा जा रहा है- पानी बचाओ। क्यों कहा जा रहा है पानी बचाओ? क्योंकि पानी का दुरुपयोग विशेष हो रहा है।

भगवान महावीर की शिक्षा लगभग 2500 वर्ष पहले हमें प्राप्त हो गई थी। भगवान ने कहा, पानी ही नहीं किसी भी चीज का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। अजीवकाय असंयम नहीं होना चाहिए। सजीव प्राणी की हिंसा तो करना ही नहीं। चेतन प्राणियों का तो अतिपात करना ही नहीं, बल्कि जड़ पदार्थों का भी दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।

मुझे जेठमल जी सेठिया की बात याद आ रही है। वे सम्पन्न परिवार से थे। बीकानेर के रहने वाले थे। उनके घरवाले जो साबुन काम में लेते, छोटा भाग बचने पर उसे इधर-उधर डाल देते। जेठमल जी उस साबुन के टुकड़े को बेसिन पर हाथ धोने के लिए रखते। लोग कहेंगे कि अरे! कितना कंजूस आदमी है, किंतु यह कंजूसी नहीं है। यह उसका सही उपयोग है। किसी भी वस्तु का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। कई लोगों की आदत होती है थोड़ा-सा भोजन जूठा छोड़ने की। उन्हें लगता है कि यदि जूठा नहीं छोड़ेंगे तो लोग कहेंगे कि कैसा भुक्खड़ है, थाली ही चाट गया।

आप देखना, अधिकतर लोग चाय पीने के बाद कप में एक घूँट चाय छोड़ देते हैं। उसका क्या उपयोग होगा? वह जहाँ डाली जाएगी वहाँ चीटियाँ आएंगी, जीवों की विराधना होगी। धर्म की पहचान होगी तो ये काम नहीं होंगे। जब तक धर्म की पहचान नहीं है, तब तक व्यक्ति उसकी आराधना सही तरह से नहीं कर पाएगा। यदि यह यतना-विवेक नहीं है कि कौन-सी प्रवृत्ति किस रूप में जीव की विराधना करने वाली है तो धर्म की आराधना होना मुश्किल है।

धर्म-धर्म सब कोई कहे, मर्म न जाने कोय।
जात न जाने जीव की, धर्म किस विध होय।।

धर्म नाम का उच्चारण तो हो रहा है, किंतु धर्म के मर्म को नहीं जाना जा रहा है। धर्म के मर्म को नहीं जानने से धर्म की औपचारिकता हो रही है। धर्म की औपचारिकता से धर्म का लाभ नहीं मिल पाएगा। हमारा माइंड, हमारी बुद्धि यतनालीन बनेगी और उसमें हर प्राणी की रक्षा का भाव होगा तो अनर्थ हिंसा नहीं होगी, अन्यथा अनर्थ हिंसा से बचना मुश्किल है।

लोग कैसे अनर्थ हिंसा करते हैं इसे अपने आस-पास नजर डालकर देखा जा सकता है। आप देख सकते हैं कि लोग आधा गिलास पानी पीते हैं और आधा फेंक देते हैं।

क्यों भाई? जितना पानी पीना है उतना ही लेना था। आधा गिलास पानी व्यर्थ में क्यों गया। यदि और पीना होता तो और ले लेते। पानी व्यर्थ में क्यों गया, इस प्रश्न का उत्तर क्या है? पहले पानी ज्यादा क्यों लिया? इसका कोई जवाब नहीं है। हमारी आदत ऐसी ही हो गई है। ऐसी प्रवृत्ति हो गई है। दुरुपयोग की प्रवृत्ति हो गई है। ऐसे में हम धर्म मर्यादा का सही रूप में पालन नहीं कर पाते।

धर्म केवल क्रियाओं में नहीं हो, विचार में भी धर्म होना चाहिए। व्यवहार में भी धर्म होना चाहिए। संस्कारों में धर्म होना चाहिए।

सुनंदा की बात हम सुन रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
उसी नगर में दो भाई रहते, उनको विजय-सुरेश कहते,
बहन शर्मिला जान, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

हमारे सामने सदा दो विचारधाराएं दिखेंगी। एक विचारधारा कहती है कि सभी चीजों का सदुपयोग होना चाहिए। दूसरी विचारधारा मौज-शौक की होती है। खाया-पीया फेंक दिया। उसका परिणाम क्या होगा? पता नहीं कि उसका परिणाम क्या होगा।

मेरा रतलाम चातुर्मास था। अभी की बात नहीं है, 1997 की बात है। तब की बात है जब युवाचार्य की अवस्था में था। गुरुदेव की मौजूदगी की बात है। वहाँ दीक्षाएं होने वाली थीं। वहाँ पर वरघोड़ा निकाला गया। वरघोड़ा

निकला तो लोगों ने खातिरदारी की। बीच में किसी ने कुछ खिलाया, किसी ने कुछ पिलाया। उसी खाने-पीने के दौरान लोगों ने फ्रूटी पी और उसका पैकेट सड़क पर फेंक दिया। आपको पता ही है कि फ्रूटी के पैकेट में छेदकर उसमें पाइप डालकर मुँह से खींचा जाता है। वरघोड़े के बाद उसी रास्ते से मुझे भी हनुमान रूंडी जाना था। जब मैं उधर गया तो बहुत सारे खाली पैकेट सड़क पर बिखरे हुए थे।

यह बताओ कि उस पैकेट में फ्रूटी रहेगी या नहीं! सारी फ्रूटी पाइप से खींची तो नहीं गई होगी। उसमें कुछ तो बच ही जाएगी। उसमें गीलापन तो रहेगा ही। पैकेट में फ्रूटी होने से चीटियाँ उसमें घुस सकती हैं या नहीं? चीटियाँ सोचें कि पैकेट में हम सुरक्षित हैं और ऊपर से किसी गाड़ी का चक्का निकल जाए तो क्या होगा?

भारत के राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपने वक्तव्य में बताया कि भारत के लोग अनुशासित नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। जब वे विदेश की धरती पर उतरते हैं तो वहाँ के कानून-कायदों का पालन करते हैं।

कोई विदेश जाता है तो वह वहाँ के कानून-कायदे का पालन करता है, किंतु भारत में वापस लौटते ही कहीं पर केले का छिलका फेंक देगा, कहीं पर चने का छिलका फेंकेगा, क्योंकि वह सोचता है यह माँ का पेट है। माँ के पेट पर बच्चा लात लगाता ही है। विदेश में अनुशासन का पालन इसलिए करता है कि पालन नहीं करने पर वहाँ बचाने वाला कोई नहीं मिलेगा। भारत में आते ही वही व्यक्ति सोचता है कि सरकार तो हमारे घर की ही है। सारे अधिकारी हमारे परिचित हैं, अपन जैसा चाहेंगे वैसा होगा। यदि सोच ही ऐसी होगी तो अनुशासन की भावना गौण हो जाएगी और लापरवाही होने लगेगी।

खैर, अभी बात है विजय और सुरेश नाम के दो भाइयों की। दोनों की एक बहन थी शर्मिला। सभी एक सेठ की संतान थे। सेठ का स्वर्गवास हो गया था। शर्मिला की शादी सेठ के जीवित रहते हो गई थी। घर में पर्याप्त पैसे थे। शर्मिला की ससुराल के लोग भी पैसे वाले थे। मौज-शौक के अलावा उसको कुछ नजर नहीं आता। यतना, धर्म, कानून, मर्यादा, नीति-नियम से उसको कोई वास्ता नहीं था। बस खाना-पीना मौज मनाना। कंधे पर एक बैग लटका लेती और कहती आज उस सभा में जाऊँगी, कल उस सभा में जाऊँगी, उस

सोसायटी में जाऊँगी। घर का कोई काम नहीं करती। घर का काम करने के लिए नौकर थे।

जो अपने हाथ से काम करती है उसको गृहिणी कहा जाता है, लक्ष्मी कहा जाता है, मालकिन कहा जाता है। गृहिणी अपने हाथ से काम नहीं करेगी तो उसका मन संतुष्ट नहीं होगा। जो अपने हाथ से काम करेगी, अपने हाथ से भोजन बनाकर परिवार वालों को खिलाएगी उसका मन संतुष्ट होगा। उसके परिवार वाले संतुष्ट होंगे। अपने हाथ से काम होगा तो मन को शांति मिलेगी।

नीमच में क्या है मुझे पता नहीं है, क्योंकि नीमच बहुत विकसित नहीं हुआ है। नीमच गाँव और शहर का मिला-जुला रूप है। शहरों में बिना नौकरों के काम नहीं चलता। शहर वालों को नौकर चाहिए। अपनी दो पीढ़ी पहले देखें तो घर में कितने नौकर थे? पहले घरों में गाय-भैंस रखते थे। गाय-भैंस को नीरना-दूहना, उनको बाहर बाँधना, बच्चों को स्नान कराना, स्कूल भेजना, सारा काम बहनें सवेरे जल्दी उठकर करती थीं और घट्टी भी चलाती थीं।

साधुओं की एक सोच थी कि घट्टी चालू हो गई यानी तीन बज गए। गाय-भैंस की आवाज आ रही है मतलब प्रतिक्रमण का समय हो गया। घर से झाड़ू-बुहारी की आवाज आ रही है मतलब प्रतिक्रमण पच्चक्खाने का समय हो गया। अपने आप मालूम पड़ जाता। घड़ी की आवश्यकता ही नहीं होती थी।

आजकल न झाड़ू है, न घट्टी की आवाज आती है। सारी घाटियाँ टल गईं, फिर भी आज की बहनों को टाइम नहीं। पहले सारा काम करते हुए भी बहनों के पास टाइम था। आज युग बदल गया, संस्कार बदल गए। जितना हम काम करेंगे उतना ही हमारा शरीर स्वस्थ रहेगा। मेहनत करने से शरीर नहीं बिगड़ता।

मैं गंगाशहर-भीनासर में था। एक पत्रकार आया और बताया कि भारत की एक सर्वे रिपोर्ट में बताया गया है कि जैनी लोग शरीर से कमजोर हैं। उसने कहा म.सा. आप तपस्या के लिए प्रेरित मत किया करो। उस समय वहाँ पर तपस्याएं बहुत हुई थीं, भरपूर अठाइयाँ हुई थीं। उसने मुझसे कहा कि आप तपस्या के लिए प्रेरित मत किया करो। लोगों का शरीर कमजोर हो जाता है।

मैंने कहा आप ठीक कह रहे होंगे। पर आप बताएं कितने प्रतिशत लोग तपस्या करते हैं? भारत में जैनों की जनसंख्या कितनी है? मान लो एक

करोड़ है, एक प्रतिशत है। एक करोड़ जनसंख्या में मासखमण करने वाले कितने लोग हैं? मासखमण करने वालों की संख्या कितनी है? मासखमण को जाने दो, अठाई करने वाले कितने लोग हैं?

एक प्रतिशत भी तपस्या करने वाले होंगे कि नहीं, कहना मुश्किल है। भारत में श्वेतांबर, दिगम्बर, मूर्तिपूजक, कोई भी हो, इन सब में अठाई होगी तो कितनी होगी? एक लाख भी नहीं होगी। फिर तपस्या से कमजोर कैसे हुए? मैंने कहा, पत्रकार साहब! आदमी तपस्या से कमजोर नहीं होता, काम नहीं करने से कमजोर होता है। जैनों के घरों में ज्यादातर काम करने वाले नौकर होते हैं। भाई-बहन काम कम करते हैं, नौकर काम करते हैं। जब आप काम नहीं करोगे तो शरीर सशक्त कैसे होगा? फिर उनको जिम जाना पड़ेगा, क्या-क्या करना पड़ेगा। और जिम जाने से समाधान नहीं मिलेगा। जिम जाना समाधान नहीं है। अपना काम करो, मेहनत करो फिर देखो शरीर बीमार होता है कि स्वस्थ रहता है! लेकिन काम नहीं होगा। बढ़िया खाना चाहिए। खाने-पीने में हम आगे रहेंगे।

आओ मियां जी छप्पर उठाओ, हम बूढ़े, जवान बुलाओ
आओ मियां जी भोग लगाओ, बिस्मिल्लाह कह हाथ धुलाओ।

भोजन करने के लिए हम तैयार हैं, किंतु काम करने के लिए तैयार नहीं हैं। कहा गया है-

राम नाम को आलसी, भोजन को हुशियार।
तुलसी ऐसे नर न को, बार-बार धिक्कार।।

आप विचार कर लो, आज की बात नहीं है। आदमी खाने-पीने के लिए तैयार है, किंतु राम नाम के लिए, भजन करने के लिए, स्वाध्याय करने के लिए, सामायिक करने के लिए उसके पास फुरसत नहीं है। ऐसी स्थिति में कैसे कल्याण होगा?

कैसे हो कल्याण, करनी काली है,
नहीं होगा भुगतान, हुण्डी जाली है...

जैसे जाली हुण्डी से भुगतान नहीं होता, वैसे ही धार्मिक क्रियाएं भी सार्थक नहीं बनेंगी। बिना मेहनत के शरीर भी स्वस्थ नहीं रहेगा। उस स्थिति में वही होगा जैसा रिपोर्ट में बताया गया है।

शर्मिला धर्म के लिए तैयार नहीं थी। खाना-पीना, मौज-शौक करना उसका काम था। पैसा आदमी को पाप सिखाता है। वह भी उसी दिशा में आगे बढ़ती रही। अब आगे क्या सुनेंगे यह तो समय के साथ विचार करेंगे, किंतु सुंदर संस्कार होगा तो हमारे भीतर उसका रिजल्ट अपने आप आएगा। पैसों से एक बार यह लगेगा कि मैं सुखी जीवन जी रहा हूँ, किंतु उसके पीछे बहुत सारी दुविधा खड़ी मिलेगी। दुविधा से बचने के लिए अपने आपको संस्कारित करना होगा।

तपस्याएं चल रही हैं। श्री गगन मुनि जी म.सा. की आज 28 की, श्री सुभग श्री जी म.सा. की 29 की, श्री खंतिप्रिया श्री जी म.सा. की 27 की तपस्या है, 29 के पच्चक्खाण की हुई हैं, श्री चंदना श्री जी म.सा. की 15 की तपस्या है। सरोज जी कांठेड़ की आज 28 की तपस्या है। वया बाई जी की आज 22 की तपस्या है। और भी कई तपस्याएं चल रही हैं, समय के साथ नाम जानेंगे। हम प्रेरणा लें। अपने आपको यदि लक्ष्मण रेखा में रख लिया, धर्म की रेखा में रख लिया, तो जीवन में उन्नति होगी। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

14 जुलाई, 2023

12

धर्म भक्ति दुर्गति को टारे

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म से क्या-क्या लाभ मिलता है? क्या-क्या सुविधाएं प्राप्त हो पाती हैं? कैसे हमारे दु:ख-द्वंद्व दूर हो जाते हैं इसका दिग्दर्शन इस चालीसा में हो रहा है। इसमें एक पंक्ति आई है-

''धर्म भक्ति दुर्गति को टारे, धर्म भक्ति भव पार उतारे''

इसका मतलब है, धर्म की भक्ति, धर्म की श्रद्धा दुर्गति का निवारण करनेवाली है। जिसने धर्म की आराधना कर ली, आराधना का मतलब है कि जो धर्म में उत्तीर्ण हो गया, वह नरक और निगोद में नहीं जाएगा।

'नरक निगोद में ते नहीं जावे...'

वह जीव नरक-निगोद में नहीं जाएगा। उसके अधिकांश भव मनुष्य और देव के होंगे। मनुष्य से देव और देव से मनुष्य भव प्राप्त होंगे। जघन्य से जघन्य आराधना हो गई होगी तो 15 भव करके वह मोक्ष चला जाएगा। उत्कृष्ट आराधना करनेवाला उसी भव में मोक्ष जा सकता है अथवा तीसरे मनुष्य भव का उल्लंघन नहीं करता। यह धर्माराधना का लाभ बताया गया है।

सद्गति और दुर्गति हमारे हाथ में है। हम यदि सम्यक् आराधना करनेवाले हैं तो दुर्गति से अपनी रक्षा करने में समर्थ बनेंगे। इस संबंध में बहुत-से आख्यान हमारे सामने हैं।

एक आख्यान युगबाहु का भी है। युगबाहु पर मणिरथ ने वार किया। युगबाहु मृत्युशय्या पर था, उसको मणिरथ पर रोष आ रहा था। युगबाहु भयंकर

द्वेष में था। उस समय मदनरेखा उसको सांत्वना देते हुए कहती है- नाथ! आप इस द्वेष का निवारण करो। आपके भाई ने आप पर शस्त्र नहीं चलाए, मेरे कारण शस्त्र चले हैं। अपने मन से उनके प्रति रहा द्वेष दूर करें और चार शरण को स्वीकार करें।

''अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि''

मदनरेखा कहती है- नाथ! आप ये चार शरण स्वीकार करें। इनसे कल्याण होगा। जैसे ही चार शरण सुनाया जाने लगा युगबाहु का मन स्थिर हो गया। वह वहाँ से आयुष्य बंध कर देवगति में चला गया। थोड़ी देर पहले उसके जो भाव चल रहे थे, उसी में आयुष्य बंध किया होता तो दुर्गति में जाने का चांस था, किंतु एक निमित्त बना, धर्म में मन स्थिर हुआ और दुर्गति टल गई। वह दुर्गति में नहीं गया। आप देखें, थोड़े समय की गई आराधना भी उसे दुर्गति से बचाने वाली बन गई।

दो-तीन दिन पहले मैंने रोहिणेय चोर की बात बताई थी। यदि वह उसी अवस्था में काल धर्म को प्राप्त होता तो सद्गति होना कठिन था। अर्जुन माली की बात सामने आती है। उसने 1141 व्यक्तियों की घात की, किंतु धर्म की शरण में आया, धर्म आराधना की ओर छह महीनों में मोक्ष को प्राप्त हो गया।

धर्म में ऐसा कौन-सा रसायन है, उसमें ऐसी कौन-सी ताकत है, जो उसके समीप दुर्गति नहीं आ पाती?

धर्म हमारे मन को त्राण देने वाला होता है। वह मानसिक अवस्था को सुधारने वाला होता है। धर्म कहता है न राग करना और न द्वेष करना। न तुम्हें कोई प्रिय हो और ना कोई अप्रिय हो। राग-द्वेष ही संसार है और उसका शमन धर्म है।

कोई पूछ ले कि आप धर्म क्रिया किसलिए कर रहे हो, सामायिक किसलिए कर रहे हो, उपवास, बेला, तेला, मासखमण किसलिए कर रहे हो, तो आपका उत्तर क्या होगा?

इसका एक ही उत्तर है कि हमारी सारी क्रियाओं का लक्ष्य राग-द्वेष को पतला करने का है, राग-द्वेष को दूर करने का है।

'राग-द्वेष पतला करो, तो पहुँचो निर्वाण'

हालांकि राग-द्वेष पतला करने से निर्वाण नहीं है। निर्वाण होगा राग-द्वेष नष्ट करने पर। ऐसे तो हमारे निर्वाण मुनि जी आपके सामने हैं आपकी रोज क्लास ले रहे हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य भाव से निर्वाण के चार भेद कर दिए जाते हैं। जिसका नाम निर्वाण रख दिया जाए, वह नाम निर्वाण है। निर्वाण की स्थापना कर दी जाए, आकार दे दिया। वह स्थापना से निर्वाण है। भविष्य में निर्वाण को प्राप्त करेगा उसको भी कह सकते हैं कि यह भव्य-द्रव्य निर्वाण है। जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली, निर्वाण प्राप्त कर लिया वह भाव निर्वाण है। जो भविष्य में निर्वाण प्राप्त करेगा उसको भव्य-द्रव्य निर्वाण कहा जाता है। यहाँ कारण में कार्य का उपचार किया गया है। जिसका निर्वाण होना निश्चित है उसी के लिए उक्त कथन किया जाता है। कुछ लोग थोकड़े की बात जानते हैं- भव्य द्रव्य देव। इसका मतलब है जो भविष्य में देव बनेगा या जिसने देव आयुष्य का बंध किया वह भविष्य में देव बनने वाला है। भाव देव वह होगा जो देव गति में रहकर देवत्व का उपभोग कर रहा है।

धर्म, गिरते हुए को थाम लेता है। दुर्गति में जाते हुए को रोक लेता है। धर्म, दुर्गति में जाने से रोक लेता है। बताता है कि तुम्हारा रास्ता दुर्गति का नहीं, सद्गति का है। एक बार यदि दुर्गति में चले गए तो वहाँ कितना समय लग जाएगा कोई पता नहीं।

शास्त्रकार कहते हैं कि जीव यदि निगोद में चला गया तो अनंतकाल तक वहीं पड़ा रह सकता है। किसी की पुण्यवानी हो तो जल्दी निकल जाने की बात अलग है, नहीं तो अनंत काल बीत जाएगा। पृथ्वीकाय आदि में जाने पर भी असंख्येय काल वहाँ रहना हो सकता है।

थोड़ा-सा हम विचार करें! हमें मन, वचन और काया की शक्ति मिली। काया की शक्ति तो हमने हर जन्म में प्राप्त की। पृथ्वीकाय में गए, अप्काय में गए तो भी काया की शक्ति मिली। किसी भी काय में हमने जन्म लिया वहाँ पर काया की शक्ति मिली, किंतु वचन शक्ति नहीं मिली। कभी-कभी तो अनंतकाल बीत जाता है तो भी वचन शक्ति नहीं मिलती। जिनको

वचन शक्ति मिल जाती है, उनको मन शक्ति मिल जाए जरूरी नहीं है। मान लें एक लाख लोग काया की शक्ति वाले होंगे, तो एक हजार लोग वचन शक्ति वाले होंगे और सौ लोग भी मन शक्ति वाले नहीं होंगे। यह बहुत स्थूल उदाहरण है। काय शक्ति वाले नियमा (निश्चित रूप से) अनंत जीव हैं। वचन शक्ति वाले असंख्येय हो सकते हैं। मन वाले भी असंख्येय हो सकते हैं। मन वाले मनुष्य तो संख्येय ही होते हैं।

हमें मन मिला है, हम इसका क्या उपयोग कर रहे हैं? केवल दूसरों की बुराई करने के लिए मनोबल प्राप्त नहीं हुआ है। जिनेश्वर देवों की भक्ति करने के लिए मनोलब्धि मिली है। उसमें इसका उपयोग होना चाहिए।

कल रविवार के दिन आचार्य पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त चिंतनमणियों का उच्चारण किया जाएगा। उच्चारण किया जाएगा कि हे चैतन्य देव! सोच तू कौन है, क्या कर रहा है और तुम्हारा स्वरूप क्या है?

यह उच्चारण हम जरूर कर लेते हैं, किंतु इन शब्दों पर चिंतन नहीं करते। इन शब्दों पर चिंतन करें तो अनुभूति होगी कि हम कहाँ जी रहे हैं। महान पुण्य का योग होने से हमें मनुष्य जन्म मिला। पाँचों इंद्रियाँ मिलीं। इनसे भी बढ़कर प्रबल पुण्य योग से हमें जैन धर्म मिला। हमें महत्त्वपूर्ण धर्म मिल तो गया, किंतु हम इसका उपयोग क्या कर रहे हैं? यदि हमारी योग्यता नहीं होगी तो इतने महान धर्म को पा करके भी हम उसका लाभ नहीं उठा पाएंगे।

कालशौकरिक कसाई को भी मनुष्य जन्म मिला था। उसने भी मनुष्य जन्म प्राप्त किया था, किंतु उसने मनुष्य जन्म प्राप्त करके क्या किया? उसने केवल हिंसा ही की। हिंसा... हिंसा... और हिंसा... वह रोज पाँच सौ पाडों का वध करता था। रोज जीवों की हिंसा करता था। ऐसा करके उसने अपने हाथ काले किए या सफेद?

(श्रोतागण बोले- उसने अपने हाथ काले किए)

हाथ धोने का काम किया या मैल लगाने का?

(श्रोतागण बोले- मैल लगाने का काम किया)

हम काया से प्राणियों की हिंसा नहीं करते, किंतु मन से क्या-क्या कर लेते हैं, क्या-क्या हो जाता है इसकी समीक्षा हमें करनी होगी। प्रसन्नचंद राजर्षि ने मन-ही-मन नरक में जाने के दलिक इकट्ठे किए और मन से ही

केवलज्ञान की प्राप्ति कर ली।

आचार्य पूज्य गुरुदेव कुबेर सिंह जी के विषय में फरमाते थे कि उनको भोपाल दुकान लगानी थी। उन्होंने अपने पिता जी से निवेदन किया कि मुझे भोपाल में दुकान लगानी है। उन्होंने कहा, ठीक है। वे भोपाल गए, दुकान देखी। उनके मित्रों ने उनसे कहा कि ज्योतिषी को कुण्डली दिखा दो, किसी ज्योतिषी से राय ले लो कि कब दुकान लगानी है। उन्होंने ज्योतिषी से राय ली कि कब दुकान लगानी चाहिए। ज्योतिषी ने कहा कि शनि की दशा अढ़ाई वर्ष की है इसलिए ढाई वर्ष तक दुकान नहीं चलेगी। अभी दुकान लगाने में कोई फायदा नहीं है। वे वापस रायबरेली चले गए। उनके पिता जी ने कहा, क्या हुआ? तुम भोपाल दुकान खोलने गए थे ना, वापस लौटकर कैसे आ गए? उन्होंने कहा ज्योतिषी से बात हुई तो उसने कहा ढाई वर्ष तक शनि लगा हुआ है, दुकान नहीं चलेगी, इसलिए लौटकर आ गया।

उनके पिताजी आचार्य पूज्य श्री जवाहराचार्य के अनन्य भक्त थे। वे हर चातुर्मास में सेवा लाभ लेते थे। उन्होंने कहा कि तुमने आचार्यश्री के वचन सुने या नहीं? व्यक्ति के कर्म प्रधान होते हैं या शनि? यह शनि, ग्रह, गोचर कुछ नहीं होते। तुम्हारे मन में उत्साह कैसा है? उन्होंने कहा, उत्साह तो अच्छा है। उनके पिता जी ने कहा, मांगलिक सुनो और अपना काम करो। उन्होंने मांगलिक ली और वापस भोपाल आकर दुकान चालू की। वे जब गुरुदेव के दर्शन करने के लिए आए तो कहा- गुरुदेव! एक साल में इतना मुनाफा हो गया, जिसकी कल्पना ही नहीं कर सकते।

(सभा में उपस्थित एक व्यक्ति ने कहा- चौथी पीढ़ी हो गई आज भी दुकान चल रही है)

वैसे मैं कई बार यह बात बोलता हूँ, अभी भी धर्म श्रद्धा की बात आई तो यह प्रसंग प्रस्तुत कर दिया। कुबेर सिंह जी के पिताजी में धर्म श्रद्धा जमी हुई थी। यदि हमारी धर्म श्रद्धा अडिग है तो कोई ग्रह-गोचर नजदीक नहीं आएगा। ज्योतिषी लोग भी यह बात मानते हैं कि जिस समय उत्साह प्रबल है, वह सबसे उत्तम मुहूर्त है। उत्साह प्रबल है तो उस मुहूर्त से बढ़कर कोई मुहूर्त नहीं है। मन ही ऊँचा-नीचा हो रहा है तो ग्रह तो लगे ही रहेंगे। मन कमजोर होता है तो दूसरे ग्रह लग जाते हैं। मन मजबूत है तो कोई भी ग्रह घेर नहीं सकता।

अभी कोरोना काल आया और कई लोग धड़ाधड़ चले गए। बहुत से लोग रोगियों की सेवा करने के लिए भी तैयार थे और कई लोगों ने कहा कि इनके पास मत जाओ, पर जिनकी प्रतिरोधात्मक क्षमता मजबूत होती है, उनको जल्दी से रोग नहीं लगता। उन पर इंफेक्शन नहीं होता। जिनका शरीर कमजोर होता है, जिनमें प्रतिरोधात्मक क्षमता नहीं होती है, उनको रोग लगते हैं। धर्म मन को प्रतिरोधात्मक क्षमता देने वाला है। अर्थात् मन में इतनी ताकत आ जाती है कि बाहरी प्रभावों से वह अप्रभावी हो जाता है। उस पर बाहरी प्रभाव नहीं होते।

पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. नवदीक्षित थे। उनका पहला चातुर्मास फलौदी में युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के साथ सम्पन्न हुआ और दूसरा चातुर्मास बीकानेर में वृद्ध मुनियों की सेवा में सम्पन्न हुआ। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी, तबीयत बिगड़ रही थी। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. का चातुर्मास बीकानेर ही खुला था, किंतु परिस्थितिवश उनका चातुर्मास सरदारशहर के लिए परिवर्तित हो गया। मुनि नानालाल का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था इसलिए उस भीषण गरमी में थली प्रांत ले जाना उचित नहीं समझकर, बीकानेर ही छोड़ा गया।

एक दिन एक मुनिराज ने कहा, नानालाल जी! युवाचार्य जी ने अच्छा नहीं किया। आपकी तबीयत ठीक नहीं है, आपको साथ रखना चाहिए, किंतु यहाँ छोड़ गए। बात एकदम छोटी है, किंतु जिसका मन कमजोर हो वह सोचेगा, हाँ! बात तो एकदम ठीक कह रहे हैं। मन कमजोर होगा तो ये नकारात्मक विचार भीतर पैदा होंगे।

गुरुदेव ने कहा, म.सा.! युवाचार्य श्रीजी ने मुझे आपके पास छोड़ा है, आप पराये थोड़ी हो। आगे से कभी उनकी हिम्मत नहीं हुई युवाचार्य श्री के प्रति ऊँची-नीची बात करने की।

श्रद्धा मजबूत रहेगी तो छोटे-मोटे फितूर कान में आने के बाद भी मन को स्पर्श करने वाले नहीं बनेंगे। मन ही कमजोर होगा तो वह बिखर जाएगा। सोचेगा कि मेरे साथ भेदभाव हो रहा है। मेरी तरफ ध्यान हीं नहीं दिया जा रहा है। दूसरों को कितना महत्त्व दिया जा रहा है, मेरी तरफ तो ध्यान ही नहीं दे रहा है।

अभी दो दिन पहले मैंने बोला था– 'पत्तेय पुण्णपावं' यानी व्यक्ति के अपने–अपने पुण्य और पाप होते हैं। किसी को महत्त्व मिल जाता है किसी को नहीं मिलता। आकांक्षा करने मात्र से महत्त्व नहीं मिलेगा। हमारा कर्म, हमारी क्रिया, हमारा पुरुषार्थ सही होगा तो महत्त्व मिलने में देर नहीं लगेगी। महत्त्व मिले या न मिले, मोक्ष मिल गया तो क्या करना? महत्त्व के पीछे दौड़ेंगे या मोक्ष प्राप्त करेंगे?

(श्रोतागण बोले– मोक्ष प्राप्त करेंगे)

दो लोग मेहमान बनकर एक आमंत्रित घर पर गए। वे भोजन करने बैठे। एक के सामने स्टील की थाली आई और एक के सामने चाँदी की। उनके मन में क्या विचार होगा! स्टील की थाली वाले का मन ऊँचा–नीचा हो जाएगा या नहीं कि इसको चाँदी की थाली रखी गई है और मेरे लिए स्टील की।

स्टील की थाली पाने वाला अपनी थाली को नहीं देख रहा है। वह बार–बार चाँदी की थाली को देख रहा है कि इसको चाँदी की थाली में भोजन परोसा जाएगा। भोजन परोसना चालू किया गया। स्टील की थाली वाले को हलवा और चाँदी की थाली वाले को थूली परोसी गई।

(सभा में उपस्थित श्रोतागण हँसने लगे)

आप हँसने लगे। हँस क्यों रहे हो?

अब शौकीन जी मंत्री जी की थाली की तरफ देखेंगे कि खा ले थूली। चाँदी की थाली में परोसा गया भोजन ठीक है या स्टील की थाली में परोसा गया?

(श्रोतागण बोले– स्टील की थाली में परोसा गया भोजन ठीक है)

अब चाँदी की थाली वाला सोच रहा है कि मुझे थाली तो चाँदी की मिली पर खाने में थूली परोसी, जबकि स्टील की थाली वाले को हलवा परोसा गया। दोनों ने खाना खाया, हाथ धोया। निमंत्रित करने वाले ने कहा– अपनी–अपनी थाली घर ले जाओ।

(श्रोतागण हँसने लगे)

क्यों, क्या हो गया? हँस क्यों रहे हो?

अब स्टील की थाली वाला रो रहा है। स्टील की थाली वाला चाँदी की थाली वाले को थूली परोसे जाने पर खुश हो रहा था। उसे कनखियों से

देख-देख चिढ़ा रहा था, किंतु जब घर ले जाने की बात सामने आई तो उसकी नौबत आ गई। उसके मन में फर्क आ गया। खाने वाले को क्या स्टील की थाली और क्या चाँदी की थाली, किंतु हमारा मन कमजोर है। पत्तल में भी खाना मिले तो भी पेट भर जाएगा, किंतु हम पेट नहीं भर रहे, थाली को देख रहे हैं। होना यह चाहिए कि थाली किसी भी धातु की हो, पेट भोजन से भरेगा, थाली से नहीं, पर हमारी दृष्टि खुद की थाली पर नहीं होती, दूसरों की थाली पर होती है। इसलिए कहावत है-

'पराई थाली में घी घणो दिखे'

दूसरों की थाली में घी कम भी होगा तो लगेगा कि इसकी थाली में घी ज्यादा परोसा गया। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हम दूसरों की थाली को देखते हैं। हम दूसरों को देखते हैं कि इसको महत्त्व मिल रहा है और मुझे नहीं मिल रहा।

दूसरों को क्यों देखना। तुमको खाना मिल रहा है ना! तुमको रहने को मिल रहा है ना! तुम्हें क्या कमी है! क्यों दूसरों को देख रहे हो! स्वयं को देखो। स्वयं को देखोगे तो कल्याण हो जाएगा। दूसरों को देखते रहोगे तो मन में चिढ़ते रहोगे और कर्मबंधन के अलावा कुछ नहीं कर पाओगे। मन में द्वेष, ईर्ष्या और नफरत पैदा होगी और पतन के मार्ग पर चले जाओगे। आत्मा का पतन होगा। धर्म इन बातों को पचाकर हमारे मन को संबल देता है। कहता है कि कोई बात नहीं।

ऐसा विचार नहीं करना चाहिए कि मुझे स्टील की थाली में भोजन मिला और उसको चाँदी की थाली में। तुम्हें खाना तो मिल गया ना? तुम्हारा पेट तो भर गया ना? पेट भर गया इससे बढ़कर और क्या चाहिए।

एक व्यक्ति के घर शादी का कार्यक्रम था। उसने अपने बड़े भाई को नहीं बुलाया। उन्हें निमंत्रण नहीं दिया। बड़े भाई के परिवार वाले, बेटे-बहू कहने लगे कि पापा आपका बहुत अपमान किया। विवाह का दिन आया तो बड़ा भाई छोटे भाई के कार्यक्रम में चला गया। क्या करना चाहिए? बिना निमंत्रण मिले जाना चाहिए या नहीं जाना चाहिए?

(श्रोतागण बोले- जाना चाहिए)

आपने कह तो दिया, जाना चाहिए, किंतु दूसरों की संगत में रहेंगे तो

वे कहेंगे- अरे साहब! आप बड़े हैं, आपको ही आमंत्रण पत्रिका नहीं दी। आपको बुलाया नहीं, आपको फोन तक नहीं किया। आपको लोग दस बातें सुना देंगे। यह सुनकर आप डिप्रेशन में चले जाओगे कि ऐसी स्थिति में क्या करूँ?

खैर, बड़ा भाई छोटे भाई के कार्यक्रम में चला गया। वह जाकर डायनिंग टेबल पर बैठ गया। छोटे भाई का लड़का आया और उसने अपने बड़े पिताजी का हाथ पकड़कर कहा कि आकर बैठ गए पहले! मेहमानों का खाना नहीं हुआ और तुम आकर बैठ गए! उठा देने पर उन्हें कोई द्वेष नहीं हुआ। कोई रोष नहीं हुआ। उनका बेटा आया और बोला, पापा हमसे यह अपमान नहीं सहा जा रहा है आप घर चलो। उन्होंने कहा, बेटा! गलती मेरी थी। मुझे भोजन में पहले नहीं बैठना चाहिए था, पहले मेहमानों को भोजन कराना चाहिए था। अंत में मेहमानों के जाने के बाद बड़ा भाई भोजन करने बैठा तो छोटे भाई का लड़का आया और उपेक्षित ढंग से खाना डालने लगा। उस तरह से यदि किसी आदमी को खाना डाला जाए तो उसका खाना हराम हो जाए, किंतु बड़े भाई के मन में कोई अन्यथा विचार नहीं आया। उसने सोचा कि थाली में भोजन तो परोस दिया न! भले कैसे ही परोसा, थाली में भोजन आ गया।

परोसने वाले की निगाह कैसी भी हो, थाली में भोजन आना चाहिए।

बड़े भाई ने कुछ विचार नहीं किया। इसके बाद छोटे भाई का लड़का उनके पैर पकड़कर कहने लगा, बड़े पापा! माफ कर दीजिए, मुझसे गलती हो गई, मैं माफी माँगता हूँ। लड़के ने कहा कि आपने म.सा. से सौगंध ली थी कि मैं गुस्सा नहीं करूँगा, मैंने उसी की परीक्षा करने के लिए आपको आमंत्रित नहीं किया, आपको निमंत्रण-पत्रिका नहीं भेजी। मैंने आपकी तौहीन की, फिर भी आपको गुस्सा नहीं आया।

ऐसी परीक्षा में हम कितने खरे उतरेंगे?

हमारा मन धर्म में टिका हुआ है या कहीं अटका हुआ है?

हमारा मन अटक जाता है कि मेरा मान नहीं रहा, सम्मान नहीं रहा, मेरा नाम नहीं रहा। क्या हो जाएगा मान-सम्मान से। आप कितने जन्मों में होकर आए और कितने जगह आपका नाम लिखा रह गया, कितनी दीवारों पर आपका नाम लिखा रह गया?

इस चौबीसी में कितने तीर्थंकर हो गए?

(एक व्यक्ति ने कहा- अनंतानंत हो गए)

धक्का मत लगाओ।

(श्रोतागण बोले- 24 तीर्थंकर हुए)

इसके पहले जो चौबीसी हुई उसमें कितने तीर्थंकर हुए?

(श्रोताओं में चुप्पी रही)

अरे वाह! कितने तीर्थंकर हुए यह याद नहीं, तीर्थंकर भगवंतों के नाम याद नहीं और अपने नाम का रोना रो रहे हैं। रोना रोने से क्या नाम अमर हो जाएगा?

विजय सेठ और विजया सेठानी का नाम क्यों याद है?

उनकी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा थी। एक के कृष्ण पक्ष और एक के शुक्ल पक्ष की प्रतिज्ञा थी। रात को साथ में सोते हुए भी उनके बीच में नंगी तलवार रहती। कहते हैं 84 चौबीसी तक उनका नाम रहेगा। नाम कमाओ तो ऐसा कमाओ। उन्होंने नाम कमाने के लिए रोना नहीं रोया। कहते हैं कि स्थूलभद्र मुनि का नाम भी 84 चौबीसी तक चलेगा। उन्होंने कोशा गणिका की रंगशाला में चातुर्मास किया। रोज षट्रस भोजन करते, कोशा गणिका का हाव-भाव देखते, किंतु अपने मन को विचलित नहीं होने दिया। कलुषित नहीं होने दिया। ऐसी आराधना करने वाले का नाम अमिट हो जाता है। हम नाम के लिए रोते हैं। रोते हैं कि मेरा मान नहीं रहा, मेरा सम्मान नहीं रहा, मेरी कोई पूछ ही नहीं है। पूँछ तो गाय-भैंस के होती है। हमारे पीछे पूँछ लग जाएगी तो क्या होगा?

धर्म को जीवन में उतारना जरूरी है। धर्म के रंग से मन को रँगना बहुत जरूरी है।

'धर्म रंग से मन हो रंगा, देख कठौती दिखती गंगा'

धर्म रंग से हमारा मन रँगा होना चाहिए। मन धर्म से रँगा होगा तो-

'धर्म भक्ति दुर्गति को टारे, धर्म भक्ति भव पार उतारे'

धर्म भक्ति करते रहेंगे तो नाम होगा या नहीं, किंतु संसार-सागर से किनारे लग जाएंगे। नाम होना चाहिए या संसार से पार होना?

(श्रोतागण बोले- संसार से पार होना)

जिसकी यह दृष्टि हो जाती है उसका रोना बंद हो जाता है।

बच्चा रोता है और माँ का दूध मिल जाने पर उसका रोना बंद हो जाता है। वांछित वस्तु प्राप्त होने पर उसका रोना बंद हो जाता है। वैसे ही हमारी वांछा मोक्ष की है तो मोक्ष मिलने पर हम रोएंगे नहीं। नाम, मान और सम्मान की चाह लेकर चलेंगे तो रोते ही रहेंगे, रोना ही लगा रहेगा। नाम किसी का अमर हुआ नहीं और होगा नहीं।

खैर, 24 तीर्थंकरों के नाम किस-किसको याद हैं?

किसी को याद होगा, किसी को नहीं होगा। याद होगा तो भी लड़खड़ाते हुए। पहले विक्टोरिया सिक्का चलता था। उसको उछालते तो उसकी आवाज में ठनक होती थी। वैसी ठनक से नाम सुनाने वाले कितने लोग हैं? यहाँ बैठने वाले हाथ खड़ा करेंगे कि कितने लोगों को 'लोगस्स' याद हैं?

(सभा में उपस्थित बहुत से श्रोताओं ने हाथ खड़े किए)

इसका मतलब है कि आपको लोगस्स याद तो है। 'णमोत्थुणं' किस-किसको याद है?

(श्रोताओं ने हाथ खड़े किए)

लोगस्स में क्या आता है?

वर्तमान तीर्थंकरों की स्तुति लोगस्स द्वारा की जाती है। जो वर्तमान में तीर्थंकर हैं और जो तीर्थंकर भूतकाल में सिद्ध हो गये, उनकी स्तुति णमोत्थुणं से की जाती है। दोनों स्तुति पाठ हैं। अनंत सिद्धों की, अनंत तीर्थंकरों की एक साथ स्तुति करते हैं। यदि हमने भी मुक्ति को वर लिया तो 'नमो सिद्धाणं' पद से हमें भी लोग नमस्कार करेंगे। किंतु नमस्कार कराने की हमारे भीतर ताकत भी होनी चाहिए। हमारे भीतर भरोसा भी होना चाहिए। यदि हमारा मन मजबूत बन गया, सुदृढ़ बन गया और उसमें प्रतिरोधात्मक क्षमता पैदा हो गई तो छोटी-मोटी बातें दु:ख देने वाली नहीं बनेंगी।

सुनंदा की बात आगे बढ़ाते हैं। उसकी कहानी में नया मोड़ आया। उसी नगर के दूसरे सेठ के परिवार की बात है। उस सेठ के दो पुत्र विजय एवं सुरेश थे और एक पुत्री शर्मिला थी। सेठ का स्वर्गवास हो गया। शर्मिला की शादी पिता के रहते हो गई थी। शर्मिला का मन धर्म-ध्यान में नहीं लगता, केवल राग-रंग में लगता।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार,
पुण्योदय से सम्पत्ति पाई, सम्प नहीं पर भाई-भाई
गूंगा बहरा जान, भविकजन...
देख विजय को नफरत होती, सुरेश भाग्य पर माँजी रोती
होगा क्या तम हाल, भविकजन...
बहन को भी नफरत उससे, पशु समझती उसको मन से
बिचकाती मुंह आंख, भविकजन...

सम्पत्ति का अर्थ क्या है? सम्पत्ति किस-किसको प्रिय है? सम्पत्ति किस-किसको प्रिय नहीं है, हाथ खड़े करो।

आप बोलोगे कि म.सा. क्यों हाथ खड़े करवा रहे हो। हमें सम्पत्ति प्रिय है, किंतु सम्पत्ति का अर्थ नहीं जानते। सम्पत्ति के छह अर्थ होते हैं- दम सम, तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा। हम जिसके पीछे दौड़ते हैं वह सम्पत्ति नहीं है, वह विपत्ति है। जिस सम्पत्ति के पीछे आप दौड़ रहे हो उससे परिवार में सम्प बढ़ा या घटा?

(श्रोतागण बोले- घटा)

इससे भाई-भाई में दीवार खड़ी हो जाती है या प्रेम बढ़ता है? आप जिस सम्पत्ति के पीछे दौड़ रहे हो उससे भाई-भाई में प्रेम बढ़ा या घटा?

(श्रोतागण बोले- घटा)

बाप की सम्पत्ति के लिए कितने ही केस कोर्ट में होंगे। लोग कोर्ट में जाएंगे, वकील करेंगे, लाखों रुपए वकील को देंगे, किंतु लाख रुपए कम मिल रहा हो तो बर्दाश्त नहीं होगा। वहाँ मूँछ की बात आ जाती है, नाक का सवाल हो जाता है।

बाप की सम्पत्ति मिले तो ठीक, नहीं मिले तो भी ठीक। बाप की सम्पत्ति मिले या नहीं मिले, कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। दूसरे भाई को बाप की सम्पत्ति मिल गई, किंतु मुझे नहीं मिली तो नहीं मिली।

सम्पत्ति के तीन उपयोग हो सकते हैं- भोग, दान और नाश।

सम्पत्ति को शालिभद्र की तरह भोग लो या कर्ण की तरह दान दे दो। कर्ण ने अपने कानों के कुंडल तक दे दिए। वे कुंडल उसके सुरक्षा कवच थे, किंतु उसने दान में दे दिए। आज हो या कल सम्पत्ति नाश तो होनी ही है। जैसे

ही पुण्य खत्म होगा सम्पत्ति राख हो जाएगी, इसलिए उसको सहेजकर रखने में फायदा नहीं है, किंतु लोग उसे तिजोरी में बंद करते हैं। क्या हो जाएगा तिजोरी में रखने से?

मैं सम्पत्ति की व्याख्या कुछ अलग हटकर कर रहा हूँ- सम्प बढ़ाए वह सम्पत्ति। जिससे परिवार में, समाज में सम्प बढ़े वह सम्पत्ति है। हमारा लक्ष्य रहे कि हमारे परिवार में, समाज में सम्प बना रहे। मेरे कारण परिवार और समाज में दूरी नहीं बढ़े। ऐसा विचार होना बड़ी सम्पत्ति है। पैसे आज हैं, कल नहीं भी रह सकते हैं, किंतु हमारी भावना सम्प की रहनी चाहिए। सम्प पर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

विजय और सुरेश के परिवार ने सम्पत्ति बहुत पाई, किंतु दोनों में सम्प नहीं है। योग-संयोग की बात है, कर्मयोग की बात है। सुरेश जन्म से गूँगा और बहरा है। गूँगा और बहरा न बोल सकता है न सुन सकता है। अब वह बेचारा क्या करे, कर्मयोग की बात है। विजय को सुरेश से बड़ी नफरत होती थी। सुरेश पास आ जाए तो विजय उसे डाँटता-फटकारता। सुरेश की हालत देखकर माजी मन-ही-मन रोती। कई बार यह सोचकर उनकी आँख से आँसू निकल जाते कि मैं हूँ तो जैसे-तैसे करके इस बेचारे को परोस देती हूँ, किंतु मेरे बाद सुरेश के साथ क्या होगा। विजय को अभी नहीं सुहा रहा है तो वह क्या देख-रेख करेगा। सुरेश के बारे में सोच-सोचकर वह दुखी होती है।

हालांकि दु:ख का कारण नहीं है। अपना-अपना पुण्य-पाप होता है फिर भी आदमी की जहाँ प्रीत जुड़ जाती है, सम्बन्ध जुड़ जाता है, वहाँ दु:ख का कारण बन जाता है।

सुरेश की माँ ने कई बार विजय को समझाने का प्रयत्न किया, बात करने की कोशिश की किंतु बात बनी नहीं। विजय बात सुन लेता, किंतु जवाब नहीं देता। बहन शर्मिला पैसों से ज्यादा किसी को नहीं समझती, इस कारण से माँ को ज्यादा दु:ख होता है। माँ को दु:ख होता है कि न भाई समझने वाला है और न ही बहन समझने वाली है। सुरेश का गूँगा-बहरा होना कर्मयोग के कारण है। उसकी उपेक्षा मत करो। भगवान महावीर कहते हैं-

''सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्ताणं आसायणाए''

किसी भी प्राणी, भूत, जीव, सत्व की अवज्ञा नहीं करना। हम किसी

की अवज्ञा करने से चूकते नहीं हैं। यदि हम किसी का तिरस्कार कर रहे हैं, किसी की अवज्ञा कर रहे हैं तो अपनी अवज्ञा के लिए तैयार रहना। किसी की अवज्ञा करेंगे तो अपनी अवज्ञा होनी निश्चित है, क्योंकि क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। यदि किसी को मान नहीं दे सकते हैं तो चुप रहें, किंतु किसी का अपमान नहीं करें। यदि किसी का अपमान कर रहे हैं, तिरस्कार कर रहे हैं तो तिरस्कार के तीर वापस लौटकर आएंगे और लगेंगे इसलिए सावधान रहने की आवश्यकता है।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

हमारे संस्कार सुंदर होने चाहिए। सत्यं, शिवं, सुंदरम्। हमारे संस्कार सत्य समन्वित होने चाहिए। नैतिकता से ओत-प्रोत होने चाहिए। धर्मनिष्ठा से सने हुए होने चाहिए। सुंदर संस्कार आन्तरिक सौंदर्य निखारने वाले होंगे। धर्म, दुर्गति से हटाने वाला है। भव से पार कराने वाला है। ऐसे धर्म का आराधन करेंगे तो आगे बढ़ेंगे।

तपस्याएं भी चल रही हैं। महासती श्री सुभग श्री जी म.सा. का आज मासखमण तप सम्पन्न हो रहा है। गगन मुनि जी म.सा. के आज 29 की तपस्या है। वे मासखमण से एक कदम पीछे हैं। बस एक कदम और दूर हैं। अगला कदम मासखमण को प्राप्त कराने वाला है। महासती श्री खंतिप्रिया श्री जी म.सा. की आज 28 की तपस्या है। वे मासखमण से दो कदम दूर हैं। आगे कितना करना है यह बात अलग है, किंतु हम अभी मासखमण की बात कर रहे हैं। कल महेश जी ने सुनाया कि एक बाई जी की 14 की तपस्या थी और उन्होंने सीधे 41 के प्रत्याख्यान कर लिए। एक बहन ने उपाध्याय श्री जी से 31 के प्रत्याख्यान लिए। सरोज जी कांठेड़ की आज 29 की तपस्या है। वे भी मासखमण के किनारे पहुँच गई हैं। हम भी अपने आपमें प्रयत्नशील बनें। तपस्या करें तो बढ़िया, नहीं तो कोई बात नहीं। मन को साधने की तपस्या करें। मन के सामने ऊँचे-नीचे प्रसंग आने पर उसे शांत बनाए रखने का लक्ष्य रखें। शांतिनाथ भगवान की स्तुति करने मात्र से शांति नहीं मिलेगी। प्रयत्न शांत बनने का होगा, लक्ष्य शांति का होगा तो शांति मिलेगी। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

15 जुलाई, 2023

13

सदा धर्म की करना रक्षा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

तीन प्रकार से धर्म को आगे बढ़ाया जा सकता है। धर्म की आराधना करते हुए तीन अवस्थाएं हमारे सामने आती हैं- साधना, उपासना और आराधना। प्राय: लोग तीनों अवस्थाओं को समान मानते हैं, किंतु तीनों में भिन्नता है। तीनों अवस्थाएं धर्म को प्राप्त कराने वाली होती हैं। साधना भी करनी है, उपासना को भी स्वीकार करेंगे तो धर्म की आराधना तक पहुँचने में समर्थ हो पाएंगे। साधना शुरुआती बिंदु है। उपासना मध्य बिंदु है और आराधना चरम बिंदु है। इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए जो उपक्रम किया जाता है उसको कहते हैं साधना। प्राप्तव्य के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, जो पुरुषार्थ होता है उसको कहते हैं साधना। दूसरा बिंदु है उपासना।

साधना दीर्घकालिक होती है। लम्बे समय तक साधना चलने से मन शिथिल हो जाता है। दो-चार दिन तो मन को थाम लिया जाता है, किंतु लम्बे समय तक एक ही विषय से मन शिथिल होने लगता है। मन की शिथिलता को दूर करने के लिए उपासना स्वीकार की जाती है। उपासना अल्पकालीन होती है। थोड़ी देर के लिए होती है। शक्ति का संचय करने के लिए उपासना की जाती है ताकि शिथिलता नहीं रहे, शिथिलता दूर हो जाए। मन में शक्ति का संचार हो जाए, जिससे मैं आगे पुन: साधना में लीन हो पाऊँ।

नहर के बहते हुए पानी को बहुतों ने देखा होगा। बहुतों ने नहीं भी देखा होगा। नहर में पानी बहता रहता है। दो तरफ तट होते हैं। बीच में पानी

बहता रहता है। लम्बी दूरी तय करने के बाद एक मोखा बना दिया जाता है अर्थात् नहर को संकरा बना दिया जाता है। उससे होकर जब पानी बाहर निकलता है तब उसको प्रेशर मिल जाता है। यदि पानी लगातार एक रूप में ही बहता रहे, तो लम्बी दूरी तक उसी वेग से नहीं बह पाएगा। इसलिए बीच में नहर का मुँह छोटा कर दिया जाता है। उससे जब पानी वापस बाहर निकलता है, तो पुन: वेग को प्राप्त हो जाता है।

साधना में आने वाली शिथिलता उपासना से दूर की जाती है। थोड़े समय के लिए आत्मा से परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ना उपासना है। धर्म चालीसा में एक बात कही गई है–

''सदा धर्म की करना रक्षा उससे होगी निज अभिरक्षा''

धर्म की रक्षा यदि हमारे द्वारा सही रूप से होगी तो धर्म हमारी रक्षा कर पाएगा। जैसे शरीर टिकाने के लिए बल प्राण होते हैं, वैसे ही अध्यात्म जीवन को टिकाने के लिए धर्म प्राणरूप है। जब धर्म को प्राण के समान समझेंगे तो उसकी रक्षा कर पाएंगे। ऐसा जब विचार बनेगा तो धर्म की रक्षा के लिए वैसे ही उपाय करेंगे, जैसे शरीर की रक्षा के लिए उपाय करते हैं। अत: आध्यात्मिक जीवन सुरक्षित रखने के लिए उपासना करना बहुत जरूरी है।

साधना में कई झंझावात आते हैं। कई बार अपकर्ष और उपकर्ष की स्थितियाँ बनती हैं। उपासना के समय आत्मा को प्रेरित करने का प्रसंग रहता है, आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ाने का प्रयत्न रहता है। उपासना के क्षणों में ये समीक्षा की जाती है कि मैं कौन हूँ, मुझे कहाँ जाना है, मेरी मंजिल क्या है, मैं मंजिल की ओर बढ़ रहा हूँ या नहीं, कहीं मार्ग से भटक तो नहीं गया?

रात्रि के अंतिम समय में धर्म जागरण करने का उल्लेख मिलता है। धर्म जागरण करना चाहिए अर्थात् धर्म के विषय में चिंतन करना चाहिए कि मैं सही दिशा में गतिशील हूँ या नहीं! अपने मन से ही प्रश्न करना और अपने मन से ही उत्तर लेना है, क्योंकि अपना मन जितना अपने आपको जानता है उतना दूसरा कोई नहीं जानता। इसलिए उपासना का समय अल्प होता है। थोड़े समय में साधना में शक्ति भर देना, उसका काम है।

गाड़ी के ट्यूब में हवा भरी जाती है। हवा भरने का समय कम होता

है, किंतु भरी गई हवा लम्बे समय तक गाड़ी को चलाने में समर्थ होती है। उसी तरह उपासना हमारी साधना को जीवन देने वाली होती है, जीवटता देने वाली होती है। उसमें शक्ति का संचार करने वाली होती है।

'बहु बीती थोड़ी रही थोड़ी भी अब जाए'

हे साधक! तुमने बहुत रास्ता तय किया, अब हिम्मत मत हार। अब थोड़ा-सा रास्ता बचा है, ज्यादा नहीं है।

क्या बात समझ में आ रही है?

मैं बोलता जा रहा हूँ और आप नींद तो नहीं लेते जा रहे हैं! कौन-कौन नींद ले रहा है? सब अपने-अपने पड़ोसी को देख लें कि कौन नींद ले रहा है और कौन नहीं ले रहा है। जिनकी सुनने की क्षमता कम है, जो सुन नहीं पाते हैं, जिनके कानों में पूरे शब्द नहीं जा रहे हैं, जिनके कानों में आवाज पूरी तरह से नहीं जा रही है, उनको सुस्ती आएगी। यदि कानों में ध्वनि आ रही है, मन समझ रहा है तो जल्दी से झपकी नहीं आएगी, यह सुनिश्चित है। मन उसमें लगा रहेगा। मन श्रद्धा में चलेगा। विचार होगा कि आगे क्या बात आने वाली है।

मन को नई-नई चीजों के प्रति आकर्षण होता है। नए-नए संवाद के प्रति आकर्षण होता है। एक ही बात कही जाएगी तो मन सुनने से निवृत्त हो जाएगा। मन निर्वेद को प्राप्त हो जाएगा। सुनने के प्रति उसका उत्साह नहीं रहेगा। झपकी आने लगेगी। शिथिलता आने लगेगी। नया-नया आघात, नया-नया संघात मन को जागृत रखता है। मन में जिज्ञासा भाव पैदा करता है। आगे सुनने की ललक पैदा होती है। धर्म की उपासना रंग लाने वाली होती है। सच्चे मन से सामायिक की जाती है तो उसका असर 24 घंटे तक रहता है।

मेटासिन की एक गोली छह घंटे तक अपना असर दिखाती है। नींद लाने वाली गोली छह से आठ घंटे तक अपना असर दिखती है। उपासना, साधना को गति देने वाली होती है। महाव्रत स्वीकार करना साधना है। बीच-बीच में धर्म जागरण करना, आत्मचिंतन करना, प्रतिक्रमण करना उपासना है। आराधना परीक्षा है। उत्तीर्ण होना, अंक प्राप्त करना आराधना है।

सामान्य अंकों से पास होना या मेरिट में आना? कोई मेरिट में आ जाता है। आराधना में मेरिट लाना अर्थात् मोक्ष जाना। आराधना में मेरिट लाने

वाला उसी भव में या तीसरे भव में मोक्ष चला जाता है। कोई मेरिट में नहीं भी आए, किंतु आराधना में पूर्णता हासिल कर ले तो 15 भव में उसका मोक्ष हो जाएगा। इसलिए आराधना महत्त्वपूर्ण है, किंतु साधना से ही आराधना होगी। साधना को उपासना से भावित किया जाएगा तो सही रिजल्ट आएगा। यदि उद्यम बहुत किया, किंतु अनुरूप उद्यम नहीं हुआ तो सही परिणाम नहीं आएगा।

एक विद्यार्थी रात-दिन पढ़ने में लगा हुआ था। पढ़ने की उसकी रुचि देखकर घरवाले निश्चिंत थे कि लड़का बहुत पढ़ रहा है, किंतु उसकी परीक्षा का रिजल्ट आया जीरो।

ऐसे रिजल्ट का क्या कारण था?

कारण था कि वह कोर्स की पुस्तक नहीं पढ़ रहा था, वह उपन्यास पढ़ रहा था। पढ़ाई तो हो रही थी, पर कोर्स की नहीं। उत्तीर्ण होने वाली पढ़ाई नहीं हो रही थी। यदि कोर्स की पढ़ाई लगन से की गई होती तो वह उत्तीर्ण होता।

मेरी आवाज कहाँ तक जा रही है? केवल आवाज जा रही है या समझ में भी आ रहा है?

(लोग कहते हैं- आ रही है)

आपकी आवाज मुझ तक नहीं आ पा रही है। कोई बात नहीं, समझने की बात है। आवाज नहीं आए तो भी बहुत अच्छी बात है, चिंता की बात नहीं है। व्याख्यान के बाद आगे की पंक्तियों में बैठने वालों से कहना कि आपने जो सुना हमें वापस सुनाओ। उनकी परीक्षा भी हो जाएगी कि उन्होंने क्या सुना और कितना सुना।

मैंने सुना है कि विनोबा भावे माइक का उपयोग नहीं करते थे। अपनी जानकारी के अनुसार मैं बता रहा हूँ। किसी की जानकारी इससे भिन्न हो तो वह बता सकता है। लोगों ने उनसे कहा, आपकी आवाज कुछ पंक्तियों तक ही आती है, पीछे बैठने वालों को आपकी आवाज सुनाई नहीं देती। उन्होंने कहा, बहुत अच्छी बात है। पीछे वाले आगे वालों से पूछ लेंगे कि तुमने विनोबा भावे से क्या सुना। इससे आगे बैठने वालों का रिवाइज होगा और उनमें बोलने की क्षमता पैदा होगी। उनमें क्षमता आएगी कि विषय को कैसे प्रस्तुत किया जाता

है। वे भी समझ जाएंगे कि विषय का प्रतिपादन किस प्रकार से किया जाता है। उनमें विषय प्रतिपादन की क्षमता पैदा हो जाएगी।

हमारा लक्ष्य केवल साधना का नहीं होकर उपासना का भी बने। सुनना साधना है, उस पर विचार करना उपासना है और उसको जीवन में उतारना आराधना है। हम सुनने के शूरवीर हैं। यहाँ से निकलने के बाद चिंतन करने का हमारे पास समय नहीं है। यहाँ से वैसे निकलते हैं जैसे आदमी जेल से निकलता है। निकलने के बाद झट से मोबाइल हाथ में लेंगे। बहुत कम लोग होंगे जो पुन: विचार करते हैं कि आज क्या सुना और सुनने का सार क्या निकला।

मैंने एक बात कही थी बहु बीती थोड़ी रही। कैसे बहु बीती और कैसे थोड़ी रही।

हमारा संसार में बीता काल अनंतानंत पुद्गल परावर्तना था। हमें सम्यक्त्वी होने का विश्वास है तो भूत की अपेक्षा भविष्य अत्यल्प है। वह काल अर्ध पुद्गल परावर्तन जितना भी शेष नहीं है इसलिए हिम्मत नहीं हारना। जब वह जीवन में स्वीकार की जाएगी तभी सही रिजल्ट प्राप्त होगा। उसे स्वीकार किए बिना सही रिजल्ट प्राप्त होने वाला नहीं है।

मुझसे पहले आपने तपस्वियों के बारे में सुना। गगन मुनि जी का आज मासखमण पूरा हो रहा है। उन्होंने पहले भी अनेक तपस्याएं की हैं। महासती श्री सुभग श्री जी म.सा. का कल मासखमण पूरा हुआ। महासती श्री खंतिप्रिया श्री जी म.सा. का मासखमण कल पूरा होने वाला है। एक दिन के अंतराल से इनके मासखमण के रथ पर आरूढ़ होने की स्थिति है। महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. की आज 17 की तपस्या है। वे भी मासखमण की दिशा में गतिशील हैं। महासती श्री जयती श्री जी भी उसी दिशा में गतिशील हैं। शायद उनकी आज 20 की तपस्या है। आप जयश्री जी म.सा. मत समझना, जयती श्री जी है।

(जयश्री जी म.सा. बोलीं कि भगवन् आपकी कृपा होगी तो मेरी भी तपस्या हो जाएगी)

किसी की कृपा से कोई काम नहीं होता। कार्य सम्पन्न होता है अपने पुरुषार्थ से। दूसरे केवल निमित्त बनते हैं। उपादान अपना काम आता है,

पुरुषार्थ अपना काम आता है। कोई प्रेरक-निमित्त मिल जाए तो बात अलग है, किंतु अपना पुरुषार्थ होता है तो कार्य सम्पन्न होता है। अभी आप सुन गए कि संकल्प हो तो कार्य सम्पन्न होता है।

आप क्या देख रहे हैं? क्या दिख रहा है? (ओघा सीधा खड़ा रखकर दिखाते हुए)

(श्रोतागण बोले- ओघा दिख रहा है)

क्यों खड़ा है?

यह ओघा क्यों खड़ा किया गया?

संकल्प इस प्रकार से खड़ा होता है और हमारे विचारों के झोंके आकर टकराते हैं। हमारे विचार आकर उसको धक्का लगाते हैं। जो संकल्प इस प्रकार खड़ा रह जाता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है और जो विचारों के थपेड़ों से डगमगा जाता है वह टिका हुआ नहीं रह पाता। जैसे विचार चलेंगे वैसे ही लुढ़कता चला जाएगा। पेंडुलम की तरह घूमता रहेगा कि क्या करूँ, क्या करूँ? मन तो होता है कि कर लूँ पर सोचता है कि बहुत मुश्किल काम है। शरीर कमजोर हो रहा है। सुस्ती आ रही है।

ये थपेड़े किसको लगते हैं?

ये थपेड़े संकल्प को लगते हैं। भावना को लगते हैं। जब थपेड़ों को सहन करके अपनी संकल्प शक्ति बनाए रखने की स्थिति होती है तब व्यक्ति सफलता प्राप्त कर पाता है।

मासखमण की तपस्या करना कोई ज्यादा भारी काम नहीं है।

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँस क्यों रहे हो? हँसने की क्या बात हो गई? हँसने की बात नहीं है, आप करके देख लो। ''हाथ कँगन को आरसी क्या।'' कोई कठिन काम नहीं है, बशर्ते संकल्प एकदम सीधा खड़ा हो। हिलना नहीं चाहिए। यह तो मासखमण की बात है। दो मासखमण, तीन मासखमण, चार मासखमण, सौ दिन की, सवा सौ दिन की तपस्या भी सम्पन्न हो सकती है। कैसे हो सकती है? स्तम्भ को डिगने मत दो।

भगवान महावीर कहते हैं-

''संकप्पस्स वसं ग ओ''

अर्थात् वह व्यक्ति साधु जीवन की आराधना कैसे कर पाएगा, जिसका मन संकल्प-विकल्प में उलझा रहेगा। जिसका मन एक लय में रहने में समर्थ नहीं है, उसके लिए एक सामायिक करना भी कठिन है, दुष्कर है। एक सामायिक का काल उसको परेशान करने वाला बन जाएगा। थोड़ी देर की उपासना उसके लिए कठिन हो जाएगी, किंतु जिसका मन मजबूत खड़ा है, एकदम मजबूत खड़ा है, एकदम ताकत से खड़ा है, शैलघन स्तंभ अर्थात् पत्थर के खंभे के समान खड़ा है, लोहे के खंभे के समान अडिग है, उसको कोई नहीं डिगा सकता।

आप देखो लोहे का खंभा, आर.सी.सी. का खंभा कितना भार सहन कर लेता है, कितना वजन उठा लेता है। आर.सी.सी. के खंभे पर कितनी मंजिल खड़ी होती है। सुनने में आया है कि मुम्बई में सौ से भी अधिक मंजिल की बिल्डिंग है। इतना वजन कौन झेल लेता है? आर.सी.सी. के पिलर इतने मंजिलों का भार सहते हैं। वैसे ही यदि हमारा मन आर.सी.सी. के पिलर की तरह मजबूत बन गया तो मासखमण कौन-सी बड़ी बात है! साधु जीवन स्वीकार करना भी कौन-सी बड़ी बात है! संथारा-संलेखना करना कौन-सी बड़ी बात है। मन पिलर बन जाएगा तो मुक्ति में पहुँचने में रुकावट पैदा नहीं होगी। मन मजबूत होना चाहिए। आर.सी.सी. के पिलर की भांति सुदृढ़ होना चाहिए।

ऐसी दृढ़ता होती है तभी सफलता प्राप्त होती है। ऐसी दृढ़ता नहीं होती है तो ''गंगा गये गंगादास, यमुना गये यमुनादास'' की स्थिति होती है। मिर्जापुरी लोटे की तरह जिधर घुमाओ उधर घूमने की स्थिति होती है। वैसी स्थिति में सफलता प्राप्त नहीं होगी। ध्वज के समान हमारा चित्त डाँवाडोल होगा तो सफलता संदिग्ध है।

अपने मन को, अपनी शक्ति को आर.सी.सी. के पिलर के समान सुदृढ़ बना लिया तो फिर केवल चलने की आवश्यकता है। चलते रहो, चलते रहो, चलते रहो। कितना भी भार आ जाए, कितना भी बोझ आ जाए, कितना ही बड़ा प्रेशर आ जाए, किंतु पिलर हिले नहीं।

आपने तपस्या के बारे में सुना। श्री गगन मुनि जी अपने काम के साथ-साथ गोचरी चर्या भी करते रहे हैं। बहनों में सरोज जी कांठेड़ का आज

मासखमण पूर्ण होने जा रहा है। वे 31 का पच्चक्खाण ली हुई हैं। ये सब तपस्वी मासखमण के रथ पर आरूढ़ होने के लिए तत्पर हैं। हम भी प्रेरणा लें कि अपनी संकल्प शक्ति की रक्षा करेंगे। धर्म के पिलर की रक्षा करेंगे। हमारा उद्देश्य धर्म की रक्षा का होगा तो संसार की हवा, बाहर का वातावरण हमें प्रभावित नहीं कर पाएगा। उसी तरह प्रभावित नहीं कर पाएगा जैसे ए.सी. में बैठने वाले को बाहर की गर्म हवा प्रभावित नहीं करती। दृढ़ता से सारे अवरोध अपने आप हटते जाएंगे और रक्षा अपने आप होती जाएगी। इसलिए–

''सदा धर्म की करना रक्षा उससे होगी निज अभिरक्षा''

धर्म की रक्षा करने पर पिलर की भाँति धर्म बना रहेगा। कितना ही तूफान आए, कितनी ही तेज हवा आए, वह धर्म हिलने वाला नहीं होगा। ऐसा होगा तो हमारे जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित है। हम इस प्रेरणा–पाथेय को स्वीकार करें। अपने जीवन को सुदृढ़ बनाने का लक्ष्य बनाएं। तय कर लें कि धर्म मेरा अपना है।

''जीवूं छे तो धर्म ना काजे, मरवूं छे तो धर्म ना काजे,
धर्म अमारो प्राण छे भाई, जीवन नुं आधार छे''

धर्म जीवन का प्राण है। धर्म जीवन का आधार है। यह यदि खिसक गया तो जीवन की बिल्डिंग खड़ी नहीं रह पाएगी। वह पिलर नहीं खिसके ऐसा लक्ष्य होना चाहिए। ऐसी दृढ़ता होनी चाहिए। ऐसी दृढ़ता मन में आएगी तो धर्म की रक्षा करने में समर्थ होंगे। कोई तनाव पैदा नहीं होगा। स्वस्थ बने रहेंगे। इस प्रकार से साधना से उपासना, उपासना से आराधना का मार्ग तय करते हुए चले जाएंगे। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

16 जुलाई, 2023

14

धर्म भक्ति मन सदा सुहावे

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।'

एक को साध लो तो सारे कार्य अपने आप सिद्ध हो जाएंगे। सभी कार्यों को एक साथ साधने जाएंगे तो एक भी हाथ में नहीं आएगा। एक कार्य भी नहीं सध पाएगा।

किसी व्यक्ति को मालूम पड़ा कि दो सौ फीट की खुदाई करने से पानी आ जाएगा। उसने सोचा कि एक जगह गड्ढा खोदना ठीक नहीं रहेगा। यह सोचकर उसने सौ जगह दो-दो फीट के गड्ढे खोद दिए। इससे पानी आ जाएगा क्या?

(श्रोतागण- नहीं आएगा)

यदि एक ही जगह गड्ढा खोदा गया होता तो उसको सफलता मिल जाती। इसलिए कहा गया एक को साधें और अच्छी तरह से साधें।

'दुविधा में दोऊ गए, माया मिली ना राम।'

जब दो तरफ ध्यान रहता है तो एक भी चीज पकड़ में नहीं आती। केवल धर्म को हमने साध लिया तो सारी चीजें अपने आप सध जाएंगी। कोई यह बात कह सकता है कि धर्म की आराधना करने से क्या धन मिल जाएगा। अभी आप सुन गए हर्षित मुनि जी म.सा. से कि समय चाहिए या समाधान। आपको समय चाहिए या समाधान चाहिए?

(श्रोतागण- समाधान चाहिए)

धन चाहिए या मन की संतुष्टि?

(श्रोतागण– मन की संतुष्टि चाहिए)

मन संतुष्ट होना बहुत बड़ी बात है। जो कार्य धन से नहीं हो सकता, वह धर्म से होता है। धन बहुत मिल जाए तब भी मन खाली रहेगा। कितना ही धन क्यों न मिल जाए, हमारा मन रूपी घड़ा खाली रहेगा। वह भरेगा नहीं। मन कहेगा कि थोड़ा और होना चाहिए। और थोड़े का कोई मापदंड नहीं है। घड़ा भर भी जाए, किंतु मन नहीं भरेगा। मन का घड़ा नहीं भरेगा। मन चाहेगा कि थोड़ा और मिल जाए। थोड़ा और भर जाए।

धर्म की आराधना करते हुए यदि हमारे पास कुछ भी नहीं हो तो भी बहुत बड़ी निधि होती है। वह निधि है संतोष। जैसा कि कहा गया है–

'जब आए संतोष धन, सब धन धूरि समान।'

ये बातें खाली कहने की हैं या समझने की?

(श्रोतागण– समझने की)

कहने को कह देते हैं कि– 'जब आए संतोष धन, सब धन धूरि समान' लेकिन मानते कितना हैं?

जब सारा धन धूल के समान है, संतोष ही महत्त्वपूर्ण है तो उसी की आराधना क्यों नहीं करनी चाहिए? संतोष धन तभी प्राप्त होगा जब धर्म की आराधना करेंगे। शास्त्र में बताया गया है–

''साया सोक्खेसु रज्जमाणा विरज्जइ''

अर्थात् साता और सुख में लीन रहने वाला व्यक्ति उससे विरक्त हो जाता है। आप विचार करें शालिभद्र ने घर क्यों छोड़ा! शालिभद्र के पास क्या कमी थी!

शालिभद्र को कोई अभाव नहीं था, किंतु उसको सच्चाई समझ में आ गई। सच्चाई समझ में आते ही उसे घर छोड़ते हुए देर नहीं लगी। चक्रवर्ती सम्राट को बात समझ में आ जाती है कि यह धन, यह वैभव सदा रहने वाला नहीं है। सदा टिकने वाला नहीं है। हो सकता है चक्रवर्ती सम्राट के जीवनकाल में सारा वैभव बना रहे, किंतु उस वैभव से कल्याण होने वाला नहीं है। कल्याण का मार्ग वह नहीं है। कल्याण का मार्ग है त्याग।

धर्म भक्ति मन सदा सुहाए,
धर्म भक्ति मन आदर पावे।

बहुत गहरी बात कही गई है। धर्म की आराधना करते हुए, धर्म ध्यान करते हुए हमारा मन बहुत जल्दी उचट जाता है। सिद्धांत बत्तीसी का पाठ करते हुए मन उचट जाता है। मन नहीं करता कि बत्तीसी याद कर लूँ, प्रतिक्रमण याद कर लूँ। शुरू की एक-दो पाटी याद की और मन उचट गया। धर्म की आराधना करते हुए मन बहुत जल्दी उचट जाता है, पर पैसे कमाने में नहीं उचटता। रात को दस बज जाए, बारह बज जाए तो भी मन नहीं उचटेगा। इधर-उधर की बातें करेंगे तो भी मन नहीं उचटेगा। वॉट्सएप चलाएंगे तो कितनी देर तक मन नहीं उचटेगा? उसे चलाने में मन उचटेगा नहीं, क्योंकि आगे-से-आगे दूसरों को मैसेज फॉरवर्ड करते रहेंगे और रिप्लाई देते रहेंगे, जवाब देते रहेंगे।

उससे निष्कर्ष क्या निकला? समाधान क्या निकला?

समाधान शायद ही निकलेगा, समय जरूर बर्बाद होगा। बर्बादी के कार्यों में हम समय बहुत लगाएंगे। बर्बादी के कार्य करने के लिए हमारे पास समय बहुत है। धर्माराधना करने के लिए समय होते हुए भी मन नहीं होता। हमारे पास समय बहुत है।

किस-किसके पास समय नहीं है?

समय तो 24 घंटे का ही रहेगा। हमारे लिए अलग से एक घंटा नहीं मिलेगा। हमारे लिए दिन-रात कभी 25 घंटों का नहीं होगा। जब भी रहेगा 24 घंटों का ही रहेगा। हमें जो कुछ भी करना है उसी के भीतर करना है। लोग समय निकालते हैं और वह निकलता है। बहुत सारे कार्यों को करने के लिए हम समय निकालते हैं या नहीं? समय का सही रूप से निर्धारण किया जाए तो ऐसा नहीं होगा कि समय नहीं निकलेगा। हमने अपने को बहुत व्यस्त बना लिया है, फालतू में मन को व्यस्त बना लिया।

धर्म मन को शांति देता है। समाधान देता है। मन को इधर-उधर डोलने से नियंत्रित करता है। मन ये सब करेगा, किंतु उसके लिए एक बात हमें ध्यान में रखनी पड़ेगी।

'धर्म भक्ति मन सदा सुहाए'

धर्म, मन को सुहाना चाहिए। मन को अच्छा लगना चाहिए।

'धर्म भक्ति मन आदर पावे'

बहुमान का भाव होगा, सम्मान का भाव होगा तो रुचिशीलता बनी

रहेगी और बहुमान नहीं होगा, सम्मान नहीं होगा तो बेगार काटने जैसा काम होगा। जबरन बैठाई हुई बात मन स्वीकार नहीं करता, एक्सेप्ट नहीं करता। वह उससे दूर भागता है। ऐसी स्थिति में मन धर्म भक्ति में नहीं लग पाएगा। धर्म में मन लगने के लिए रुचिशीलता होनी चाहिए और बहुमान होना चाहिए।

हमारे यहाँ क्या होता है?

जब फुरसत होगी तब धर्माराधना करेंगे। जब सारे कार्यों से फुरसत हो जाएगी तो धर्माराधना करेंगे।

हमने प्राथमिकता किसको दी?

दूसरे कार्य पहले हैं। धर्म लास्ट में है। धर्म अंतिम में है जबकि जीवन की शुरुआत धर्माराधना से ही होनी चाहिए। दिन की शुरुआत धर्माराधना से ही होनी चाहिए ताकि धर्म सदा मन में बना रहे।

धर्म क्रियाएं अलग हैं और धर्म अलग। मैं कई बार यह बात बताता हूँ कि धर्म क्रिया अलग है और धर्म अलग है। धर्म है पवित्र भावना। आत्महित की भावना। आत्मरमण। क्रोध, मान, माया, लोभ से हटकर जो हम अनुभव करेंगे, जो अनुभूति होगी वह धर्म की अनुभूति है।

रविवार के दिन बताया था, साधना, उपासना और आराधना के बारे में। साधना दीर्घकालिक होती है। यह होती रहेगी। साधना के बीच में उपासना होती रहनी चाहिए। उपासना यानी अल्प समय के लिए साधना को बल देने के लिए किया गया उपक्रम। उपासना रूप धर्मानुष्ठान इसलिए करना कि साधना में शिथिल हो रहा मन साधना में रमे। इस वास्ते धर्म के प्रति बहुमान जरूरी है।

वह तब होगा, जब मन में धर्म की सही समझ होगी। जब तक धर्म की समझ नहीं आएगी, तब तक बहुमान के भाव जगने मुश्किल हैं।

धर्म की समझ किससे आएगी?

धर्म की समझ आएगी नौ तत्त्वों का ज्ञान होने से।

'जीवादि नव तत्त्व हिये धर, हेय-ज्ञेय समझीजे,
तीजो उपादेय ओलखने, समकित निर्मल कीजे रे, सुज्ञानी जीवा...'

क्या है हेय, ज्ञेय और उपादेय?

हेय का मतलब है छोड़ने योग्य।

हेय किसको कहते हैं?

जिसको छोड़ना है वह हेय।

ज्ञेय किसको कहते हैं?

ज्ञेय मतलब जिसको जानना है।

उपादेय किसको कहते हैं?

उपादेय का मतलब होता है स्वीकार करना, ग्रहण करना।

हमें यह बात मालूम नहीं होगी कि उपादेय क्या है, पाप क्या है, पुण्य क्या है, किसको स्वीकार करना है, किससे दूर रहना है, तो किसको स्वीकारेंगे और किससे दूर रहेंगे?

बहुत से लोगों को हेय, ज्ञेय और उपादेय के बारे में पता नहीं है। कुछ लोगों को सामान्य जानकारी होगी कि पाप छोड़ने लायक है। पाप छोड़ने लायक है किंतु वह जानने लायक भी है।

'सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं'

पाप के मार्ग को जानना, पाप को भी जानना। क्योंकि जाने बिना पाप भी छूट नहीं पाएगा।

क्रोध करना पाप है या धर्म?

(श्रोतागण– पाप)

अहंकार करना पाप है या धर्म?

(श्रोतागण– पाप)

अभिमान करना पाप है या धर्म?

(श्रोतागण– पाप)

सोचकर, अच्छी तरह से बताना। अच्छी तरह से समझ लेना। मेरे कहने से मत बोलना।

हमको दिन में कितनी बार क्रोध आता है?

(श्रोतागण– अनेक बार आता है)

अनेक बार क्यों आता है?

(फूसराज जी भूरा– कोई बात चुभती है तो क्रोध आता है)

क्यों चुभती है कोई बात? बात चुभती क्यों है?

(गौरव जी गोलछा– अपेक्षा के कारण)

किसी सामान्य हाथ पर मिर्ची लगाने से जलन नहीं होगी किंतु हटी

हुई चमड़ी पर मिर्ची लगाएंगे तो जलन होगी या नहीं होगी?

(श्रोतागण- जलन होगी)

इसका क्या मतलब हुआ?

इसका मतलब है कि घाव होगा तो जलन होगी और हमारे भीतर कहीं-न-कहीं घाव है। उस घाव के कारण से बातें चुभती हैं। मन स्वस्थ रहेगा तो मेरे प्रति कितनी भी बातें हो जाएं मुझे चुभेगी नहीं। चाहे मेरे अनुकूल बात हो या प्रतिकूल, चुभेगी नहीं।

स्वस्थ होने का मतलब क्या है? किसको कहेंगे स्वस्थ?

अपने आपमें रहना स्वस्थ होना है। स्व में स्थित होना, स्वस्थ होना है। जिसका मन अपने आपमें रमा होता है, उसको कोई बात चुभती नहीं। जिसको बात नहीं चुभेगी, उसके भीतर क्रोध पैदा नहीं हो पाएगा।

भगवान महावीर के कानों में कीलें ठोकी गईं। भगवान महावीर को कितना गुस्सा आया?

(श्रोतागण- गुस्सा नहीं आया)

आपको क्या पता? आप वहाँ पर थे क्या? भगवान महावीर के कानों में कीलें हमने ही तो नहीं ठोकी? क्या पता, भगवान महावीर के कानों में कीलें ठोकने वाले हम ही रहे हों! भगवान महावीर के कानों में कीलें ठोकी गईं, किंतु उनको गुस्सा नहीं आया।

भगवान महावीर को गुस्सा क्यों नहीं आया?

इसकी समीक्षा करने पर बात स्पष्ट होगी कि भगवान महावीर का मन अपने आपमें स्थित था। अपने आपमें था। दुनिया क्या कर रही है इससे उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। कोई भला सोचे या बुरा उससे उनका कुछ भी नहीं जा रहा था। एक गीत में कहा गया है-

'कुल्हाड़ी से कोई काटे, कोई आ फूल बरसाए,
खुशी से दे दुआ इकसां, अजब सारे चलन ही है, जगत...'

कोई कुल्हाड़ी से काटे तो भी वही बात और कोई फूल बरसाए तो भी वही बात।

यह कहना आसान है। बोलना बहुत आसान है, किंतु सहना बहुत कठिन है। मन में कोई फर्क नहीं पड़े यह बहुत ही कठिन है, किंतु बहुत आसान

है। आप कहोगे कि म.सा. क्या बोल रहे हैं, कभी कठिन कह रहे हैं तो कभी आसान कह रहे हैं।

लंका मिर्ची का नाम आपने सुना होगा? झाल मिर्ची होती है ना! झाल मिर्ची की झाल कैसी होती है? कोई उसको खाए तो कैसी लगेगी? जिसके पेट में अल्सर है वह झाल मिर्ची खाए तो क्या होगा?

जो स्वस्थ है वह झाल मिर्ची खाए तो थोड़ी देर के लिए उसके मुँह में झाल लगेगी, ज्यादा नुकसान नहीं होगा, किंतु जिसको अल्सर है वह झाल मिर्ची खाए तो उसकी हालत बड़ी विचित्र हो सकती है। वह झाल मिर्ची को सहन नहीं कर पाता। वैसे ही हमारे भीतर झालें बनी रहेंगी, तो मन में चुभन पैदा होती रहेगी। जो स्वस्थ है उसके सामने कैसी भी कठोर बात आ जाए, कड़वी बात आ जाए, द्वेष भाव पैदा नहीं होगा। कोई कुल्हाड़ी से काट दे तो भी उसके भीतर द्वेष भाव पैदा नहीं होगा और फूल बरसाने पर भी बरसाने वाले के प्रति उसके मन में राग उत्पन्न नहीं होगा। उसे लगेगा नहीं कि कोई फूल बरसा रहा है। अपने मन को स्वस्थ बनाने का हमारा लक्ष्य होना चाहिए। बाकी रटी-रटाई परिभाषाओं को छोड़ दें।

सामायिक किसलिए कर रहे हैं?

(एक व्यक्ति ने कहा- मोक्ष जाने के लिए)

मोक्ष सामने पड़ा है क्या?

यहाँ व्याख्यान में आने की हर किसी को छूट है, पर मोक्ष जाने की सबको छूट है क्या?

मोक्ष जाने का क्राइटेरिया है। हर किसी को मोक्ष जाने का सर्टिफिकेट नहीं मिलेगा। हर कोई मोक्ष नहीं जा पाएगा। क्या सर्टिफिकेट है मोक्ष जाने का? मन चंगा होना चाहिए। मन साफ होना चाहिए। मन में ऊहापोह नहीं होनी चाहिए। कोई कुछ भी कहे, कितना भी कहे, कोई कितना ही बुरा करे, फिर भी चित्त में कोई फर्क नहीं आना चाहिए। यदि ऐसी हमारे मन की स्थिति होगी तो हमें मोक्ष मिलेगा। इसलिए मोक्ष की बात तो दोयम है।

पहली बात क्या होनी चाहिए?

पहली बात है, अपने मन को स्वस्थ बनाना। यदि मन स्वस्थ हो गया तो फिर अपने आप ही धर्म के लिए बहुमान पैदा हो जाएगा, सम्मान पैदा हो

जाएगा। आज भगवान महावीर के प्रति हमारे मन में श्रद्धा है।

भगवान महावीर के प्रति हमारी श्रद्धा क्यों है? बहुमान का भाव क्यों है? सम्मान का भाव क्यों है?

क्योंकि उन्होंने इधर-उधर की लाग-लपेट में अपना जीवन नहीं जीया। वे मेरे-तेरे के भावों से ऊपर उठ गए। उन्होंने अपने मन में यह विचार नहीं रखा कि यह मेरा है और यह तेरा है। उन्होंने समझा कि मैं, मैं हूँ। बस मैं हूँ। बाकी सब चीजें पराई हैं। उन्होंने अपना दिमाग इसमें नहीं लगाया कि कौन अच्छा समझ रहा है और कौन बुरा। वे मानते थे कि सामने वाले की अपनी मति है। सामने वाले की अपनी सोच है। उसकी जैसी सोच होगी, वैसा उससे काम होगा।

हमें अपने सोच को अच्छा बनाना है या बुरा?

(श्रोतागण- अच्छा बनाना)

हमारा सोच अच्छा कब बनेगा? कैसे बनेगा?

जब हम अच्छे लोगों की संगत करेंगे तो हमारा सोच अच्छा बनेगा और जब बुरे लोगों की संगति करेंगे तो वैसा ही सोच बनता चला जाएगा। इसलिए हमारी संगति, हमारी उठ-बैठ ऐसे लोगों के बीच होनी चाहिए जहाँ आत्मा-परमात्मा की चर्चा होती हो। जहाँ विकथा नहीं हो ऐसे लोगों के बीच हमारी उठ-बैठ होनी चाहिए।

उसकी बहू ऐसी आ गई। उसके घर में सास-बहू में रोज लड़ाई-झगड़ा होता रहता है। इससे तुम्हें क्या लेना-देना कि किसके घर में क्या हो रहा है। लोग जितनी चिंता अपने घर की नहीं पालते, उतनी चिंता दूसरों की पालते हैं। दूसरों की चिंता पालते रहेंगे तो अपना मन स्वस्थ नहीं रहेगा, यह बहुत स्पष्ट है। अत: अपने आपमें स्थित हो जाएं। अपने आपमें आ जाएं।

प्रतिक्रमण किसलिए किया जाता है?

अतिक्रमण का प्रायश्चित्त करने के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है। मर्यादाओं का उल्लंघन करने के बाद वापस अपने स्थान पर आने का नाम है प्रतिक्रमण। स्वत्व में आ जाना, निजत्व में आ जाना, अपने आपमें आ जाने का नाम है प्रतिक्रमण। हमने प्रतिक्रमण को बहुत आसान और बहुत सस्ता मान लिया है। सूर्यास्त होते ही हम आ जाएंगे, एक घंटा पाठ बोलने के बाद मिच्छा

मि दुक्कडं बोल देंगे और हो गया प्रतिक्रमण।

वॉशिंग मशीन में कपड़े डाल दिए, सर्फ डाल दिया, सोडा डाल दिया, किंतु पानी डालना भूल गए तो कितनी देर में कपड़े धुल जाएंगे?

(श्रोतागण- कपड़े नहीं धुलेंगे)

हम पाटियाँ बोलते हैं। मिच्छा मि दुक्कडं बोलते हैं, किंतु हमारे भीतर उसके भाव कितनी गहराई तक उतरते हैं? अब तक हमने संवत्सरी के कितने प्रतिक्रमण कर लिए?

किसी ने बीस बार किए होंगे, किसी ने चालीस बार तो किसी ने साठ बार भी किए होंगे। इतनी बार करने के बाद भी उनका जिस किसी से वैर-विरोध था, वह वैसा ही है या धुल गया? किसी के प्रति मन में पड़ी हुई गाँठ वैसी ही है या कुछ शिथिल हुई? वह गाँठ खुली या नहीं? मिच्छा मि दुक्कडं बहुत बार दे दिए, खमत-खामणा बहुत बार कर ली, किंतु हमारे भीतर रहा हुआ राग-द्वेष का भाव डिलिट नहीं होगा तो मन स्वस्थ कैसे होगा?

'धर्म भक्ति मन सदा सुहावे, धर्म भक्ति मन आदर पावे।'

धर्म की बात मन में सुहानी चाहिए और उसके प्रति मन में आदर का भाव होना चाहिए, क्योंकि धर्म से ही कल्याण होने वाला है। अधर्म से कल्याण कभी नहीं होगा। राग-द्वेष कभी कल्याण नहीं कर पाएंगे। कितना ही धन आ जाए वह कल्याण का मार्ग नहीं है। यदि धन से कल्याण होता तो सभी चक्रवर्तियों का कल्याण निश्चित हो जाता, किंतु हम देखते हैं कि चक्रवर्ती का भी धन से कल्याण नहीं हुआ। उसी चक्रवर्ती का कल्याण हुआ, जिसने वैभव का त्याग किया। जो साधु बन गया। इसलिए बहुत स्पष्ट बात है-

'सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्'

अर्थात् सभी मंगलों में धर्म मंगल है। सबसे उत्कृष्ट मंगल है धर्म। धर्म से बढ़कर और कोई उत्तम नहीं है। और कोई मंगल नहीं है। न ही हो सकता है। जिसके भीतर धर्म है उसका सदा मंगल है। धर्म से मंगल ही होगा, अमंगल की कोई गुंजाइश नहीं है, किंतु ऐसी आस्था, ऐसी दृढ़ता तब बन पाएगी जब अपने मन की सारी भड़ास को हटा देंगे। इसलिए राग-द्वेष को हटा मन की स्वस्थता का हमारा लक्ष्य बने। दुनिया कुछ भी कहे, कोई कुछ भी कहे, हमें अपने मन को स्वस्थ रखना है।

यह कठिन है, किंतु आसान है। यदि हमने कोई बात नहीं पकड़ी तो आसान है। यदि कोई बात पकड़ ली तो वह बात छूटनी मुश्किल है। वह पकड़ ही हमारे लिए कठिन होती है।

सुनंदा चारित्र में ऐसी ही बात को प्रस्तुत किया गया है। इस बात पर जोर दिया गया है कि–

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
कुदरत का यह खेल निराला, धन है फिर भी मन न आला
माता मन दुख पाव, भविकजन, सुंदर...
माता विजय को जब समझाती, उत्तर सुनकर वह करहाती
मिले न उसको चैन, भविकजन, सुंदर...

कुदरत के खेल निराले हैं। वह हममें कुछ–न–कुछ मिस्टेक रखती है। कोई–न–कोई कमी रखती है। कोई–न–कोई कमी रहेगी तो आदमी को सोचने का अवसर रहेगा। उसका अहंकार आसमान नहीं छू पाएगा? किसी को धन तो बहुत मिल गया, किंतु सोच सही नहीं मिला, सोच सही मिल गया, पर परिवार सही नहीं मिला। परिवार सही मिल गया, लेकिन मन उथल–पुथल वाला मिल गया। कोई–न–कोई कमी तो रहती है।

हमारे भीतर कोई–न–कोई कमी है या नहीं?

(श्रोतागण– कमी है)

हमारे भीतर कितनी कमियाँ हैं?

(श्रोतागण– बहुत सारी कमियाँ हैं)

और अच्छाइयाँ कितनी हैं?

हमारा घड़ा पानी से कितना भरा है?

सार्वजनिक नल के नीचे हमारा पानी भरने वाला घड़ा रखा हुआ है, पीछे पानी भरने वालों की लाइन लगी हुई है। हमारा घड़ा कितनी देर तक उस नल के नीचे रहेगा? यदि हमारा घड़ा नहीं भरा, हम वहाँ से नहीं खिसकेंगे तो पीछे वालों का नम्बर कैसे आएगा? हमारा घड़ा भर गया तो हमें वहाँ से बहुत जल्दी हटना होगा। वैसे ही यहाँ पर भी नल चल रहा है, किंतु हम पानी नहीं ले रहे हैं। तीर्थंकर भगवान का उपदेश पानी की तरह बरस रहा है, किंतु हम घड़े में भरना ही नहीं चाहेंगे तो कैसे भरेगा! घड़ा पहले ही भरा होता है। घड़ा खाली

नहीं होता। घड़ा, वायु से भरा हुआ है। वायु उसमें से बाहर निकलेगी तो पानी भरा जाएगा। भीतर की गैस यदि बाहर नहीं निकलेगी तो पानी घड़े में नहीं जाएगा। वैसे ही हमारे मन में बैठी हुई बातें यदि पहले नहीं निकलेंगी तो अच्छी बात हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगी।

कुदरत के खेल निराले हैं। धन मिला, किंतु मन की सुंदरता नहीं मिली, मन का सौंदर्य नहीं मिला। मन उद्विग्न होता रहता है। धन बहुत है किंतु माता दु:खी रह रही है। धन बहुत है लेकिन बेटा दु:खी रह रहा है। धन बहुत है पर पुत्रवधू दु:खी रह रही है। ऐसा है तो धन किस काम का।

कृष्ण वासुदेव ने कहा कि मेरी माँ यदि दु:खी रहती है तो मैं कैसी संतान! जिसकी माता बेटे के कारण से दु:खी हो वह बेटा सपूत है या कपूत?

(श्रोतागण– वह कपूत है)

जल्दी से मत बोलो। जल्दी से बोलना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि दूसरा प्रश्न सामने आ जाएगा कि आपकी वजह से तो कभी माता का मन नहीं दुखा? आपने तो अपने जीवन में माता का मन नहीं दुखाया?

मेरे खयाल से जवाब बहुत कठिन है कि इतने वर्षों में कभी माँ का मन नहीं दुखाया हो। पता नहीं हमने कितनी बार अपनी माँ का मन दुखाया होगा या दुखाया करते होंगे।

किस कारण से माँ का मन दुखाते हैं?

अपनी सोच के कारण से। अपनी समझ के कारण से हम माँ का दिल दुखा देते हैं।

विजय को उसकी माता ने कई बार समझाया। उत्तर में बेटे की उपेक्षा भरी बातें सुनकर माता मन–ही–मन बड़ी दु:खी होती है। दु:ख में कराहने जैसा उसका मन कराहता है। कभी वह मन–ही–मन रोने लग जाती है। वह भगवान को याद कर मन में कहती है कि हे भगवान! मैं कैसी दुनिया में पहुँची।

'दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे ना कोय।'

व्यक्ति दु:ख में होने पर भगवान को याद करता है, किंतु सुख में होने पर भगवान को याद नहीं करता। भूल जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि कुंती से श्रीकृष्ण ने कहा कि बुआ! तुम क्या चाहती हो, माँगो। कुंती ने कहा कि बेटा! मुझे सदा दु:ख देना।

क्या माँगा कुंती ने? क्या याचना की कुंती ने?

(श्रोतागण– कुंती ने दु:ख माँगा)

हम क्या माँगते हैं? हम क्या चाहते हैं? हम दु:ख चाहते हैं या सुख?

(श्रोतागण बोले– हम सुख चाहते हैं)

कृष्ण वासुदेव ने कहा, बुआ! यह क्या माँग लिया, ऐसा क्यों बोल रही हो?

कुंती ने कहा कि बेटा! दु:ख में रहूँगी तो तुम याद रहोगे। भगवान याद रहेंगे। यदि मैं सुख में चली गई तो भगवान से दूर हो जाऊँगी, तुमसे दूर हो जाऊँगी, मैं तुम्हें भूल जाऊँगी।

'उस सुख पर शिला पड़े जो प्रभु से दूर ले जाय'

कहने वाले कह रहे हैं कि उस सुख पर शिला पड़े जो प्रभु से दूर करता है। दु:ख में सबको भगवान याद आते हैं।

मन मसोस कर माता रोती, जान कर्मोदय सहती रहती,
पर दिल माँ का पास, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

हमारे यहाँ एक कहावत कही जाती है–

'लाचारी का नाम महात्मा गांधी'

नरेंद्र जी गांधी! यह महात्मा गांधी की बात है। यह नहीं कि 'लाचारी का नाम नरेंद्र गांधी' और 'लाचारी का नाम नरेंद्र मोदी।'

लोगों के सामने नरेंद्र मोदी जैसा कोई दूसरा विकल्प नहीं है तो किसको चुनें? यह लाचारी हो गई। यदि नरेंद्र मोदी जैसा कोई विकल्प मिल गया होता तो लोग पासा पलट देते, किंतु वैसा चेहरा नहीं है तो लाचारी का नाम नरेंद्र मोदी हो गया।

ऐसी बात चलती है, कि 'लाचारी का नाम महात्मा गांधी' अब इसके पीछे क्या रीजन है, मैं नहीं कह सकता। जब हम मुकाबला करने में समर्थ नहीं थे तो हमने सत्याग्रह की बात कर ली। कुछेक में सामर्थ्य होगा, मैं उस बात पर नहीं जाता, किंतु एक कहावत चालू हो गई 'लाचारी का नाम महात्मा गांधी।'

खैर, उस माँ का मन रोता रहता था। कोई समाधान नहीं होने से वह यह मानकर मन को समझाती कि कर्मयोग है। जब सारे उपाय करने के बाद समाधान नहीं होता तो हम सोचते हैं कि यह कर्मों का योग है। सारे उपाय करने

के बाद सोचा तो पहले ही सोच लेते। पहले ही सोच लेते तो इतना घुमाकर कान नहीं पकड़ना पड़ता। जब कोई समाधान नहीं मिलता है, तब यह मानते हैं कि कर्मों का योग है, कर्मों का उदय है।

माता विजय से अपनी बात कहती। उस समय कभी उसकी आँख में आँसू आ जाते तो विजय को अच्छा नहीं लगता था। वह कह देता, माँ! यह क्या तमाशा लगा रखा है? रो रही हो, रोने से क्या होगा।

माँ जानती है कि रोने से कुछ नहीं होगा। माँ जान रही है कि मेरे कहने से कोई बात मानने वाला नहीं है, फिर भी उसके पास माँ का दिल था। माँ के दिल में ममता का भाव होता है, इसलिए रोना आ जाता था। माँ ने अपने मन को बहुत समझाया, फिर भी रोना आ जाता था। माँ अपनी संतान का हित चाहती है। माँ चाहती है कि मेरी संतान सुखी रहे।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि माँ अपनी संतान के कल्याण के लिए जितना सोचती है, वैसा ही दुनिया के समस्त प्राणियों के प्रति सोच ले तो कितनों का कल्याण हो जाए।

हमारे यहाँ पाँच समिति, तीन गुप्ति को प्रवचन माता कहा गया है। प्रवचन माता संसार के सभी प्राणियों का हित चाहती है। ऐसी यदि हमारी माताएं बन जाएं तो परिवार में झगड़े का नाम ही नहीं रहेगा, किंतु आज घर-घर झगड़े हो रहे हैं। देवरानी और जेठानी में झगड़ा हो जाता है।

देवरानी और जेठानी में झगड़ा क्यों होता है?

संतानों के कारण से भी।

एक देवरानी भोजन बना रही थी। रोटी बना रही थी। एक रोटी थोड़ी जल गई और एक रोटी अच्छी सिंक गई। जेठानी का बेटा आया खाने के लिए। देवरानी का बेटा भी उसी समय आया। सहज रूप से देवरानी ने ठीक सिंका हुआ फुलका अपने बेटे को दे दिया और जला हुआ फुलका जेठानी के बेटे को दे दिया।

अब क्या होगा?

जेठानी के मन में फर्क पड़ गया। जेठानी के मन में आ गया कि अपने बेटे को अच्छी सिंकी रोटी देती है और मेरे बेटे को जली हुई रोटी देती है। बच्चों के मन में कोई फर्क नहीं आया। बच्चे तो खा-पीकर खेलने लगे। उस बच्चे के

मन में नहीं आया कि मुझे जली हुई रोटी दी, किंतु जेठानी के मन में आया कि मेरे बेटे के साथ भेदभाव करती है। देवरानी ने सहज में काम किया होगा, किंतु जेठानी की आँखों में भेद का विचार आया। वह बात जेठानी के भीतर जम गई। अब देवरानी कोई भी काम करती तो जेठानी देखती कि मेरे बेटे के लिए कैसा कर रही है और अपने बेटे के लिए कैसा कर रही है।

इस तरह देखने से भीतर भेद बढ़ेगा, क्योंकि दृष्टि वैसी ही बन गई। इस नजरिया से देखने पर छोटी-सी बात होने पर भी वह सोचेगी, यह देख लो, यह देख लो। ऐसा सोचते-सोचते एक दिन बम विस्फोट हो जाएगा कि तुमने मेरे बेटे के साथ भेदभाव किया। तुमने मेरे बेटे के साथ ऐसा-ऐसा भेद किया। तुम मेरे बेटे के साथ भेद करती रही हो।

इतने दिनों तक मसाला क्यों भरा, इतने बारूद भरे क्यों? जिस दिन वह बात हुई उसी दिन बात स्पष्ट कर ली होती तो कोई समस्या खड़ी नहीं होती। देवरानी ने जान-बूझकर जला फुलका दिया हो, यह जरूरी नहीं है। यदि जान-बूझकर भी दिया हो तो उसके मन की बात है, मुझे क्यों टेंशन पालना। किंतु ये छोटी-छोटी बातें हमारे मन में पहाड़ बन जाती हैं। गाँठें बन जाती हैं। गाँठ बन जाने पर मन स्वस्थ नहीं रहेगा। वह दु:खी हो जाएगा।

बंधुओ! हम विचार करें कि हमारे माता-पिता दु:खी तो नहीं हो रहे! माता-पिता दु:खी नहीं होने चाहिए। उनको किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं होना चाहिए। हमारे पास संपत्ति है, वैभव है पर घर में कोई प्राणी दु:खी है तो शांति नहीं मिलेगी। शांति का सही उपाय है कि घर में सारे लोग संतुष्ट रहें। सभी अच्छे विचारों से रहें।

यह काम तब होगा जब हमारे भीतर धैर्य आ जाएगा। जब सहनशीलता आ जाएगी। सहनशीलता बढ़ जाए तो परिवार में होने वाली छोटी-मोटी बातों की पकड़ नहीं रहेगी और घर में शांति बनी रहेगी। छोटी-छोटी बातों को पकड़कर हम तिल का ताड़ बनाना चालू कर दिए तो घर, घर नहीं रहकर कब्रिस्तान बन जाएगा।

कब्रिस्तान होना तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि वहाँ पर लड़ाई-झगड़े नहीं होते। कब्रिस्तान में कभी लड़ाई-झगड़े सुने क्या आपने? दफनाने वालों ने भले ही झगड़ा किया हो कि हम यहाँ पर नहीं, यहाँ पर दफनाएंगे, तुम

हमें रोकने वाले कौन होते हो, किंतु कब्रिस्तान में सोने वाला झगड़ा नहीं करता।

हम भी विचार करें। धर्म हमें उसी स्थान पर ले जाता है कि देख लो तुम्हें भी श्मशान-कब्रिस्तान की यात्रा करनी है। क्यों लड़ाई-झगड़ों में पड़ना और यहाँ के झगड़े यहीं रह जाएंगे। कुछ भी साथ जाने वाला नहीं है।

ये सुंदर संस्कार हमारे भीतर जगेंगे धर्माराधना से। धर्म की भावना और धर्म के प्रति बहुमान का भाव रहेगा तो हम बहुत सी बातों से अपने आप बचाव करने में समर्थ होंगे। छोटे-छोटे झगड़ों से हमारा मन अशांत हो जाता है, हमारा लक्ष्य धर्माराधना का होगा तो हमारी अशांति दूर होगी और हम सही रास्ते पर चलेंगे।

तपस्या का दौर चल रहा है। मासखमण की तपस्या भी चल रही है। भावना जी वया, महासती श्री जयती श्री जी, महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. इसी दौर में चल रही हैं। भाइयों में भी तपस्या का दौर चल रहा है। अभिषेक जी कांठेड़ ने 21 के पच्चक्खाण किए हुए हैं। और भी कई तपस्याएं चल रही हैं। हम अपने मन को स्वस्थ बनाए रखने का लक्ष्य रखें। मन स्वस्थ रहेगा तो समाधि में रहेंगे। समाधि मोक्ष में ले जाने वाली होगी। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

18 जुलाई, 2023

15

अन्तर का सब कल्मष धो लें

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'सदा धर्म की जय-जय बोलें, अन्तर का सब कल्मष धो लें।'

कहा गया है कि 'धर्म बने मुझ प्राण।' धर्म जब मेरा प्राण बनेगा या मेरा भीतर ऐसी समझ आ जाएगी कि धर्म मेरा प्राण है तो कभी भी उस को छोड़ा नहीं जाएगा। जैसे प्राण छूटने पर शरीर छूट जाता है, वैसे ही समझ लो कि धर्म छूटने से जीवन छूट गया। जीवन की आभा धर्म से है। मान से नहीं, ईमान से है। ईमान है तो जीवन की आभा है। धर्म हमारे जीवन की आभा है। धर्म चला गया, इज्जत चली गई तो फिर जीना, जीना क्या!

'सदा धर्म की जय-जय बोलें, अन्तर का सब कल्मष धो लें'

दो प्रकार से जय बोली जाती है। एक जय देखा-देखी बोली जाती है। देखा-देखी यानी कोई जय बोल रहा है तो मैं भी बोल दूँ। जैसे यहाँ पर बहुत बार आपके द्वारा बोला जाता है हर्ष-हर्ष, जय-जय। सच्ची बात बताना, ईमान की बात बताना, जिस समय आप हर्ष-हर्ष, जय-जय बोलते हैं, उस समय आपको कितना हर्ष होता है? आपको सच में हर्ष होता है क्या? आपको हर्ष होता है या वैसे ही हर्ष-हर्ष, जय-जय बोल देते हैं? मुझे लगता नहीं कि हर्ष होता होगा। यह गतानुगति है। किसी ने प्रेरित किया और हमने बोल दिया हर्ष-हर्ष, जय-जय।

आचार्य पूज्य गुरुदेव अहमदाबाद विचरण कर रहे थे। शहर के मध्य क्षेत्र में रामसिंह जी चौधरी रहते थे। रामसिंह जी का निवेदन था कि गुरुदेव उस

एरिया में पधारें। संयोग से गुरुदेव उस एरिया में पधार गए। उस समय रामसिंह जी का चेहरा जैसा दिखा वैसा पहले कभी नहीं देखा गया। उनके चेहरे पर अपूर्व हर्ष, अपूर्व उल्लास नजर आ रहा था। जैसे भगवंतों के, तीर्थंकरों के गुणों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, शब्दों में गूँथा नहीं जा सकता, वैसे ही उस समय के उनके हर्ष को शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता। रामसिंह जी बहुत हर्षित थे। उनमें बहुत उल्लास था। उसकी परिणति में उन्होंने दिन भर प्रभावना बाँटी। प्रार्थना में, व्याख्यान में, दोपहर में जो भी आया सबको प्रभावना बाँटी।

मैं प्रभावना का सपोर्ट नहीं कर रहा हूँ। प्रभावना के लिए प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ। उनकी विचारधारा मंदिरवालों की तरफ थी, किंतु गुरुदेव के प्रति भी अनन्य भक्ति थी। उनका उस दिन का रूप वस्तुत: प्रसन्नता से ओत-प्रोत था। हर्ष से भरा हुआ था। वैसा हर्ष यहाँ हर्ष-हर्ष बोलने वालों में मुझे नजर नहीं आया। हर्ष बोलने-बोलाने से नहीं होता। अपने आप होता है हर्ष। जब भक्ति में हमारा मन लीन हो जाएगा तो अपने आप हर्ष हो जाएगा। मुँह से अपने आप निकलेगा 'हर्ष-हर्ष, जय-जय।'

जय कब बोली जाएगी?

जब अन्तर भक्ति से भर जाएगा, तब स्वत: जय की गुंजार हो जाएगी। मटकी से पानी कब बाहर निकलने लगेगा?

जब मटकी भर जाएगी, तब पानी बाहर निकलने लगेगा। जब तक मटकी नहीं भरती, तब तक पानी को अपने भीतर समाहित करती रहती है। जैसे ही मटकी भरती है वैसे ही पानी बाहर निकलने लगता है। उसी तरह हमारे भीतर धर्म भक्ति प्रगाढ़ होगी, तो जय-जयकार अपने आप हमारे अन्तर से गूँजेगी।

आनंदघन जी महान साधक हुए हैं। लगभग चार सौ वर्षों से उनके द्वारा लिखी गई कविताओं का उच्चारण किया जा रहा है।

'शांति जिन एक मुज विनति'

उन्होंने शब्दों की जोड़-तोड़ नहीं की। उन्होंने बैठकर स्तुति की पंक्तियाँ लिखने का प्रयत्न नहीं किया। वे भक्ति में रमे और रमते हुए जो स्वर फूटे, जो स्वर निकले, वही स्तुति बन गई। उन्होंने अलग से कोई प्रयत्न नहीं

किया होगा। अन्तर से स्वर निकलने की बात ही अद्‌भुत होती है। शब्दों की जोड़-तोड़ करने से उसमें अन्तर्भाव नहीं आ पाएंगे। अन्तर्भावों से निकले शब्दों के भाव बहुत गहराई लिए होंगे। वह चीज भक्ति से सराबोर मिलेगी।

भक्ति से सराबोर वे स्तुतियाँ आज चार सौ वर्षों बाद भी जिंदा हैं। एक छद्‌मस्थ द्वारा लिखी गई स्तुति आज भी जिंदा है। बहुत कम स्तुतियाँ ऐसी होंगी जो चार-पाँच सौ साल बाद भी जिंदा हो।

जब हमारा हृदय भी श्रद्धा से सरोबार हो जाएगा तो अन्तर से ध्वनि अपने आप निकलने लगेगी। किसी के कहने पर की गई स्तुति, स्तुति नहीं होगी। किसी के कहने पर गाया गया गाना, गाना नहीं होगा।

एक गायक था तानसेन। वह बहुत अच्छा गाता था। एक दिन बादशाह अकबर उससे कहने लगे, तानसेन! तू इतना मधुर गा रहा है, तुम्हारे गुरु कैसा गाते होंगे? अकबर ने कहा कि मुझे तुम्हारे गुरु का गाना सुनना है। वह जैसा सम्मान चाहेंगे वैसा किया जाएगा।

तानसेन ने कहा, हुजूर! ऐसा संभव नहीं है। वे आपके दरबार में आकर नहीं गाएंगे।

बादशाह ने कहा, क्यों नहीं आएंगे?

तानसेन ने कहा, क्योंकि वे भगवान के लिए गाते हैं। वे अपने आपके लिए गाते हैं, दूसरों के लिए नहीं गाते।

बादशाह ने कहा, नहीं-नहीं, तुम कैसे भी करो, मुझे उनका गाना सुनना है। तुम बहाना मत बनाओ, तुम्हारे गुरु का गाना सुनना है।

तानसेन ने कहा, आपको मेरे गुरु का गाना सुनना ही है तो आपको किसान का वेश बनाना पड़ेगा और छुपकर सुनना होगा। तानसेन ने कहा कि वह पास के जंगल में हैं। जब उनके मन में भक्ति उमड़ेगी तभी वे गाएंगे। दिन हो या रात जैसे ही भक्ति उमड़ेगी वे गाना शुरू करेंगे।

बादशाह ने कहा, जैसा भी हो मैं तुम्हारे गुरु का गीत सुनना चाहता हूँ।

जंगल में एक कुटिया के आस-पास बादशाह को छुपाया गया। पेड़ों की आड़ में बादशाह को बैठाया गया। अचानक गुरु की स्वरलहरी निकली और बादशाह झूम गया। तानसेन ने कहा कि कोई प्रतिक्रिया नहीं होनी चाहिए।

गुरु को मालूम नहीं पड़ना चाहिए कि हम लोग सुन रहे हैं। बादशाह को तानसेन के गुरु का गीत बहुत कर्णप्रिय लगा। उसने तानसेन से कहा, मैं तो सोच रहा था कि तुम्हारा ही गीत सर्वश्रेष्ठ है, किंतु तुम्हारे गुरु का तो मुकाबला ही नहीं।

तानसेन ने कहा, हुजूर! मैं आपके लिए गाता हूँ और मेरे गुरु भगवान के लिए गाते हैं, इसलिए इतना फर्क है। तानसेन ने कहा कि मैं शब्दों से गा रहा हूँ और वे भाव से गा रहे हैं। वे भक्ति से गा रहे हैं और मैं पेट पालने के लिए गा रहा हूँ, इसलिए सदा अंतर रहेगा।

कोयल से कोई कह दे कि तू थोड़ा गीत सुना दे तो कोयल बोलेगी क्या? कोयल गीत सुनाएगी क्या?

जब आम पर मंजरी आएगी तो उसकी गुंजार बिना कहे चालू हो जाएगी। वैसे ही जब हमारा दिल भक्ति से सराबोर होगा तो गुंजार अपने आप निकलेगी। मन में कुंठा होगी तो वह गेय बाहर प्रवाहित नहीं होगा। वह चीज बाहर नहीं आएगी।

'सदा धर्म की जय-जय बोलें, अन्तर के कल्मष को धो लें'

कल्मष मतलब कालुष्य। पता नहीं हमारे मन में कितना कालुष्य भरा हुआ है। दर्पण में आप चेहरा देखने के लिए खड़े होते हैं तो दर्पण आपको चेहरा दिखाता है या नहीं?

(श्रोतागण बोले- दिखाता है)

साफ पानी में आप अपना चेहरा देखना चाहेंगे तो चेहरा दिखेगा या नहीं?

(श्रोतागण बोले- दिखेगा)

आजकल ऐसी टाइल्स आती है, जिनमें चेहरा झलकने लगता है। हमने अपने मन में अपनी झलक देखी, वह कैसी है? दर्पण में चेहरा दिख जाता है, किंतु मन में दर्पण के समान झलक आती है क्या?

कल हर्षित मुनि जी म.सा. बता रहे थे कि जब अन्तर में देखने लगते हैं तो झपकी आने लगती है।

जिस दर्पण पर कालिख पोत दिया गया है, उसमें क्या दिखेगा! जैसे कालिख पुते हुए दर्पण में चेहरा नहीं दिख पाता, वैसे ही हमारा मन कालुष्य से इतना भरा हुआ है कि उसमें हमें आत्मा और परमात्मा की झलक दिखती ही

नहीं, जबकि मन हमारे भीतर की झलक को दिखाने वाला है, किंतु हमारे मन पर इतना कालुष्य पुत गया कि देखना चाहने पर भी नहीं दिखता।

क्या है कालुष्य? क्या है कल्मष?

राग-द्वेष कालुष्य है।

हम कितने राग में जी रहे हैं और कितने द्वेष में जी रहे हैं?

वैसे सामान्यतया हमें लगता है कि हमारे मन में राग-द्वेष नहीं है, किंतु भीतर राग-द्वेष की गहरी परतें पड़ी हुई हैं। उनको अभी हटाया नहीं। वर्तमान में हम सामायिक में भी बैठे हुए हैं, व्याख्यान भी सुन रहे हैं। हमको नहीं लगता कि राग-द्वेष में हैं, किंतु राग-द्वेष जमा हुआ है।

फिटकरी लगाने से पानी में नीचे कचरा जमा हुआ है। पानी ऊपर से साफ है, किंतु नीचे कचरा जमा हुआ है। पानी को हिलाते ही उसमें गंदलापन आ जाएगा। जो गंदलापन नीचे जमा हुआ है वह पानी के ऊपर आ जाएगा। वैसे ही हमारा राग-द्वेष अभी जमा हुआ है। हम शांत नजर आते हैं, अपने आपमें शांति की अनुभूति करते हैं, किंतु कोई हमसे थोड़ी-सी हलकी बात कर दे तो हमारे भीतर जमा राग-द्वेष का कचरा ऊपर आ जाएगा। आ जाएगा या नहीं?

(श्रोतागण बोले- राग-द्वेष का कचरा ऊपर आ जाएगा)

हमारा मन पारदर्शी नहीं बन पा रहा है। मन बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। कोहिनूर हीरा तो सामान्य होगा। कोहिनूर हीरा कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। कोहिनूर हीरा तो किसी के भाग्य से किसी को मिल गया। हमारा मन उससे भी बढ़कर है। कोहिनूर हीरे से कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाएगा, किंतु मन को यदि साध लें तो मोक्ष दूर नहीं है।

'नर नारायण बन जाएगा, जो सोया सिंह जगाएगा'

सोये हुए मन को जगाने की आवश्यकता है। सोया मन जग जाए तो फिर कोई देर नहीं लगेगी।

धन्ना जी स्नान कर रहे थे। सुभद्रा आदि धर्मपत्नियाँ उन्हें नहला रही थीं। उसी समय सुभद्रा की आँखों से गर्म-गर्म आँसू टपका और धन्ना जी के मोर (पीठ) पर जा गिरा। धन्ना जी ने सोचा कि यह गर्म-गर्म पानी कहाँ से टपका! उन्होंने ऊपर देखा तो सुभद्रा की आँखों में आँसू दिखे। सुभद्रा की

आँखों में आँसू देखकर धन्ना जी हतप्रभ रह गए। वे सोचने लगे कि भयंकर से भयंकर कठिनाइयों में कभी सुभद्रा की आँखों में आँसू नहीं देखा, आज आँसू क्यों है! धन्ना जी विचार करने लगे कि इसकी सोच सदा सकारात्मक रही है, पर आज क्या हो गया! वह सोचने लगे कि सुभद्रा ने कभी आक्रोश की बात नहीं की, हर कठिनाइयों में साथ दिया, संबल दिया और आज उसकी आँखों में आँसू! वे बोल उठे–

'सुन सजनी सच कह कथनी, तेरा मुखड़ा आज उदास रे,
क्यूं बहती अश्रु धार रे ...'

आपने कभी अपनी घरवाली से पूछा कि आपका मुखड़ा उदास क्यों है? कभी उसका मुखड़ा उदास देखा? देखा भी होगा। नहीं देखने जैसी बात नहीं है।

खैर, धन्ना जी ने आगे बढ़कर पूछा कि सुभद्रा तुम उदास क्यों हो? धन्ना जी के पूछने पर सुभद्रा कहती है, भाई में ऐसा वैराग चढ़ा है कि वह साधु बनने को तैयार है। साधु बनने के लिए वह अपनी पत्नियों को समझा रहा है। एक-एक दिन, एक-एक पत्नी को समझा रहा है। जिस दिन वह 32 पत्नियों को समझा लेगा, उस दिन घर-परिवार छोड़कर साधु बन जाएगा। बस उसकी यही बात सोचकर मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। इसी बात से मेरा दिल भर गया। जैसे सुभद्रा का दिल भर गया तो आँसू बहने लगे वैसे ही धर्म श्रद्धा से हमारा मन भरेगा तो हृदय में उमंग जगेगी और भीतर से गीत चालू हो जाएगा।

'तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो'

यानी तू जो है, वही परमात्मा है। आया कभी ऐसा विचार आपके भीतर कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही परमात्मा का रूप है और जैसा परमात्मा का रूप है, वैसा ही मेरा रूप है। मेरे और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।

हमारी आत्मा भी सिंह के समान है, किंतु हमने अभी भेड़ों का साथ कर रखा है। राग-द्वेष का साथ कर रखा है इसलिए हमारी शक्ति हमें ज्ञात नहीं हो पा रही है। आपने कहानी सुनी होगी कि भेड़ों के साथ एक सिंह शावक हो गया तो उसकी चर्या वैसी ही हो गई। एक बार वह नदी पर पानी पीने गया, वहाँ उसने एक अन्य सिंह की दहाड़ सुनी। उसका आकार-प्रकार देखा। उसने जब पानी पीने के लिए नदी में मुँह डाला तब देखा कि मेरा आकार-प्रकार उससे मिल रहा है।

किससे मिल रहा है?

(श्रोतागण बोले- सिंह से मिल रहा है)

आपका आकार-प्रकार किससे मिल रहा है? भेड़ों से मिल रहा है या सिंह से?

मैं नहीं जानता कि किससे मिल रहा है। उसने सिंह की दहाड़ सुनी थी, उसने भी दहाड़ने का सोचा और दहाड़ लगाई। जैसे ही उसने दहाड़ लगाई सारी भेड़ें भाग गईं। जैसे वे भेड़ें भागीं उसी तरह हमारा सोया हुआ सिंह जग जाएगा और हम भी दहाड़ लगाएंगे तो राग-द्वेष रूपी भेड़ें भाग जाएंगी। वहाँ राग-द्वेष खड़े नहीं रह सकेंगे, किंतु यह जागरण हो तब न। हम राग-द्वेष, मोह में इतने बँधे हुए हैं कि हमारे मुँह से आवाज ही नहीं निकल पाती है। हम हिम्मत ही नहीं कर पाते हैं। हम पर मोह का शिकंजा कसा हुआ है। हमारे पर प्रतिबंध लगा हुआ है जिससे हम आत्महित में कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, किंतु जिस दिन सोया हुआ सिंह जगेगा, राग-द्वेष को भगाएंगे तो चेतना से अन्तर ध्वनि निश्रित होने लगेगी।

शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आगे आनंदघन जी ने ऐसा ही कहा है-

'नमो मुझ, नमो मुझ रे'

अर्थात् मैं अपने को ही नमस्कार कर रहा हूँ। अरिहंत भगवान को नमस्कार कर रहा हूँ, सिद्ध भगवान को नमस्कार कर रहा हूँ तो अपने आपको नमस्कार कर रहा हूँ। मेरी आत्मा ही अरिहंत है। मेरी आत्मा ही सिद्ध है, किंतु यह हिम्मत कब होगी? जब अपने भीतर की शांति की पहचान होगी तब यह अनुभूति अपने आप होगी कि मैं कौन हूँ। तब यह अनुभूति होगी कि मेरा रूप भेड़ और बकरियों के साथ रहने वाला नहीं है। मैं अद्भुत रूप वाला हूँ, मेरा अलग ही रूप है। मेरा रूप सिंह के समान है। यदि इस तरह जागरण हो गया तो वह दिन वह क्षण हमारे लिए धन्य-धन्य बन जाएगा।

आते हैं सुभद्रा की बात पर। सुभद्रा की आँख में आँसू देखकर धन्ना जी ने आँसू आने का कारण पूछा और उसने बताया कि मेरा भाई दीक्षा लेने जा रहा है, इसलिए मेरी आँख भर गई, मैं दु:खी हो गई। धन्ना जी ने थोड़ी चुभती बात कह दी कि तुम्हारा भाई कायर है, कमजोर है, वह क्या साधु बनेगा।

धन्ना जी ने कहा कि तुम्हारा भाई कायर है, जो एक-एक पत्नी को समझाने में लगा हुआ है। जो शूरवीर होता है वह एक साथ मुँह मोड़ता है। धीरे-धीरे करना अबलाओं की रीत है, शूरवीरों की नहीं।

सुभद्रा ने कहा, नाथ! कहना बहुत सरल है।

समय पलटते देर नहीं लगती। वहाँ भी समय ने पलटा खाया। अचानक धन्ना जी ने कहा, बहनो! अलग हो जाओ।

आहाऽ... आहाऽ... आपका भी मन बन रहा है क्या? किस-किसका मन बन रहा है?

धन्ना जी कहते हैं, आज बता दूँ कि मेरी माँ ने कैसा दूध पिलाया। वे कहते हैं, बहनो! अलग हो जाओ।

उनकी बात सुनकर सुभद्रा कहती है, नाथ! यह क्या हुआ? यह तो मजाक की बात है।

धन्ना जी कहते हैं- जिनके लिए मेरे मुँह से बहन निकल गया, उनको पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। धन्ना जी आगे कहते हैं, तुम मेरी गुरु हो, तुमने मेरी सोई हुई आत्मा को जगा दिया। जब सोया सिंह जग जाता है तो वह उठ खड़ा हो जाता है।

भगवान महावीर कहते हैं-

'उट्ठिए नो पमायए'

अर्थात् नींद खुल गई तो उठो, खड़े हो जाओ। खड़े नहीं हुए, सोए ही रह गए तो हवा का झोंका आएगा और झपकी आ जाएगी। झपकी आएगी तो पता नहीं वापस कब उठना होगा।

उठो नर-नारियों जागो, जगाने संत आए हैं,
धर्म उपदेश ये प्यारा, सुनाने संत आए हैं
फँसे हो फँसते जाते हो, जगत के गोरखधंधों में
जाल मकड़ी में मत उलझो, छुड़ाने संत आए हैं, उठो...

किसमें फँस रहे हैं? किसमें फँस रहे हो?

(श्रोतागण- मकड़ी के जाल में फँस रहे हैं)

मकड़ी जाल बनाती है कि कोई जीव उसमें फँसेगा तो मैं उसका शिकार कर लूंगी, किंतु फँसता कौन है?

(श्रोतागण– मकड़ी फँसती है)

मकड़ी की तरह ही हम भी ताना–बाना बुनते रहते हैं। हम भी मकड़ी की तरह जाला बुनते रहते हैं और खुद ही उसमें फँस जाते हैं।

कौन फँसता है?

जो जाला बुनता है वही फँसता है। इसलिए कहा गया है कि मकड़ी के जाल में मत फँस। 'जाल मकड़ी में मत उलझो छुड़ाने संत आए हैं।'

किस–किसको मकड़ी के जाल से छुटकारा पाना है? कौन–कौन छुटकारा पाना चाहते हैं?

(निर्वाण मुनि जी बोले– एक भी व्यक्ति हाथ खड़ा नहीं कर रहे हैं)

हाथ खड़ा करेंगे तो आप हाथ पकड़ लोगे क्या? इतना लम्बा हाथ है आपका कि यहाँ से बैठ–बैठे हाथ पकड़ लोगे?

सूरत में मेरा व्याख्यान हो रहा था। पर्युषण का तीसरा या चौथा दिन था। यहीं नीमच के सुमित जी राठौर चलते व्याख्यान में खड़े होकर कहने लगे कि मुझे दीक्षा पचखा दो। मैंने कहा, रुको तो सही। उन्होंने कहा, नहीं–नहीं! अब मुझे नहीं रुकना। मुझे दीक्षा लेनी है। आप मुझे दीक्षा पचखा दीजिए। मैंने कहा कि अभी रुको, बात करते हैं पर वे आग्रहशील बने रहे। मैंने श्रीचंद जी कोठारी को दीक्षा दी, उसके बाद मालूम पड़ा कि लोगों के बैंक खाते आदि चलते रहते हैं। बाद में ऐसी समस्या नहीं आए, इसलिए सुमित जी से कहा कि अभी रुको, किंतु उन्होंने कहा, नहीं–नहीं, आप मुझे अभी दीक्षा पचखा दीजिए।

धन्ना जी जैसा काम करने को कौन तैयार हो गए?

धन्ना जी जैसा काम सुमित जी ने कर दिखाया कि मुझे तत्काल दीक्षा दे दीजिए। उन्होंने कहा कि मुझे तत्काल दीक्षा लेनी है, अब देर नहीं करनी।

आपके भीतर ऐसा भाव जगा क्या?

किसी का जगा हो तो धीरे से खड़े होना। कोई देख न ले, बाद में गाँव में बातें करेंगे कि व्याख्यान में खड़ा हो गया। सुमित जी का मन वैराग्य से इतना भर गया कि वे एकदम खड़े हो गए। व्याख्यान सुन रहे थे और खड़े होकर कहने लगे कि मुझे अभी दीक्षा लेनी है। ऐसा तब होता है जब सोया हुआ सिंह जग जाता है। सोया हुआ सिंह जग जाता है तब ऐसा होता है कि अब मुझे एक क्षण

भी विलंब नहीं करना। तत्काल साधु जीवन स्वीकार करना है। जैसे धन्ना जी चले वैसे ही सुमित जी चल पड़े।

यह होती है धर्म की श्रद्धा। धर्म श्रद्धा मन में इतनी भर जाती है तो व्यक्ति अपने आपको रोके रख नहीं पाता। कितने भी रोकने वाले आ जाएं, कितने लोग भी समझाने लगें, व्यक्ति नहीं रुकता। तब व्यक्ति समझ जाता है कि कुछ भी नहीं है संसार में। संसार को हम अनादिकाल से देख रहे हैं, किंतु क्या सुख मिल रहा है? सूखे के सूखे रह गए। भूखे के भूखे रह गए। मृत्यु के टाइम गीला आटा साथ में बाँधते हैं, किंतु वह आटा खा नहीं पाता। घर वाले ऐसा बंदोबस्त करते हैं कि कहीं श्मशान से लौटकर घर वापस न आ जाए। कहीं भूत बनकर वापस घर न आ जाए। वापस आ गया तो मुश्किल खड़ी कर देगा।

आदमी, आदमी पर विश्वास नहीं करता। आदमी, आदमी से डर रहा है। जंगल के पशु भी आदमी से डरते हैं।

क्यों डरते हैं जंगल के पशु आदमी से?

क्योंकि उनको आदमी पर भरोसा नहीं है। आदमी भरोसेमंद नहीं है। आदमी पर भरोसा है या नहीं, किंतु हमारा शरीर कभी भरोसा देने वाला नहीं है। आपको यदि भरोसा है तो बता दो कि इतनी तारीख को इस समय तक जीऊँगा।

हमारे यहाँ धनराज जी म.सा. थे। उन्होंने कहा कि 93 साल से पहले नहीं मरूँगा। 93 में घात है और वह घात टल गई तो 120 वर्ष तक जीऊँगा। यह भरोसा किसका था? यह विश्वास किसका था?

ऐसा विश्वास धनराज जी म.सा. का था, जो कपासन में लम्बे समय तक विराजे थे। उन्होंने कहा 93 वर्ष में मौत आ जाए तो चला जाऊँगा। उस समय मौत नहीं आएगी तो 120 वर्ष तक जीऊँगा।

किसको अपने शरीर पर विश्वास है?

एक पल का भी भरोसा नहीं है। एक क्षण का भी भरोसा नहीं है। भरोसा किसी को नहीं है, किंतु हम बातें बहुत लम्बी-लम्बी करते हैं।

बंधुओ! हम अपने कल्मष को साफ करेंगे तो मन पारदर्शी होगा। हमारी मृत्यु होने का सही समय कब आएगा यह ज्ञात कब होगा? जब मन

पारदर्शी बन जाएगा तब यह संभव है। मन पारदर्शी कैसे बनेगा? मन पारदर्शी बनेगा धर्माराधना से, धर्म श्रद्धा से।

'सदा धर्म की जय-जय बोलें, अन्तर का सब कल्मष धो लें'

हर्षित मुनि जी म.सा. के मन में एक विचार आया कि यह चालीसा यदि भाई लोग लिखें तो बोलने में उनको सुविधा होगी। उन्होंने कहा, निर्वाण मुनि जी से कहते हैं वे लिखा देंगे। लिखने की बात नहीं है, हमारे दिल में बात जमनी चाहिए, क्योंकि लिखे हुए कागज वैसे ही पड़े रह जाते हैं।

'सदा धर्म की जय-जय बोलें, अन्तर का सब कल्मष धो लें'

अन्तर का कल्मष धुलेगा तो जीवन सार्थक होगा। मनुष्य जीवन सफल बनेगा।

सुनंदा की बात हम सुन रहे हैं, किंतु दूसरा पात्र सामने खड़ा हो गया। विजय, सुरेश सामने खड़े हैं। शर्मिला और उसकी माता सामने खड़ी हैं। समय आया, विजय की वय को देखकर माँ ने विचार किया कि इसकी शादी करवा देनी चाहिए। विजय कैसा भी रहा होगा, किंतु माता ने विचार किया कि मेरा कर्तव्य है और कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार,
देख विजय की वय को उसने, शादी करना सोचा उसने,
पर डर है मन माय भविकजन, सुंदर...
बहुरानी भी आई ऐसी, बात बनेगी तब क्या कैसी?
होनहार बलवान भविकजन, सुंदर...

विजय की उम्र को देखकर माता के मन में विचार आया कि अब मुझे इसकी शादी कर देनी चाहिए। इसके हाथ पीले कर देने चाहिए। जमाना वह था, जब प्राय: माता-पिता, परिवारवाले ही सम्बन्ध निश्चित करते थे। आज की तरह नहीं था कि लड़का, लड़की को जमे तो हाँ, नहीं तो नहीं। अब देखने-दिखाने की बात ही कहाँ रह गई। अब तो कई युवा सारा काम कोर्ट में फाइनल करने के बाद ही घर आते हैं कि हमने कोर्ट मैरिज कर ली है।

माता ने विचार किया किंतु उसके मन में भय हो रहा था कि मैंने शादी करवाई और बहूरानी भी ऐसी ही आ गई तो... विजय के माथे बाँधे जैसी बहू आ गई तो घर की क्या हालत होगी...

आदमी को भय तो रहता है, चिंता तो रहती है। आदमी चाहता है कि सबके सहयोग से परिवार चले। समाधि से घर चले, क्लेश नहीं हो। वातावरण शांत रहे। सभी अपने लक्ष्य का वरण करने में समर्थ बनें। ऐसी बहुत-सी बातें सोचते हैं। किंतु कोई दीक्षा लेने वाला हो तो सोचते हैं कि यह पालन कर पाएगा या नहीं! साधु जीवन पाल पाएगा कि नहीं! साधु जीवन नहीं पाल पाया तो क्या होगा! इसका समाधान क्या है?

हमने लड़के की शादी करवा दी। लड़की ऐसी-वैसी आ गई, तो उसका समाधान क्या है? आपने पहले बीसों तरह की बात सोच ली। आपके सोचने के बाद वैसा नहीं हुआ तो क्या होगा?

एक आख्यान में मैंने पढ़ा था कि अकबर के राज में यह नियम था कि उसके अधीन किसी राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा तो उसकी सारी संपत्ति दिल्ली सम्राट की होगी। जयपुर नरेश का स्वर्गवास हो गया। राजकुमार छोटा था। सबको भय हो रहा था कि हमारा राज्य हाथ से निकल न जाए। राजकुमार को समझा-बुझाकर दिल्ली भेजना था। उसको लोग समझाते हैं। कोई कहता कि बादशाह ऐसा पूछे तो ऐसा बोलना, कोई कहता कि ऐसा प्रश्न पूछे तो ऐसा उत्तर देना। ऐसा पूछे तो ऐसा जवाब दे देना। कई लोगों ने समझाया।

राजकुमार रवाना होने लगा तो उसने लोगों से कहा कि आप लोगों ने जितना बताया, बादशाह ने उससे अलग कुछ पूछ लिया तो क्या कहूँ?

लोगों ने कहा, फिर आपकी मति जैसा कहे वैसा करना।

राजकुमार दिल्ली पहुँचा। बादशाह के समक्ष पहुँचकर राजकुमार ने हाथ जोड़े, बादशाह ने राजकुमार के जुड़े हुए हाथ पकड़ लिए और कहा, बोलो तुम्हारे साथ कैसा सलूक किया जाए?

राजकुमार ने कहा, बादशाह सलामत? हमारी संस्कृति (हिंदू) में ऐसा माना जाता है कि जिसका एक हाथ पकड़ लिया, उसको जिंदगी भर साथ निभाना होता है, आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़े हैं।

राजकुमार की बात पर बादशाह खुश हो गया और जागीर उसके नाम रखी, राज्य राजकुमार के नाम रखा।

हमारी भारतीय संस्कृति में एक हाथ पकड़ लिया तो जिंदगी भर

उसको निभाना होता है। आप निभा रहे हैं या नहीं? आप निभा रहे हैं या निभ रहे हैं? बहनो! ये निभ रहे हैं या आप निभ रही हैं? बंधुओ! आप निभा रहे हो या निभ रहे हो? अब चुप रहना ही ठीक रहेगा। घर की बात सदर नहीं की जाती। सारी बातें बोलने की नहीं होती, सुनने की होती है।

राजकुमार ने बादशाह से कहा कि हमारी हिंदू संस्कृति में जिसका एक हाथ पकड़ लिया जाता है, उसका साथ जिंदगी भर निभाया जाता है। आपने तो मेरे दोनों हाथ ही पकड़ लिए। अब मैं क्या बोलूं, बादशाह खुश हो गया। अकबर खुश हो गया। जिस समय राजकुमार को समझाया गया था, उस समय यह नहीं बताया गया था। यह तो राजकुमार की खुद की समझ थी। समय पर आदमी की जो समझ होती है वह काम आती है।

उधर विजय की माँ सोच रही है कि पुत्रवधू यदि विजय जैसी आएगी तो क्या होगा! अंततोगत्वा समाधान नहीं हो तो लास्ट में होनहार बलवान है। जो होगा देखा जाएगा। फिर अपने आपको शांत करना पड़ेगा। बहू लाए तब तो देखकर लाए कि सही है, किंतु देखने के बाद भी आदमी बिगड़ गया तो क्या होगा। बिगड़ सकता है या नहीं?

'भागवाना रे भूत कमावे, बिगड़ी सारी बातें बनावे,
मिला सुखद संयोग, भविकजन, सुंदर हो...
'भागवाना रे भूत कमावे और बिना कमाए घर में आवे'

पुण्य प्रबल होने पर सारी बिगड़ी बातें सुधर जाती हैं और भाग्य रूठ जाए, पुण्य रूठ जाए तो कहते हैं–

''फूटा भाग फकीरां रा भरी चिलम घुड़ जाय...''

भाग्य फूटा होगा तो भरी चिलम घुड़क जाएगी, फूट जाएगी। वह उपयोग में नहीं आ पाएगी। पुण्यवानी होती है तो सारे भोग भोगे जाते हैं। पुण्यवानी रूठ गई तो घर में मिठाई होते हुए भी नहीं खा सकते। डायबिटीज वाले के लिए मिठाई किस काम की! डॉक्टर ने कह दिया है कि एक कवल भी लिया तो खतरा है। ऐसे में क्या होगा? क्या करेगा बेचारा?

पुण्यवानी पोते होती है तो सारे काम अनुकूल होते हैं। पुण्यवानी पोते नहीं हो तो अनुकूलता, प्रतिकूलता में बदल जाती है।

विजय की माँ विजय की शादी कराने का विचार करती है। उसको

कुछ सुखद संयोग मिल गया। कैसे सुखद संयोग बना यह आगे की बात है, किंतु इतना जरूर है कि अंततोगत्वा आदमी को विचार करना पड़ता है कि जो होगा देखा जाएगा। देखा जाएगा यानी आपको हिम्मत करनी पड़ती है? हम भी अपनी हिम्मत जगाएं। अपने भीतर रहे हुए शौर्य को जगाएं। जैसे धन्ना जी में शौर्य भरा था, जैसे शालिभद्र में शौर्य भरा था, जैसे भगवान महावीर में शौर्य भरा था, वैसे ही हमारे भीतर भी शौर्य भरा हुआ है। हमारी आत्मा भी उनसे कम नहीं है, किंतु हमने भेड़ों से सम्बन्ध जोड़ रखा है, आत्मा से भिन्न तत्त्वों से सम्बन्ध जोड़ रखा है इसलिए हमारा शौर्य जग नहीं पा रहा है। हम भी अपना शौर्य जगाएं और अपने आपको धन्य बनाएं।

तपस्या के क्रम में महासती श्री चंदना श्री जी की आज 20 है, महासती श्री जयति श्री जी की 23, तीन का अंतर चल रहा है। बहनों में भावना जी वया की आज 27, भाइयों में अभिषेक जी के 18 है 21 के पच्चक्खाण किए हुए हैं। और भी भाई-बहन तपस्या कर रहे हैं। हम भी इनसे प्रेरणा लेकर अपने सोए सिंह को जगाएं व धन्य बनें। इतना ही कहते हुए विराम।

19 जुलाई, 2023